उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

अप्रैल-जून, 2016

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अप्पू चटर्जी उर्फ सौमित्रा बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 142)	
असम राज्य बनाम रमन डोवराह	153
आदि शैव शिवचरयार्गल एन. संगम और अन्य बनाम तमिलनाडु सरकार और एक अन्य	65
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम अजय कुमार शर्मा और एक अन्य	39
कृष्ण चन्दर बनाम दिल्ली राज्य	115
गौतम घोष बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 142)	
तपस दास उर्फ भाम्बल बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 142)	
दामोदर लाल बनाम सोहन देवी और अन्य	104
नंदा गोपालन बनाम केरल राज्य	1
ननकौनू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	178
राजस्थान राज्य बनाम दाऊद खां	13
रायल वेस्टर्न इंडिया टर्फ क्लब लिमिटेड बनाम कर्मचारी राज्य बीमा निगम और अन्य	190
शंकर दास उर्फ भाई बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 142)	
सुदीप कुमार सेन उर्फ बिलटु बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य	142

(ii)

सुप्रीम कोर्ट वुमन लायर्स एसोसिएशन बनाम भारत संघ
और अन्य

166

संसद के अधिनियम

राजभाषा अधिनियम, 1963 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ

(1) – (18)

अप्रैल-जून, 2016 [संयुक्तांक]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक

अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक

डा. एम. सी. पांडेय

महत्वपूर्ण निर्णय

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 25 और 26 [सपठित तमिलनाडु हिंदू धार्मिक और पूर्त विन्यास अधिनियम, 1959 के अधीन तारीख 23 मई, 2006 का सरकारी आदेश सं. 118] – इस आशय का आदेश कि जो हिंदू है और अपेक्षित अर्हता और प्रशिक्षण रखता है, की नियुक्ति हिंदू मंदिरों में अर्चक के रूप में की जा सकती है, विधिसम्मत और युक्तिसंगत नहीं है तथा संवैधानिक अधिदेशों और आगमों के प्रतिकूल है।

आदि शैव शिवचरियार्गल एन. संगम और अन्य बनाम
तमिलनाडु सरकार और एक अन्य 65

संसद् के अधिनियम

राजभाषा अधिनियम, 1963 का हिन्दी में प्राधिकृत
पाठ (1) – (18)

पृष्ठ संख्या 1 – 206

[2016] 2 उम. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – अप्रैल-जून, 2016 [संयुक्तांक] [पृष्ठ संख्या 1 – 206]

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू, सचिव, विधायी विभाग	श्री जुगल किशोर, सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.
डा. एन. आर. बट्टू, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग	डा. अनुराग दीप, एसोसिएट प्रोफेसर, भारतीय विधि संस्थान
डा. बी. एन. मणि, सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार, विधि मंत्रालय	श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय, प्रधान संपादक
डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल, विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय	डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय, संपादक
डा. ऋषिपाल सिंह, सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड	श्री विनोद कुमार आर्य, संपादक
श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल, सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.	श्री कमला कान्त, संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री अविनाश शुक्ला, असलम खान, पुण्डरीक
शर्मा और जगमाल सिंह
उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 57

वार्षिक : ₹ 225

© 2016 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग),
भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है। उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है। इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है। उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है। तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

**विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि
पाठ्य पुस्तकों की
सूची**

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन - ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

**विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001**

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 (1948 का 34)

– धारा 2(9) – आकस्मिक कर्मचारी – अधिनियम में उपबंधित कर्मचारी की परिभाषा पर्याप्त व्यापक है और इसके अंतर्गत ऐसे कर्मचारी भी आते हैं जो मजदूरी कालावधि के भाग के लिए नियोजित किए गए हों, इसलिए अधिनियम के उपबंधों, नियमों, विनियमों और कर्मचारी राज्य बीमा निगम द्वारा जारी तारीख 18 सितम्बर, 1978 की अधिसूचना को देखते हुए अपीलार्थी-टर्फ क्लब के आकस्मिक कर्मचारी अधिनियम के अंतर्गत आते हैं और प्रसुविधा प्राप्त करने के हकदार हैं ।

रायल वेस्टर्न इंडिया टर्फ क्लब लिमिटेड बनाम कर्मचारी राज्य बीमा निगम और अन्य

190

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 24 [सपठित उत्तर प्रदेश राज्य लीगल रिमेम्ब्रेंसर मैनुअल] – अपर जिला सरकारी काउंसेल, सहायक जिला सरकारी काउंसेल, पैनल अधिवक्ता और उप जिला सरकारी काउंसेल पदों की नियुक्ति – राज्य को ऐसे व्यक्तियों को काउंसेल के रूप में नियुक्त करने की स्वतंत्रता है जिसमें उसकी आस्था और विश्वास है, अतः अधिवक्ताओं की सक्षमता सुनिश्चित करते हुए अपर जिला सरकारी काउंसेल, सहायक जिला सरकारी काउंसेल, पैनल अधिवक्ता और उप जिला सरकारी काउंसेल की नियुक्ति, जोहरी मल वाले मामले में व्यक्त मताभिव्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए की जानी चाहिए ।

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम अजय कुमार शर्मा और एक अन्य

39

– धारा 320 [सपठित दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 323, 324, 325 और 326] – अपराधों का शमन

– धारा 233 के अधीन अपराध शमनीय है और धारा 325 के अधीन अपराध न्यायालय की अनुज्ञा से शमनीय है, अतः मामले के तथ्यों और परिस्थितियों विशेषकर अपराध की प्रकृति, विहित दंड, गुरुतरकारी और उपशमनकारी और अन्य परिचारी परिस्थितियों तथा अपराध और दंड में साम्य रखते हुए अशमनीय अपराधों का निपटान निकट संबंधी होने के कारण पक्षकारों के बीच समझौते से किया जा सकता है ।

नंदा गोपालन बनाम केरल राज्य

1

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 34 और 300 – हत्या करने का सामान्य आशय – अभियुक्त-अपीलार्थियों का धन उद्घापन के अवैध कार्य में लिप्त होना, घटना के दिन एक साथ घटनास्थल पर आना, दो अभियुक्तों द्वारा मृतक को पकड़े जाने और अन्य द्वारा उस पर गोलियां चलाए जाने जैसे तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने पर स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि उनका सामान्य आशय मृतक की हत्या करना था, इसलिए धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन उनकी दोषसिद्धि उचित है ।

सुदीप कुमार सेन उर्फ बिलटु बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य

142

– धारा 300 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 134] – हत्या – घटना के एकमात्र साक्षी का परिसाक्ष्य – विश्वसनीयता – साक्षी द्वारा अभियुक्तों को मृतक पर गोली चलाते हुए देखा जाना – चिकित्सीय साक्ष्य से समर्थन होना – गहन प्रतिपरीक्षा में उसका साक्ष्य अडिग रहना – यदि एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य विश्वसनीय पाया जाता है और भले ही यह असंपुष्ट हो, तो भी न्यायालय ऐसे परिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि या दोषमुक्ति अभिलिखित कर सकता है, अतः निचले न्यायालयों

द्वारा अभिलिखित अपीलार्थियों की दोषसिद्धि और दंडादेश उचित हैं ।

सुदीप कुमार सेन उर्फ बिलटु बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य

142

– धारा 300 और धारा 304 भाग 2 – मृतका के साथ बलात्संग और उसके द्वारा अभियुक्त को तुरंत यह धमकी देने पर कि वह घटना के बारे में अपनी माता को बताएगी, उस पर मिट्टी का तेल छिड़कर कर और आग लगाकर मृत्यु कारित किया जाना – अभियुक्त के आचरण से यह उपदर्शित होता है कि उसका आशय मृतका के साथ बलात्संग करने के पश्चात् उसकी हत्या करने का था ताकि उसका अपराध उजागर न हो सके, इसलिए यह हत्या का मामला है और अभियुक्त धारा 304 भाग 2 के बजाय धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किए जाने का दायी है ।

असम राज्य बनाम रमन डोवराह

153

– धारा 302 [सपठित आयुध अधिनियम, 1959 (1959 का 54) की धारा 25 के साथ धारा 3] – आपराधिक मानव वध – जहां मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य, अग्न्यायुध से मृतक पर गोली चलाने, रक्त अनुचिह्न और न्यायालयिक साक्ष्य से यह साबित होता है कि अभियुक्त द्वारा मृतक पर साशय गोली चलाई गई थी वहां अभियुक्त को आपराधिक मानव वध के अपराध से दोषसिद्ध करना न्यायोचित है ।

राजस्थान राज्य बनाम दाऊद खां

13

– धारा 302 और 304 भाग 1 – आपराधिक मानव वध – आशय और हेतु – क्षति बाईं जंघे के भीतरी भाग जो शरीर का नाजुक अंग नहीं है पर कारित होने, प्रयुक्त हथियार की प्रकृति, प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में क्षति की

पर्याप्तता और मृत्यु की संभाव्यता, पूर्व-चिंतन से क्षति कारित करने के आशय से यह साबित होता है कि अभियुक्त ने हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानव वध का अपराध किया है अतः, अभियुक्त को धारा 302 के अधीन बल्कि 304 भाग 1 के अधीन दोषसिद्ध किया जाना उचित और न्यायसंगत है ।

ननकौनु बनाम उत्तर प्रदेश राज्य

178

– धारा 376 – बलात्संग – अभियुक्त द्वारा एक अन्य अभियुक्त के साथ विपदग्रस्त के घर में घुसकर जबरदस्ती उसके साथ बलात्संग किया जाना – विपदग्रस्त द्वारा शोर मचाया जाना और घटना के बारे में अपनी माता को बताने की धमकी देने पर अभियुक्त द्वारा उस पर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगाया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा बलात्संग के लिए दोषसिद्ध किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा सहमति-जन्य मैथुन का मामला होने के आधार पर अभियुक्त को दोषमुक्त किया जाना – मामले की परिस्थितियों, मृत्युकालिक कथनों आदि के आधार पर इसे सहमति-जन्य मैथुन का मामला नहीं कहा जा सकता है और उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को धारा 376 के अधीन अपराध के लिए दोषमुक्त करने का आदेश गलत है और इसे अपास्त करना उचित होगा ।

असम राज्य बनाम रमन डोवराह

153

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49)

– धारा 7 और 13(1)(घ) [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 145 और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 161 और 162] – रिश्वत – अभियुक्त-पुलिस कांस्टेबल द्वारा अभिकथित रूप से शिकायतकर्ता से रिश्वत की मांग किया जाना – शिकायतकर्ता का अपनी प्रतिपरीक्षा में अभियुक्त द्वारा रिश्वत की मांग और स्वीकृति

के पहलू पर पक्षद्रोही हो जाना – धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन अपराध का गठन करने के लिए अभियुक्त द्वारा रिश्वत की मांग और स्वीकृति के पहलू को साबित करना अनिवार्य है और चूंकि साक्षियों के विरोधाभासी साक्ष्यों से रिश्वत की मांग और स्वीकृति की बात साबित नहीं होती, इसलिए निचले न्यायालयों द्वारा की गई अभियुक्त की दोषसिद्धि को अपास्त करना उचित होगा ।

कृष्ण चन्दर बनाम दिल्ली राज्य

115

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 25 और 26 – धर्म का अधिकार – मंदिरों में अर्चक की नियुक्ति – मंदिरों में अर्चक की नियुक्ति अर्चक की सम्यक् पहचान तथा आगमों के अनुसार और संवैधानिक अधिदेशों तथा शेषाम्मल वाले मामले में दिए गए निदेशों के अनुसार की जानी चाहिए ।

आदि शैव शिवचरियार्गल एन. संगम और अन्य बनाम तमिलनाडु सरकार और एक अन्य

65

– अनुच्छेद 25 और 26 [सपठित तमिलनाडु हिंदू धार्मिक और पूर्त विन्यास अधिनियम, 1959 के अधीन तारीख 23 मई, 2006 का सरकारी आदेश सं. 118] – इस आशय का आदेश कि जो हिंदू है और अपेक्षित अर्हता और प्रशिक्षण रखता है, की नियुक्ति हिंदू मंदिरों में अर्चक के रूप में की जा सकती है, विधिसम्मत और युक्तिसंगत नहीं है तथा संवैधानिक अधिदेशों और आगमों के प्रतिकूल है ।

आदि शैव शिवचरियार्गल एन. संगम और अन्य बनाम तमिलनाडु सरकार और एक अन्य

65

– अनुच्छेद 141 [सपठित दंड संहिता, 1860 की धारा 376] – बालिका यौन उत्पीड़न के लिए दंड – संविधान के अधीन अपराध सृजित करने और उसके लिए दंड लागू करने का कार्य विधायिका का है, न्यायालय विधायिका को

मात्र सुझाव दे सकता है – वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में बलात्संग के संदर्भ में “बालक” पद को परिभाषित करने और बालक यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए गंभीर दंड उपबंधित करने की तत्काल आवश्यकता है ।

**सुप्रीम कोर्ट वुमन लायर्स एसोसिएशन बनाम भारत
संघ और अन्य**

166

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 100 – द्वितीय अपील – परिसर में किराएदार द्वारा संरचनात्मक परिवर्तन – स्वामी द्वारा बेदखली के लिए वाद – संरचनात्मक परिवर्तन के तथ्य संबंधी साक्ष्य के आधार पर विचारण न्यायालय द्वारा स्वामी के पक्ष में डिक्री – प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिपुष्टि – उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील में निचले न्यायालयों के तथ्य संबंधी समवर्ती निष्कर्षों को अनुचित ठहराते हुए अपील मंजूर किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील में विशुद्ध तथ्य के प्रश्न को उलटकर न्यायोचित नहीं किया गया है और इसे अपास्त करना उचित है ।

दामोदर लाल बनाम सोहन देवी और अन्य

104

– धारा 100 – द्वितीय अपील – विधि का सारवान् प्रश्न – उच्च न्यायालय द्वारा विरचित प्रश्न कि क्या निचले न्यायालयों द्वारा सारभूत संरचनात्मक परिवर्तन के आधार पर बेदखली की डिक्री प्रदान करके गलती की है या वादी के साक्षी कठघरे में हाजिर न होने पर प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए था, ये विधि के सारवान् प्रश्न नहीं हैं और चाहे तथ्य संबंधी निष्कर्ष गलत भी हों तो भी इस बात से स्वयमेव विधि के प्रश्न का गठन नहीं हो जाता, अतः उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण अनुचित न सही किंतु पूर्णतः गलत है ।

दामोदर लाल बनाम सोहन देवी और अन्य

104

तुलनात्मक सारणी
उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका
[2016] 2 उम. नि. प.
अप्रैल-जून, 2016

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.	ए. आई. आर. (एस. सी.)	एस. सी. सी.
1	2	3	4	5
1.	नंदा गोपालन बनाम केरल राज्य (24.4.2015)	[2016] 2	1 2016 -	(2015) 11 137
2.	राजस्थान राज्य बनाम दाऊद खां (4.9.2015)		13 -	(2016) 2 607
3.	उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम अजय कुमार शर्मा और एक अन्य (26.11.2015)		39 -	- -
4.	आदि शैव शिवचरयार्गल एन. संगम और अन्य बनाम तमिलनाडु सरकार और एक अन्य (16.12.2015)		65 209	2 725
5.	दामोदर लाल बनाम सोहन देवी और अन्य (5.1.2016)		104 262	3 78
6.	कृष्ण चन्दर बनाम दिल्ली राज्य (6.1.2016)		115 298	3 108

1	2	3	4	5
7.	सुदीप कुमार सेन उर्फ बिलटु बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य (7.1.2016)	[2016] 2 142	2016 310	(2016) 3 26
8.	असम राज्य बनाम रमन डोवराह (11.1.2016)	153	341	3 19
9.	सुप्रीम कोर्ट वुमन लायर्स एसोसिएशन बनाम भारत संघ और अन्य (11.1.2016)	166	358	3 680
10.	ननकौनू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (19.1.2016)	178	447	3 317
11.	रायल वेस्टर्न इंडिया टर्फ क्लब लिमिटेड बनाम कर्मचारी राज्य बीमा निगम और अन्य (29.2.2016)	190	1143	(2016) 4 521

(ix)

(x)

[2016] 2 उम. नि. प. 1

नंदा गोपालन

बनाम

केरल राज्य

24 अप्रैल, 2015

न्यायमूर्ति जे. चेलमेश्वर और न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 320 [सपटित दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 323, 324, 325 और 326] – अपराधों का शमन – धारा 233 के अधीन अपराध शमनीय है और धारा 325 के अधीन अपराध न्यायालय की अनुज्ञा से शमनीय है, अतः मामले के तथ्यों और परिस्थितियों विशेषकर अपराध की प्रकृति, विहित दंड, गुरुतरकारी और उपशमनकारी और अन्य परिचारी परिस्थितियों तथा अपराध और दंड में साम्य रखते हुए अशमनीय अपराधों का निपटान निकट संबंधी होने के कारण पक्षकारों के बीच समझौते से किया जा सकता है ।

तारीख 14 मई, 1999 को 7.30 बजे पूर्वाह्न में अपीलार्थी ने अभि. सा. 1 पर नारियल के पत्तों से बने बल्ले से हमला किया । अभि. सा. 1 इस वार से आहत होकर नीचे गिर गया । अपीलार्थी अभि. सा. 1 के वक्ष पर बैठ गया और उसने पत्थर से अभि. सा. 1 को क्षतियां पहुंचाई । अभि. सा. 1 अचेत हो गया । आहत को मेडिकल ट्रस्ट अस्पताल, एर्णाकुलम पहुंचाया गया जहां पर वह 32 दिनों तक भर्ती रहकर उपचाराधीन रहा । अन्वेषण अधिकारी ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित की और अन्वेषण किया तथा अपीलार्थी को विचारण के लिए भेजा । अभियोजन पक्ष ने केवल आहत की ही परीक्षा नहीं कराई अपितु उसके पुत्रों तथा उसकी पत्नी की भी परीक्षा कराई, साथ ही स्वतंत्र साक्षियों की भी परीक्षा कराई गई । इसके अतिरिक्त चिकित्सीय साक्ष्य और सुसंगत दस्तावेज भी प्रस्तुत किए गए । अभियोजन पक्ष ने अपना पक्षकथन साबित किया और न्यायालय ने अपीलार्थी को दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया तथा विचारण न्यायालय के

आदेश की पुष्टि दंड में कमी के साथ की गई । उच्च न्यायालय में अपील के लंबित रहने के दौरान पक्षकारों के बीच एक समझौता किया गया और दंड संहिता की धारा 324 के अधीन अपराध का शमन करने और दंड संहिता की धारा 326 के अधीन विरचित आरोप को अभिखंडित करने के लिए समझौते के आधार पर उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन फाइल किया । यह आवेदन इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि अशमनीय अपराध के मामले में पक्षकारों के बीच समझौता नहीं किया जा सकता । यह अपील 2003 की दांडिक अपील सं. 285 में केरल उच्च न्यायालय, एर्णाकुलम द्वारा तारीख 31 अक्टूबर, 2014 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – दंड संहिता की धारा 326 के अधीन अपराध शमनीय नहीं है, फिर भी दंडादेश कम किए जाने के लिए समझौता किया जा सकता है । मामले में प्रयोग किए गए हथियार की प्रकृति ऐसी नहीं है जिसका उल्लेख धारा 324 और धारा 326 के अधीन किया गया है, इसलिए आरोप दंड संहिता की धारा 323 और 325 के अधीन परिवर्तित किया जा सकता है । दंड संहिता की धारा 323 और 325 के अधीन अपराध न्यायालय की अनुमति के साथ शमनीय है । पक्षकारों के बीच समझौते पर विचार करने पर, विशेषकर इस स्थिति पर विचार करने पर कि वे निकट नातेदार हैं, दंडादेश में कमी किए जाने का आदेश पारित किया जा सकता है, न्यायालय को अपीलार्थी की दोषसिद्धि में हस्तक्षेप करने का कोई आधार दिखाई नहीं देता है । वर्तमान मामले में निचले न्यायालयों के समक्ष किए गए अभिवाक् में न तो ऐसी कोई बात उठाई गई है और न ही ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है प्रयोग किया गया आयुध खतरनाक नहीं था, इसके अभाव में न्यायालय आरोप की प्रकृति के आधार पर निकाले गए निचले न्यायालयों के निर्णयों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता और न ही यह अभिनिर्धारित कर सकता है कि अपराध में प्रयोग किए गए आयुध की प्रकृति धारा 324 और 326 के अंतर्गत नहीं आती है । जहां तक दंडादेश देने की नीति का संबंध है, यह सुस्थापित है कि अपराध और दंड के बीच अनुपात और प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों विशेषकर अपराध की प्रकृति, विहित दंडादेश, न्यूनकारी और गुरुतरकारी तथा अन्य परिचारी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए समुचित दंडादेश अधिरोपित किया जाना चाहिए । (पैरा 7, 9, 12 और 13)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2014]	(2014) 12 एस. सी. सी. 666 : दासन बनाम केरल राज्य और एक अन्य ;	7,14
[2005]	(2005) 1 एस. सी. सी. 343 : बंकट बनाम महाराष्ट्र राज्य ;	15
[2005]	(2005) 3 एस. सी. सी. 260 : मथाई बनाम केरल राज्य ;	7,10
[2005]	(2005) 10 एस. सी. सी. 581 : अनवारुल हक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ;	11
[2003]	(2003) 8 एस. सी. सी. 13 : मध्य प्रदेश राज्य बनाम घनश्याम सिंह ;	13
[1980]	(1980) 1 डब्ल्यू. एल. आर. 1193 : रेगिना बनाम बीबी ।	7

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2015 की दांडिक अपील सं. 714.

2003 की दांडिक अपील सं. 285 में केरल उच्च न्यायालय एर्णाकुलम के तारीख 31 अक्टूबर, 2014 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से

सर्वश्री राम जेठमलानी (ज्येष्ठ अधिवक्ता), करन कालिया, प्रणव देइश, (सुश्री) पी. आर. माला, शिनोज के. नारायनन, के. राजीव और विपिन नारायन

प्रत्यर्थी की ओर से

सर्वश्री जोगी स्केरिया, (सुश्री) ज्योति मिश्रा, कौशल यादव और रीगन एस. बेल

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल ने दिया ।

न्या. गोयल – इजाजत प्रदान की जाती है । यह अपील 2003 की दांडिक अपील सं. 285 में केरल उच्च न्यायालय, एर्णाकुलम द्वारा तारीख 31 अक्टूबर, 2014 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध की

गई है ।

2. अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में “दंड संहिता” कहा गया है) की धारा 324 और 326 के अधीन क्रमशः 2 वर्ष और 3 वर्ष का कठोर कारावास भोगने और आहत को प्रतिकर के रूप में 30,000/- रुपए जुर्माने का संदाय करने के लिए दंडादिष्ट किया गया । अपीलार्थी आहत सुकुमारन (अभि. सा. 1) के चचेरे-तयेरे भाई का पुत्र है ।

3. अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि तारीख 14 मई, 1999 को 7.30 बजे पूर्वाह्न में अपीलार्थी ने अभि. सा. 1 पर नारियल के पत्तों से बने बल्ले से हमला किया । अभि. सा. 1 इस वार से आहत होकर नीचे गिर गया । अपीलार्थी अभि. सा. 1 के वक्ष पर बैठ गया और उसने पत्थर से अभि. सा. 1 को क्षतियां पहुंचाई । अभि. सा. 1 अचेत हो गया । आहत को मेडिकल ट्रस्ट अस्पताल, एर्णाकुलम पहुंचाया गया जहां पर वह 32 दिनों तक भर्ती रहकर उपचाराधीन रहा । आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी डा. आनन्दम राधाकृष्णन (अभि. सा. 10) ने उक्त अस्पताल में 8.45 बजे पूर्वाह्न में अभि. सा. 1 की चिकित्सा परीक्षा की और प्रदर्श पी-5 के अनुसार निम्न क्षतियां पाई :-

“(1) मुख के बाईं ओर 4 से. मी. × 4 से. मी. माप का आर-पार विदीर्ण घाव जिसका विस्तार ऊपर की ओर बाएं मसूड़े तक है । ऊपरी मसूड़े में दूसरा, तीसरा और चौथा दांत मौजूद नहीं है ।

(2) बाईं भौंह के अर्ध-पार्श्विक भाग में 4 से. मी. × 0.5 से. मी. माप का विदीर्ण घाव है जो 0.5 से. मी. तक गहरा घाव है जो 1 से. मी. की दूरी पर ऊपर की ओर दो जगह फैला हुआ है ।

(3) 1 से. मी. × 0.25 से. मी. माप का नासा सेतु पर छिन्न घाव है जिसकी गहराई 0.25 से. मी. और दिशा उर्ध्वाधर है ।

(4) दाईं ओर के बाह्य कर्ण में अनियमित कटाव है जिसमें उपास्थि दिखाई दे रही है ।

(5) जबड़े के समकोण पर गुमटा पाया गया है ।

(6) बाईं ओर से ऊपर जबड़े पर गुमटा और सूजन है जिस पर रक्तमय दो विदीर्ण घाव हैं ।”

4. अभि. सा. 2 ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित की और अन्वेषण किया तथा अपीलार्थी को विचारण के लिए भेजा । अभियोजन पक्ष ने

केवल आहत (अभि. सा. 1) की ही परीक्षा नहीं कराई अपितु अपने पुत्रों अर्थात् अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 तथा उसकी पत्नी अभि. सा. 8 की भी परीक्षा कराई, साथ ही स्वतंत्र साक्षी अर्थात् अभि. सा. 4, अभि. सा. 5 और अभि. सा. 6 की भी परीक्षा कराई गई। इसके अतिरिक्त चिकित्सीय साक्ष्य और सुसंगत दस्तावेज भी प्रस्तुत किए गए।

5. विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष ने अपना पक्षकथन साबित किया है और न्यायालय ने अपीलार्थी को दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया और विचारण न्यायालय के आदेश की पुष्टि दंड में कमी के साथ की गई। उच्च न्यायालय में अपील के लंबित रहने के दौरान पक्षकारों के बीच एक समझौता किया गया और दंड संहिता की धारा 324 के अधीन अपराध का शमन करने और दंड संहिता की धारा 326 के अधीन विरचित आरोप को अभिखंडित करने के लिए समझौते के आधार पर उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन फाइल किया। यह आवेदन इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि अशमनीय अपराध के मामले में पक्षकारों के बीच समझौता नहीं किया जा सकता।

6. हमने विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री राम जेठमलानी, जो न्यायालय के निवेदन पर न्यायमित्र के रूप में हाजिर हुए हैं और केरल राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री जोगी स्केरिया को सुना है।

7. श्री जेठमलानी ने यह दलील दी है कि यद्यपि दंड संहिता की धारा 326 के अधीन अपराध शमनीय नहीं है, फिर भी दंडादेश कम किए जाने के लिए समझौता किया जा सकता है। उन्होंने यह भी दलील दी कि चूंकि वर्तमान मामले में प्रयोग किए गए हथियार की प्रकृति ऐसी नहीं है जिसका उल्लेख धारा 324 और धारा 326 के अधीन किया गया है, इसलिए आरोप दंड संहिता की धारा 323 और 325 के अधीन परिवर्तित किया जा सकता है। दंड संहिता की धारा 323 और 325 के अधीन अपराध न्यायालय की अनुमति के साथ शमनीय है। श्री जेठमलानी ने इस न्यायालय का ध्यान **दासन बनाम केरल राज्य और एक अन्य¹**, **मथाई बनाम केरल राज्य²** और **रेगिना बनाम बीबी³** वाले मामलों में किए गए विनिश्चयों की ओर दिलाया है।

¹ (2014) 12 एस. सी. सी. 666.

² (2005) 3 एस. सी. सी. 260.

³ (1980) 1 डब्ल्यू. एल. आर. 1193.

8. राज्य की ओर से विद्वान् काउंसिल ने उपरोक्त दलीलों का विरोध किया है । काउंसिल के अनुसार दंड संहिता की धारा 324 और 326 के अधीन दोषसिद्धि ठीक ही अभिलिखित की गई है और इस न्यायालय द्वारा कोई भी हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

9. हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि पक्षकारों के बीच समझौते पर विचार करने पर, विशेषकर इस स्थिति पर विचार करने पर कि वे निकट नातेदार हैं, दंडादेश में कमी किए जाने का आदेश पारित किया जा सकता है, हमें अपीलार्थी की दोषसिद्धि में हस्तक्षेप करने का कोई आधार दिखाई नहीं देता है ।

10. **मथाई** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया :-

“16. ‘कोई भी उपकरण आक्रामक आयुध के रूप में प्रयोग में लाया जाए जिससे मृत्यु कारित होना संभावित हो’ पर उस धारा के शीर्षक को ध्यान में रखते हुए विचार किया जाना चाहिए । घातक हथियार किसे कहा जाएगा, यह बात प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगी और ऐसी स्थिति में सामान्यकरण नहीं किया जा सकता ।

17. इस धारा के शीर्षक के अधीन कारकों पर विचार किए जाने की सूझबूझ का उपबंध किया गया है । धारा 326 के लागू किए जाने के लिए आवश्यक संघटक इस प्रकार हैं – (1) स्वेच्छया उपहति कारित करना, (2) उपहति घोर उपहति होनी चाहिए, और (3) घोर उपहति खतरनाक आयुधों या साधनों से कारित की जानी चाहिए । जैसाकि इस न्यायालय द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** इंद्रजीत, [(2000) 7 एस. सी. सी. 249] वाले मामले में यह देखा गया था कि ऐसी कोई बात नहीं है जो हत्या या उसके लिए क्षति कारित करने के लिए कोई नियमित या विशिष्ट आयुध हो । कोई एक वस्तु स्वतः कोई गंभीर घाव या घोर उपहति या क्षति कारित कर सकता है या नहीं, यह बात तथ्यों के आधार पर तय की जानी चाहिए । जैसाकि ऊपर देखा गया है, चिकित्सक (अभि. सा. 5) के साक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि कारित की गई उपहति या क्षति दंड संहिता की धारा 320 के अधीन यथा परिभाषित ‘घोर उपहति’ अभिव्यक्ति के अंतर्गत आती है । अपरिहार्य निष्कर्ष यह निकलता है कि घोर उपहति कारित हुई थी । ऐसा नहीं है कि प्रत्येक मामले में किसी पत्थर को खतरनाक आयुध मान लिया जाए । यह उस मामले के तथ्यों पर आधारित होगा । इस समागम पर इस पर विचार करना

सुसंगत होगा कि कुछ उपबंधों में, जैसे दंड संहिता की धारा 324 और 326, 'खतरनाक आयुध' अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है। कुछ और गंभीर अपराधों में, जैसे धारा 394 और 398, 'घातक आयुध' अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है। प्रत्येक मामले विशेष के तथ्य विभिन्न कारकों जैसे आयुध का आकार, उस पर लगी धार की कोटि इस प्रश्न को तय करने में सहायक होती है कि वह आयुध खतरनाक या घातक था या नहीं इससे यह तय किया जाएगा कि इस मामले में धारा 325 या धारा 326 लागू होगी या नहीं।¹

11. इस मामले पर **अनवारुल हक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**¹ वाले मामले में भी विचार किया गया है :-

“11. यह अभिवाक् कि (अपराध में) प्रयोग किया गया आयुध खतरनाक आयुध नहीं था, विचारण न्यायालय या उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं किया गया है। आयुध खतरनाक है या नहीं, केवल मामले के तथ्यों के आधार पर तय किया जाना चाहिए। चूंकि अभियुक्त द्वारा इस पहलू पर निचले न्यायालयों के समक्ष कोई भी चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए उस अभिवाक् को इस न्यायालय में पहली बार प्रस्तुत करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता।

12. दंड संहिता की धारा 324 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि उस दशा के सिवाय, जिसके लिए धारा 334 में उपबंध में, जो कोई असन, वेधन या काटने के किसी उपकरण द्वारा या किसी ऐसे उपकरण द्वारा जो यदि आक्रामक आयुध के तौर पर उपयोग में लाया जाए, तो उससे मृत्यु कारित होना संभाव्य है, या अग्नि या किसी तप्त पदार्थ द्वारा या किसी विष या किसी संक्षारक पदार्थ द्वारा या किसी विस्फोटक पदार्थ द्वारा या किसी ऐसे पदार्थ द्वारा, जिसका श्वास में जाना या निगलना या रक्त में पहुंचना मानव शरीर के लिए हानिकारक है, या किसी जीवजंतु द्वारा स्वेच्छया उपहति कारित करेगा, वह धारा 324 के निबंधनों में दंडित किया जा सकता है। ऐसा उपकरण 'जो यदि आक्रामक आयुध के तौर पर उपयोग में लाया जाए, तो उससे मृत्यु कारित होना संभाव्य है' अभिव्यक्ति का अर्थ उपकरण की प्रकृति न कि उसके प्रयोग करने की रीति को ध्यान में रखते हुए लगाना चाहिए। अभियोजन पक्ष द्वारा यह सिद्ध

¹ (2005) 10 एस. सी. सी. 581.

किया गया है कि अभियुक्त ने स्वेच्छया उपहति कारित की है और यह कि इस धारा में निर्दिष्ट उपकरण द्वारा उपहति कारित की है ।

13. इस धारा के अधीन कठोरतम दंड विहित किया गया है जिसके अंतर्गत अपराधी स्वेच्छया खतरनाक आयुध या अन्य साधनों द्वारा उपहति कारित करता है । 'किसी ऐसे उपकरण द्वारा जो यदि आक्रामक आयुध के तौर पर उपयोग में लाया जाए, तो उससे मृत्यु कारित होना संभाव्य है' अभिव्यक्ति में प्रयोग किए गए उपकरण का अर्थ धारा 324 के अंतर्गत मोटे तौर पर लगाए जाने पर ऐसा खतरनाक आयुध होगा जिसका प्रयोग अपराधी द्वारा किया गया हो और जिससे मृत्यु कारित होना संभाव्य हो ।

14. दंड संहिता की धारा के रचयिताओं ने, जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, ऐसे कठोरतम दंड की वांछनीयता का कारण निम्न है -

'.....शारीरिक क्षति ऐसे उपकरण से भी कारित की जा सकती है जिसके प्रयोग से सामान्यतया अत्यंत कुटिलता उपदर्शित होती हो । एक मुष्टि प्रहार से इतनी अधिक पीड़ा कारित हो सकती है और इतनी क्षति पहुंच सकती है जितनी एक चाकू से विदीर्ण घाव पहुंचाने या तप्त लोहे से क्षति पहुंचाई जाती है । किंतु बहुत से मामलों में इस पर बहुत ही कम विवाद किया जाता है कि अपराधी ने अपनी ईर्ष्या को पूरा करने के लिए चाकू का प्रयोग किया है वह उस व्यक्ति की अपेक्षाकृत अधिक दुष्ट और खतरनाक व्यक्ति है जिसने मुष्टि प्रहार से ऐसी क्षति कारित की है । हमें ऐसा प्रतीत होता है कि, हमारे वर्गीकरण के अनुसार, बहुत सी ऐसी उपहति हैं जिन्हें घोर उपहति कहा जाता है उन्हें कारित किए जाने की रीति के आधार पर अपेक्षाकृत कठोरतर दंड दिया जाना चाहिए' ।'

12. वर्तमान मामले में, निचले न्यायालयों के समक्ष किए गए अभिवाक् में न तो ऐसी कोई बात उठाई गई है और न ही ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है कि प्रयोग किया गया आयुध खतरनाक नहीं था, इसके अभाव में हम आरोप की प्रकृति के आधार पर निकाले गए निचले न्यायालयों के निर्णयों में हस्तक्षेप नहीं कर सकते और न ही यह अभिनिर्धारित कर सकते हैं कि अपराध में प्रयोग किए गए आयुध की प्रकृति धारा 324 और 326 के अंतर्गत नहीं आती है ।

13. जहां तक दंडादेश देने की नीति का संबंध है, यह सुस्थापित है कि अपराध और दंड के बीच अनुपात और प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों विशेषकर अपराध की प्रकृति, विहित दंडादेश, न्यूनकारी और गुरुतरकारी तथा अन्य परिचारी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए समुचित दंडादेश अधिरोपित किया जाना चाहिए। **मध्य प्रदेश राज्य बनाम घनश्याम सिंह¹** वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है :-

“13. आपराधिक विधि, सामान्यतया, प्रत्येक प्रकार के कृत्य की अपराधिकता के अनुसार दायित्व विहित करने के लिए आनुपातिकता के सिद्धांत पर आधारित होती है। इस सिद्धांत के अधीन प्रत्येक मामले में दंडादेश पारित करने के लिए न्यायाधीश को एक महत्वपूर्ण विवेकाधिकार दिया गया है, अनुमानतः ऐसे दंडादेशों को अनुज्ञात किया गया है जिनसे अपराधिकता पर कम ध्यान दिया गया हो और जो प्रत्येक मामले के विशेष तथ्यों पर आधारित होते हैं। मुख्य रूप से न्यायाधीश इस बात की पुष्टि करते हैं कि दंड सदैव अपराध से मेल खाना चाहिए; फिर भी प्रचलन यह है कि दंडादेश तय किए जाने के लिए बातों पर भी बहुत ध्यान दिया जाता है। कभी-कभी दंडादेश को न्यायोचित ठहराने के लिए अपराधी में सुधार किए जाने की आवश्यकता को ध्यान में रखना होता है, कभी-कभी उसे समाज से दूर रखना आवश्यक होता है और कभी-कभी अपराध के दुष्परिणाम को भी देखना होता है। अपरिहार्य रूप से इन बातों से दंड के मूल आधार पर विचार नहीं हो पाता और उन मामलों में स्पष्ट रूप से अन्याय हो जाता है और ऐसे बहुत से गंभीर मामले हैं।

14. अपराध और दंड के अनुपात को सैद्धांतिक रूप से ध्यान में रखना चाहिए, और गलत अभिप्राय के बावजूद दंडादेश को नियत करने में इस अनुपात का बहुत महत्व होता है। सभी गंभीर अपराधों में एक जैसा दंड देने की परंपरा सभ्य समाज में अब दिखाई नहीं देती किंतु विधि में अब ऐसा दिखाई नहीं देता कि आनुपातिकता के सिद्धांत पर ध्यान न दिया जाए। आजकल भी किसी गंभीर एकल अपराध के लिए कठोर दंडादेश अधिरोपित किए जाते हैं। किसी गंभीर अपराध के लिए अधिकतम उग्रता से कम दंड देना सहनशीलता समझा जाता है जोकि अवांछनीय और अन्यायोचित है। किंतु वास्तव में ऐसी बातों के अतिरिक्त जिनसे दंडादेश अपराध के समानुपाती न

¹ (2003) 8 एस. सी. सी. 13.

होने पर अन्यायोचित हो जाता है, एकरूप से बनाए गए दंडादेश भी दिए जाते हैं जिनके अत्यंत अवांछनीय व्यावहारिक परिणाम निकलते हैं ।

15. प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर सम्यक् रूप से विचार करने पर, न्यायालय को निष्पक्ष रूप से किसी अपराध के लिए उचित और समुचित दंडादेश अधिनिर्णीत करने के लिए ऐसे गुरुतरकारी और न्यूनकारी कारकों स्थितियों के बीच सुसंगत परिस्थितियों के आधार पर संतुलन बनाया जाना चाहिए जिनमें अपराध कारित किया गया है । संतुलन बनाए रखने का यह कार्य वास्तव में एक कठिन कार्य है । डेनिस कार्टकिल मैक गौथा बनाम स्टेट आफ केलीफोर्निया [402 यू. एस. 183] वाले मामले में स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित किया गया है कि इस संबंध में कोई भी सटीक सूत्र नहीं बनाया जा सकता जिसके आधार पर ऐसी अनेक प्रकार की परिस्थितियों में ठीक और समुचित दंड निर्धारित किया जा सके जिनसे अपराध की गंभीरता प्रभावित होती है । किसी भी ऐसे सटीक सूत्र के अभाव में, जिसके आधार पर कोई युक्तियुक्त सिद्धांत बनाया जा सके ताकि अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए विभिन्न परिस्थितियों का ठीक प्रकार आकलन किया जा सके, प्रत्येक मामले में के तथ्यों के आधार पर विवेकाधिकार से निर्णय देना ही एकमात्र तरीका है जिसके द्वारा ऐसे निर्णय को समान रूप से स्पष्ट किया जा सकता है ।”

14. दासन (उपर्युक्त) वाले मामले में, यह मत व्यक्त किया गया है :-

“7. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे संक्षेप में ‘संहिता’ कहा गया है) के बारे में है जो भारतीय दंड संहिता के अधीन दंडनीय हैं । उसके अधीन यह बताया गया है कि कौन सा अपराध शमनीय है और कौन सा अपराध संबद्ध न्यायालय की अनुमति से शमनीय है । धारा 320 उपधारा 3 से 8 यह भी स्पष्ट करती है कि संहिता की धारा 320 किस प्रकार लागू की जाएगी । इस धारा की उपधारा 9 में यह उपबंध किया गया है कि अपराध का शमन इस धारा के उपबंधों के अनुसार ही किया जाएगा, अन्यथा नहीं । अतः विधायी आशय स्पष्ट हो जाता है । अपराध का शमन संहिता की धारा 320 के अनुसरण में ही किया जाना चाहिए । इस उपबंध से विचलन करना अनुज्ञेय नहीं है ।”

15. **बंकट बनाम महाराष्ट्र राज्य**¹ वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है :-

“11. हमारे मतानुसार प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसिल द्वारा दी गई दलील स्वीकार की जानी चाहिए। दंड संहिता के अधीन दंडनीय अपराधों का शमन करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 320 के अधीन पूर्ण व्यवस्था की गई है। धारा 320 की उपधारा (1) के अधीन यह उपबंध किया गया है कि प्रथम दो स्तम्भों में विनिर्दिष्ट भारतीय दंड संहिता की धाराओं के अधीन दंडनीय अपराधों का शमन उस सारणी के प्रत्येक स्तंभ में उल्लिखित व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त उपधारा (2) के अधीन यह उपबंध किया गया है कि सारणी के प्रथम दो स्तंभों में विनिर्दिष्ट भारतीय दंड संहिता की धाराओं के अधीन दंडनीय अपराधों का शमन उस न्यायालय की अनुज्ञा से, जिनके समक्ष ऐसे अपराध के लिए कोई अभियोजन लंबित है, उस सारणी के तृतीय स्तंभ में उल्लिखित व्यक्तियों के द्वारा किया जा सकता है। उपधारा (9) के अधीन यह उपबंध किया गया है कि अपराध का शमन इस धारा के उपबंधों के अनुसार ही किया जाएगा, अन्यथा नहीं। उपर्युक्त विधायी आदेश को दृष्टिगत करते हुए केवल वे अपराध जो सारणी 1 या सारणी 2 के अंतर्गत, जैसाकि ऊपर कहा गया है, आते हैं उनका शमन किया जा सकता है और दंड संहिता के अधीन दंडनीय शेष अपराधों का शमन नहीं किया जा सकता।

12. इसके अतिरिक्त **रामपूजन** [(1973) 2 एस. सी. सी. 456] वाले मामले में अपीलार्थियों द्वारा दी गई दलील का समर्थन नहीं किया गया है। उक्त मामले में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि वे बड़े अपराध जिनके लिए अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया गया है, निःसंदेह अशमनीय हैं किंतु दंड की मात्रा तय करते समय समझौते के तथ्य पर विचार किया जा सकता है। **राम लाल** [(1999) 2 एस. सी. सी. 213] वाले मामले में इस न्यायालय ने वाई. सुरेश बाबू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य [(2005) 1 एस. सी. सी. 347] वाले मामले को निर्दिष्ट किया है और **महेश चन्द** [(1990) सप्ली. एस. एस. सी. 681] वाले मामले के पृष्ठ 682 पर पैरा 3 में निम्न प्रकार मत व्यक्त

¹ (2005) 1 एस. सी. सी. 343.

किया है -

‘3. हमने इस मामले पर गहराई से विचार किया है और अपराध का शमन किए जाने के लिए जो अभिवाक् किया गया है, उस पर भी विचार किया है। मामले की प्रकृति और उन परिस्थितियों का परिशीलन करने पर जिनके अधीन अपराध कारित हुआ, विचारण न्यायालय के लिए यह उचित है कि वह अपराध का शमन किए जाने के लिए अपीलार्थियों को अनुज्ञात करे।’

इस निर्णय के पृष्ठ 214 पर पैरा 3 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है -

‘हम उक्त विनिश्चय का अनुसरण आबद्धकारी नजीर के रूप में नहीं कर सकते। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 ‘अपराधों का शमन’ के बारे में है जिसमें दो सारणियों का उपबंध किया गया है, एक सारणी में ऐसे अपराधों का वर्णन किया गया है जिनका शमन उसमें उल्लिखित व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है और दूसरी वह सारणी है जिसमें ऐसे अपराधों का वर्णन किया गया है जिनका शमन उसमें उपदर्शित व्यक्ति द्वारा न्यायालय की अनुमति से किया जा सकता है। केवल ऐसे ही अपराध उक्त दो सारणियों में दिए गए हैं जिनका शमन किया जा सकता है और इनके अतिरिक्त कोई भी अपराध शमनीय नहीं है।’

13. **वाई. सुरेश बाबू** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने विशेष रूप से यह मत व्यक्त किया है कि उक्त मामला ‘नजीर नहीं माना जाएगा’। उपर्युक्त दोनों विनिश्चय, तथ्यों पर आधारित हैं और किन्हीं भी परिस्थितियों में इन विनिश्चयों को अनवधानता माना गया है क्योंकि धारा 320 की उपधारा (9) पर ध्यान ही नहीं दिया गया है। इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 326 के अधीन दंडनीय अपराध के शमन की अनुज्ञा देने से ठीक ही इनकार किया है।’

16. उपरोक्त बातों को दृष्टिगत करते हुए, हम अपीलार्थी के कारावास के दंड को घटाकर पहले से भोगे गए कारावास जितना करते हैं किंतु प्रतिकर की राशि बढ़ाकर 2 लाख रुपए करते हैं जो तीन मास के

भीतर आहत को संदाय की जाएगी जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर उच्च न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश अभिपुष्ट माना जाएगा ।

17. इस अपील का निपटारा उपरोक्त निबंधनों में किया जाता है ।

अपील निपटाई गई ।

अस.

[2016] 2 उम. नि. प. 13

राजस्थान राज्य

बनाम

दाऊद खां

4 नवंबर, 2015

न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर और न्यायमूर्ति एस. ए. बोबडे

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 [सपटित आयुध अधिनियम, 1959 (1959 का 54) की धारा 25 के साथ धारा 3] – आपराधिक मानववध – जहां मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य, अग्न्यायुध से मृतक पर गोली चलाने, रक्त अनुचिह्न और न्यायालयिक साक्ष्य से यह साबित होता है कि अभियुक्त द्वारा मृतक पर साशय गोली चलाई गई थी वहां अभियुक्त को आपराधिक मानववध के अपराध से दोषसिद्ध करना न्यायोचित है ।

तारीख 19 जून, 2004 को लगभग 9.30 बजे अपराह्न में नंद सिंह बत्रा टेलीकॉम एंड रेस्टोरेन्ट, नीमबहेड़ा, जिला-प्रतापगढ़, राजस्थान पर गया था । वह अपने दोस्तों नितिन सिंधी और नरेन्द्र कुमावत के साथ था । जब वे रेस्तरां में बैठे हुए थे, तब जावेद बेग और दाऊद खां एक मोटर साइकिल से वहां पहुंचे । ऐसा प्रतीत होता है कि जावेद खां और दाऊद खां की नंद सिंह से इंडिया और पाकिस्तान के बीच हुए क्रिकेट मैच के परिणाम को लेकर शिकायत थी । अभियोजन पक्ष के अनुसार, जावेद बेग ने चाकू निकाला और नंद सिंह से कहा कि आज नंद सिंह का आखिरी समय आ गया है । इस पर दाऊद खां ने भरी हुई पिस्तौल से नंद सिंह के वक्ष के दाईं ओर गोली चलाई और उसके पश्चात् दोनों अपनी मोटर साइकिल से भाग गए । नरेन्द्र कुमावत और नितिन सिंधी ने उनका पीछा किया किंतु वे

हमलावरों को पकड़ने में सफल नहीं हो सके । इसके पश्चात्, नरेन्द्र कुमावत और नितिन सिंधी द्वारा नंद सिंह को उनकी मोटर साइकिल से निकट स्थित अस्पताल पहुंचाया गया किंतु नंद किशोर को “मृत लाया गया” घोषित किया गया । इसके पश्चात्, नरेन्द्र कुमावत, नंद सिंह के निवास पर गया और उसके भाई गजेन्द्र सिंह को घटना के बारे में बताया । गजेन्द्र सिंह भी अस्पताल गया और उसके पश्चात् तारीख 19 जून, 2004 को लगभग 10.30 बजे अपराहन में नीमबहेड़ा पुलिस थाने में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट 374/04 दर्ज कराई गई । दाऊद खां और जावेद बेग दोनों को अभियुक्त के रूप में नामित किया गया । तीनों अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया और यह अभिकथन किया गया कि दाऊद खां दंड संहिता की धारा 302 और आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के साथ पठित धारा 3 के अधीन दंडनीय अपराध का दोषी है जब कि अन्य अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और धारा 302 के साथ पठित धारा 109 के अधीन अपराध का दोषी पाया गया । इस मामले का विचारण 2005 का सेशन मामला सं. 103 के रूप में अपर जिला और सेशन न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक), कैम्प नीमबहेड़ा, जिला-प्रतापगढ़ द्वारा किया गया । विचारण न्यायाधीश ने अपने निर्णय और आदेश के अनुसार दाऊद खां को दंड संहिता की धारा 302 और आयुध अधिनियम की धारा 25 के साथ पठित धारा 3 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया किंतु उसे दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध का दोषी नहीं पाया । अभियुक्तों को समुचित रूप से दंडादिष्ट भी किया गया । विचारण न्यायालय के विनिश्चय से व्यथित होकर दाऊद खां और जावेद बेग द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल की गईं जिसमें उन्होंने अपनी दोषसिद्धि को चुनौती दी और राज्य द्वारा भी अपील फाइल की गईं जिसमें जावेद बेग की भागतः दोषमुक्ति और नितिन सिंधी की पूर्ण दोषमुक्ति को चुनौती दी गई । उच्च न्यायालय ने तारीख 11 नवंबर, 2008 को पारित अपने निर्णय और आदेश में यह निष्कर्ष निकाला कि दाऊद खां दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध का दोषी नहीं है किन्तु वह दंड संहिता की धारा 304 का प्रथम भाग के अधीन अपराध का दोषी पाया गया । आयुध अधिनियम की धारा 25 के साथ पठित धारा 3 के अधीन की गईं दाऊद खां की दोषसिद्धि कायम रखी गईं । जहां तक आयुध अधिनियम के अधीन जावेद बेग की दोषसिद्धि का संबंध है, उसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है किंतु दंड को घटाया गया है । उच्च न्यायालय ने, दंड संहिता की धारा 302 के

अधीन दंडनीय अपराध के लिए की गई जावेद बेग की दोषमुक्ति और अभियुक्त नितिन सिंधी की पूर्ण दोषमुक्ति के विरुद्ध राज्य द्वारा फाइल की गई अपील भी खारिज कर दी। उच्च न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर, दाऊद खां और राज्य द्वारा ऊपर उल्लिखित रूप में अपीलें फाइल की गई हैं। उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने में कोई विलंब नहीं किया गया है। इसलिए इसमें छलसाधन किए जाने का प्रश्न नहीं उठता है। इसके अतिरिक्त पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी सुरेंद्र सिंह से मजिस्ट्रेट को विशेष रिपोर्ट प्रेषित करने में हुए विलंब के संबंध में कोई भी प्रश्न नहीं पूछा गया। तथापि, अन्वेषण अधिकारी राजिन्दर पारिक से स्पष्टीकरण मांगा गया जिसने स्पष्ट उत्तर दिया कि न्यायालय या मजिस्ट्रेट को विशेष रिपोर्ट भेजने का कर्तव्य, उसका नहीं है। ऐसे अधिकारी से जो कि थाने का भारसाधक अधिकारी था और वह उत्तर दे सकता था, कोई भी प्रश्न न पूछे जाने पर इस संबंध में अभियोजन पक्ष के विरुद्ध कोई भी प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता और न ही यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि मजिस्ट्रेट को विशेष रिपोर्ट प्राप्त होने में जो विलंब हुआ है, वह अभियोजन पक्ष कथन के लिए घातक है। यह प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के संगत साक्ष्य के अतिरिक्त है। इस आधार पर, यह व्यक्त किया गया है कि अभियोजन पक्ष के अनुसार मृतक दिलीप सिंह पर दो गोलियां चलाई गई थीं और “महत्वपूर्ण बात जो अभियोजन पक्ष को साबित करनी है, यह है कि ये गोलियां एक व्यक्ति द्वारा नहीं अपितु दो व्यक्तियों द्वारा चलाई गई थीं और दोनों ही गोलियां जिस प्रकार और जिस दूरी से चलाई गई हैं वैसा ही अभिकथन प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा किया गया है। न्यायालय की राय में, अभियोजन साक्ष्य में अत्यंत मूल मुद्दे को लेकर असंगतता है और निचले न्यायालयों द्वारा ये ही गलती की गई हैं कि उन्होंने इस असंगतता को अनदेखा किया है।” अभियोजन साक्ष्य में आई इस असंगतता को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय ने अपीलार्थी-मोहिन्दर सिंह को संदेह का लाभ दिया। इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय ने तीनों प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया क्योंकि उनमें से दो संयोगी साक्षी थे और पूर्णतया स्वतंत्र साक्षी नहीं थे और तीसरा साक्षी पक्षपाती है और उसका परिसाक्ष्य अन्यथा भी असंभावी है क्योंकि उसने यह दावा किया है कि उसने गोली चलाते हुए तब देखा जब उसकी गर्दन के पीछे उसे गोली लग चुकी थी। जहां तक वर्तमान अपील का संबंध है, इस मामले के तथ्य पूर्णतया भिन्न हैं। यद्यपि न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट इस आशय से अनिर्णायक है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि

क्या शरीर से निकाली गई गोली बरामद किए गए हथियार से निश्चित रूप से मेल खाती है, तथापि, इस बात में संदेह नहीं कि शरीर से निकाली गई गोली बरामद की गई बंदूक से चलाई जा सकती थी। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि गोली और बंदूक के बीच मेल न खाने वाली कोई बात नहीं है। अतः मोहिन्दर सिंह वाले मामले से दाऊद खां को कोई सहायता नहीं मिल सकती। तथापि, विद्वान् काउंसेल ने इसका लाभ उठाने के लिए अब्दुल सईद बनाम मध्य प्रदेश राज्य वाले मामले का अवलंब लिया है और यह विनिश्चय भी इस मामले के साथ किसी भी प्रकार संगत नहीं है। उस मामले में चिकित्सीय साक्ष्य और प्रत्यक्ष साक्ष्य के बीच विरोधाभास था जबकि इस मामले में ऐसा कोई विवाद नहीं है। चिकित्सीय साक्ष्य और प्रत्यक्ष साक्ष्य में इस बात को लेकर कोई संदेह नहीं है कि दाऊद खां ने बंदूक चलाई थी। न्यायालयिक साक्ष्य से यह दर्शित होता है कि नंद सिंह के शरीर से निकाली गई गोली बरामद की गई बंदूक से चलाई जा सकती थी। इस बात पर प्रश्न नहीं उठाया गया है कि नंद सिंह पर बरामद की गई बंदूक से गोली चलाई गई थी या अन्य किसी बंदूक से और किसी भी साक्षी से कोई भी ठोस प्रश्न दाऊद के कहने पर जावेद से बरामद की गई बंदूक के संबंध में नहीं किया गया है और न ही यह प्रश्न किया गया है कि अभियुक्त दाऊद खां द्वारा इसी बंदूक का प्रयोग किया गया था या अन्य किसी बंदूक का। इन परिस्थितियों में, यदि नंद सिंह ने वास्तव में लगभग दो फुट या उससे कम दूरी से गोली चलाई थी तब मृतक की त्वचा पर कालापन होता। विचारण न्यायालय ने इस बात पर ध्यान दिया किंतु उसने यह राय व्यक्त की कि चूंकि नंद सिंह बनियान और कमीज पहने हुए था, इसलिए उसकी त्वचा बंदूक की गोली से काली नहीं हो सकी। ऐसा हो सकता है किंतु इस संबंध में कोई साक्ष्य नहीं है, नंद सिंह के बनियान और कमीज पर कालापन आया या नहीं इस संबंध में भी किसी भी साक्षी से कोई प्रश्न नहीं पूछा गया है। अतः विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष पर विवाद करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है। तथापि, इस मामले में अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य में इस संबंध में कोई भी संदेह नहीं है। डा. तेज सिंह दांगी जो कि चिकित्सा बोर्ड के एक सदस्य हैं, ने शव परीक्षण किया और यह कथन किया कि उसने ऐसी परिस्थितियों में रक्त गिरने के संबंध में कोई राय नहीं दी थी और यह भी आवश्यक नहीं है कि यदि शरीर का कोई भाग क्षतिग्रस्त होता है तो रक्त बाहर गिरेगा। इसके प्रतिकूल, डा. के. आसिफ जो कि शव परीक्षण करने वाले चिकित्सा बोर्ड ने एक अन्य सदस्य हैं, ने यह मत व्यक्त किया है कि घटनास्थल पर ऐसी स्थिति में रक्त गिर सकता है, किंतु “रक्त घाव से बहुत कम मात्रा में निकलेगा” जो गोली लगने के प्रविष्टि घाव से कम मात्रा में निकलेगा और

निकास घाव से रक्त अधिक मात्रा में निकलेगा” अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि नंद सिंह का रक्त घटनास्थल पर बिखरा हुआ नहीं पाया गया था। अभिलेख पर यह मौजूद है कि नंद सिंह नवयुवक और स्वस्थ व्यक्ति था। यद्यपि यह असंगत प्रतीत होता है कि वक्ष में गोली लगने के पश्चात् नंद सिंह लगभग 70 फुट की दूरी चल कर गया था किंतु यह बात असंभावी नहीं हो सकती। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए उचित व्यक्ति चिकित्सा विशेषज्ञ हो सकता था किंतु चिकित्सा विशेषज्ञ से कोई प्रश्न नहीं पूछा गया। इन परिस्थितियों से, इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि नंद सिंह ने जमीन पर गिरने से पूर्व उपरोक्त दूरी तय नहीं की थी। घटना से संबंधित पांच साक्षियों ने साक्ष्य दिया है कि घटना बत्रा टेलीकाम पर तारीख 19 जून, 2004 को रात्रि में घटित हुई थी। न्यायालय को इनमें से किसी भी साक्षी के साक्ष्य को अविश्वसनीय ठहराने का कोई कारण विशेषकर इस स्थिति में दिखाई नहीं देता है कि इन सभी साक्षियों ने घटनाक्रम का संगत वर्णन किया है। कुछ छोटे-मोटे विरोधाभास भी हैं, ऐसे विरोधाभास स्वाभाविक हैं, जैसे कि बंदूक और नंद सिंह के बीच की दूरी किंतु इन विरोधाभासों से अभियोजन पक्षकथन का सार प्रभावित नहीं होता है और न ही विरोधाभासों से साक्षियों की विश्वसनीयता दुर्बल होती है। यदि मामले के तथ्यों पर एक-एक करके विचार किया जाए और बिना किसी क्रम के विचार किया जाए तब संदेह पैदा होता है। तथापि, यदि इन तथ्यों पर संयुक्त रूप से विचार किया जाए तब कोई संदेह बाकी नहीं रह पाता। तथ्य संयुक्त रूप से इस प्रकार हैं : (i) नंद सिंह को बंदूक से गोली मारी गई (ii) जो गोली नंद सिंह के शरीर से निकाली गई वह उस बंदूक से चलाई जा सकती थी इसका निषेधात्मक पहलू यह हो सकता था कि शरीर से निकाली गई गोली बरामद की गई बंदूक से चलाई नहीं जा सकती थी। किसी भी व्यक्ति ने इस पर प्रश्न नहीं उठाया है, (iii) गोली निकट दूरी से चलाई गई थी किंतु नंद सिंह की त्वचा पर कोई भी कालापन नहीं था इसका कारण यह हो सकता है कि उसने कपड़े पहने हुए थे। किसी भी व्यक्ति ने इस पर भी प्रश्न नहीं उठाया है, (iv) नंद सिंह की मृत्यु तत्काल नहीं हुई और गोली लगने के बावजूद उसने 70 फुट की दूरी चल कर तय की। इस पर भी कोई प्रश्न नहीं किया गया है, (v) चिकित्सा विशेषज्ञ ने यह साक्ष्य दिया है कि प्रविष्टि घाव से रक्त निकलना आवश्यक नहीं है और यह संभव है कि नंद सिंह का रक्त घटनास्थल और वह स्थान जहां उसकी मृत्यु हुई, के बीच पड़ा हुआ नहीं पाया गया। तथापि, रक्त वहां मौजूद था जहां पर नंद सिंह की मृत्यु हुई थी, (vi) इस घटना के पांच प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं जिन्होंने गोली चलाते हुए देखा था और इन साक्षियों ने संगत साक्ष्य दिया है और दाऊद खां की

शनाख्त उस व्यक्ति के रूप में की है जिसने नंद सिंह पर गोली चलाई । इन निष्कर्षों और परिणामों में से कोई भी अनुचित नहीं है । इसके प्रतिकूल, ये निष्कर्ष/परिणाम विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार किए गए हैं । इससे भिन्न मत व्यक्त किए जाने का न्यायालय को कोई कारण दिखाई नहीं देता है । (पैरा 29, 33, 34, 38, 40, 41, 46 और 47)

अवलंबित निर्णय

	पैरा
[2014] (2014) 4 एस. सी. सी. 747 : अशोक देबबर्मा बनाम त्रिपुरा राज्य ।	44

निर्दिष्ट निर्णय

[2014] (2014) 2 एस. सी. सी. 1 : तुलिया काली और ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार ;	24
[2014] (2014) 12 एस. सी. सी. 312 : सुदर्शन बनाम महाराष्ट्र राज्य ;	28
[2013] (2013) 12 एस. सी. सी. 316 : रतिराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य ;	28
[2013] (2013) 12 एस. सी. सी. 539 : शिव शंकर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ;	27
[2011] (2011) 6 एस. सी. सी. 288 : ब्रह्मस्वरूप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ;	26
[2010] (2010) 10 एस. सी. सी. 259 : अब्दुल सईद बनाम मध्य प्रदेश राज्य ;	34
[2010] (2010) 6 एस. सी. सी. 1 : मनु शर्मा बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र, दिल्ली) ;	44
[2002] (2002) 7 एस. सी. सी. 295 : दाना यादव बनाम बिहार राज्य ;	44
[1998] (1998) 4 एस. सी. सी. 605 : जार्ज बनाम केरल राज्य ;	44

[1994]	(1994) 5 एस. सी. सी. 188 : मेहराज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ;	28
[1975]	(1975) 4 एस. सी. सी. 480 : हरभजन सिंह बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य ;	44
[1972]	(1972) 3 एस. सी. सी. 393 : तुलिया काली बनाम तमिलनाडु राज्य ;	10
[1970]	(1970) 3 एस. सी. सी. 518 : जडुनाथ सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ;	44
[1958]	ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 350 : कांता प्रसाद बनाम दिल्ली प्रशासन ;	44
[1950]	[1950] एस. सी. आर. 821 : मोहिन्दर सिंह बनाम राज्य ।	31, 34

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 126 और 351.

2005 की दांडिक अपील सं. 879 में राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 11 नवंबर, 2008 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

पक्षकारों की ओर से सर्वश्री सुशील कुमार (ज्येष्ठ अधिवक्ता), एस. एस. शमशेरी (अपर महाधिवक्ता), अमित शर्मा, यीशु प्रयाश, (सुश्री) रुचि कोहली, (सुश्री) प्रीति भारद्वाज, आदित्य कुमार, सूर्य कमल मिश्रा, मुश्ताक अहमद और (सुश्री) नमिता चौधरी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति मदन बी. लोकर ने दिया ।

न्या. लोकर – ये अपीलें राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर द्वारा तारीख 11 नवंबर, 2008 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई हैं । 2010 की दांडिक अपील सं. 126 राजस्थान राज्य द्वारा फाइल की गई हैं जिसमें उच्च न्यायालय के उस आदेश को चुनौती दी गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में ‘दंड संहिता’ कहा गया है) की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए

दाऊद खां की दोषसिद्धि को कायम रखने से इनकार कर दिया था । 2010 की दांडिक अपील सं. 351 दाऊद खां द्वारा फाइल की गई है जिसमें दंड संहिता की धारा 304 के प्रथम भाग के अधीन दंडनीय अपराध के लिए की गई उसकी दोषसिद्धि को चुनौती दी गई है ।

2. उच्च न्यायालय ने जिन व्यापक तथ्यों के आधार पर विनिश्चय किया है, इस प्रकार है, कि तारीख 19 जून, 2004 को लगभग 9.30 बजे अपराहन में नंद सिंह बत्रा टेलीकाम एंड रेस्टोरेन्ट, नीमबहेड़ा, जिला-प्रतापगढ़, राजस्थान पर गया था । वह अपने दोस्तों नितिन सिंधी (अभियुक्त-3) और नरेन्द्र कुमावत के साथ था । जब वे रेस्तरां में बैठे हुए थे, तब जावेद बेग (अभियुक्त-2) और दाऊद खां (अभियुक्त-1) की मोटर साइकिल से वहां पहुंचे । ऐसा प्रतीत होता है कि जावेद बेग और दाऊद खां की नंद सिंह से इंडिया और पाकिस्तान के बीच हुए क्रिकेट मैच के परिणाम को लेकर शिकायत थी ।

3. अभियोजन पक्ष के अनुसार, जावेद बेग ने चाकू निकाला और नंद सिंह से कहा कि आज नंद सिंह का आखिरी समय आ गया है । इस पर दाऊद खां ने भरी हुई पिस्तौल से नंद सिंह के वक्ष के दाईं ओर गोली चलाई और उसके पश्चात् दोनों (अभियुक्त) अपनी मोटर साइकिल से भाग गए । नरेन्द्र कुमावत और नितिन सिंधी ने उनका पीछा किया किंतु वे हमलावरों को पकड़ने में सफल नहीं हो सके ।

4. इसके पश्चात्, नरेन्द्र कुमावत और नितिन सिंधी द्वारा नंद सिंह को उनकी मोटर साइकिल से निकट स्थित अस्पताल पहुंचाया गया किंतु नंद सिंह को 'मृत लाया गया' घोषित किया गया । इसके पश्चात् नरेन्द्र कुमावत, नंद सिंह के निवास पर गया और उसके भाई गजेन्द्र सिंह (अभि. सा. 1) को घटना के बारे में बताया । गजेन्द्र सिंह भी अस्पताल गया और उसके पश्चात् तारीख 19 जून, 2004 को लगभग 10.30 बजे अपराहन में नीमबहेड़ा पुलिस थाने में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट 374/04 दर्ज कराई गई । दाऊद खां और जावेद बेग दोनों को अभियुक्त के रूप में नामित किया गया ।

5. तारीख 21 जून, 2004 को दाऊद खां को गिरफ्तार किया गया । इसके पश्चात्, जावेद बेग को तारीख 15 जुलाई, 2004 को गिरफ्तार किया गया । नंद सिंह पर गोली चलाने के लिए जिस दाऊद खां ने बंदूक का प्रयोग किया था, वह दाऊद खां के बताने पर जावेद खां के कब्जे से बरामद की गई थी । तारीख 28 जुलाई, 2007 को नितिन सिंधी को गिरफ्तार किया गया था ।

6. तीनों अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया और यह अभिकथन किया गया कि दाऊद खां दंड संहिता की धारा 302 और आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के साथ पठित धारा 3 के अधीन दंडनीय अपराध का दोषी है जब कि अन्य अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और धारा 302 के साथ पठित धारा 109 के अधीन अपराध का दोषी पाया गया ।

7. इस मामले का विचारण 2005 का सेशन मामला सं. 103 के रूप में अपर जिला और सेशन न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक), कैम्प नीमबहेड़ा, जिला-प्रतापगढ़ द्वारा किया गया । विचारण न्यायाधीश ने अपने निर्णय और आदेश के अनुसार दाऊद खां को दंड संहिता की धारा 302 और आयुध अधिनियम की धारा 25 के साथ पठित धारा 3 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया किंतु उसे दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध का दोषी नहीं पाया । अभियुक्तों को समुचित रूप से दंडादिष्ट भी किया गया ।

8. विचारण न्यायालय के विनिश्चय से व्यथित होकर दाऊद खां और जावेद बेग द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल की गईं जिसमें उन्होंने अपनी दोषसिद्धि को चुनौती दी और राज्य द्वारा भी अपील फाइल की गई जिसमें जावेद बेग की भागतः दोषमुक्ति और नितिन सिंधी की पूर्ण दोषमुक्ति को चुनौती दी गई । उच्च न्यायालय ने तारीख 11 नवंबर, 2008 को पारित अपने निर्णय और आदेश में यह निष्कर्ष निकाला कि दाऊद खां दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध का दोषी नहीं है किन्तु वह दंड संहिता की धारा 304 का प्रथम भाग के अधीन अपराध का दोषी पाया गया । आयुध अधिनियम की धारा 25 के साथ पठित धारा 3 के अधीन की गई दाऊद खां की दोषसिद्धि कायम रखी गई । जहां तक आयुध अधिनियम के अधीन जावेद बेग की दोषसिद्धि का संबंध है, उसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है किंतु दंड को घटाया गया है । उच्च न्यायालय ने, दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए की गई जावेद बेग की दोषमुक्ति और अभियुक्त नितिन सिंधी की पूर्ण दोषमुक्ति के विरुद्ध राज्य द्वारा फाइल की गई अपील भी खारिज कर दी ।

9. उच्च न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर, दाऊद खां और राज्य द्वारा ऊपर उल्लिखित रूप में अपीलें फाइल की गई हैं ।

विचारण न्यायालय का विनिश्चय

10. विचारण न्यायालय के समक्ष कई दलीलें दी गईं । यह तर्क दिया

गया कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट संदिग्ध है क्योंकि अगले दिन के समाचारपत्र में यह प्रकाशित किया गया कि एक एसटीडी बूथ में अज्ञात व्यक्तियों ने नंद सिंह की हत्या की है। पुलिस घटनास्थल पर पहुंची और आहत नंद सिंह को अस्पताल ले गई। यह दलील दी गई कि इस संबंध में रिपोर्ट दर्ज कराई गई है किंतु इसके पश्चात् अभिलेख से रिपोर्ट हटा कर दबा दी गई। इसके अतिरिक्त, यह दलील दी गई कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट डेढ़ घंटे के बाद दर्ज की गई और **तुलिया काली** बनाम **तमिलनाडु राज्य**¹ वाले मामले का अवलंब लिया गया। इसके अतिरिक्त यह दलील दी गई कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने के संबंध में मजिस्ट्रेट को सूचना देने में बहुत विलंब किया गया है जिसके बाबत कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। यह विलंब एक दिन और 13 (तेरह) घंटों (अर्थात् 36/37 घंटे) का था। अतः, अभियुक्तों को अपराध में आलिप्त करने के लिए पर्याप्त समय था।

11. यह भी दलील दी गई है कि जावेद से मात्र पिस्तौल की बरामदगी यह अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि दाऊद खां दोषी है। किसी भी स्थिति में न्यायालयिक प्रयोगशाला की राय यह सुनिश्चित नहीं करती है कि नंद सिंह के शरीर से निकाली गई गोली, बरामद किए गए पिस्तौल से चलाई गई थी या नहीं। इसके अतिरिक्त यह भी दलील दी गई है कि साक्षियों के अनुसार गोली निकट से चलाई गई थी किंतु शव परीक्षण रिपोर्ट से त्वचा पर कोई भी कालापन उपदर्शित नहीं होता है जो तभी बनता है जब गोली निकट से चलाई जाती है। यह दलील दी गई कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षी घटना के समय घटनास्थल पर मौजूद नहीं थे और दाऊद खां को अपराध में आलिप्त करने के लिए कहानी गढ़ी गई है।

12. प्रतिरक्षा पक्ष ने यह दलील दी है कि घटना उस स्थान पर घटित नहीं हुई थी जहां उसका घटित होना बताया गया है। इस दलील के समर्थन में यह तर्क दिया गया कि नंद सिंह का शव सड़क के पार 70 फुट दूर टायर मरम्मत की दुकान के निकट पाया गया था जो कि उस जगह से काफी दूर है जहां पर नंद सिंह अभिकथित रूप से बत्रा टेलीकॉम में बैठा हुआ था। जहां पर गोली चलाई गई थी वहां कोई भी रक्त नहीं पाया गया किंतु टायर मरम्मत की दुकान के निकट रक्त पाया गया। यह अत्यंत असंभावी है विशेषकर ऐसी स्थिति में जब नंद सिंह को गोली उसके नाजुक अंग के निकट वक्ष पर लगी हो। अतः, साक्षियों की मौजूदगी ही

¹ (1972) 3 एस. सी. सी. 393.

संदिग्ध नहीं है अपितु घटनास्थल पर संदेहपूर्ण है ।

13. विचारण न्यायालय ने समाचारपत्र में छपी खबर का अवलंब नहीं लिया है क्योंकि ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि संबद्ध पुलिस थाने में रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी कि अज्ञात व्यक्तियों द्वारा अपराध कारित किया गया है । विचारण न्यायालय ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में लगभग डेढ़ घंटे का समय लगा है जिसका परिस्थितियों द्वारा स्पष्टीकरण दिया गया है कि नंद सिंह को अस्पताल ले जाया गया था और उसके भाई गजेन्द्र सिंह (अभि. सा. 1) को घटना के बारे में सूचित किया गया था । यह विलंब अयुक्तियुक्त नहीं पाया गया । तथापि, विचारण न्यायालय ने, मजिस्ट्रेट को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने की सूचना देने में हुए विलंब पर विचार नहीं किया है ।

14. विचारण न्यायालय ने दाऊद खां के कहने पर अभियुक्त जावेद से पिस्तौल और जिन्दा कारतूस बरामद किए जाने को स्वीकार किया है । विचारण न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया है कि न्यायालयिक रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि गोली पिस्तौल से चलाई गई थी और उसमें यह उल्लेख नहीं है कि जो गोली नंद सिंह के शरीर से निकाली गई थी वह बरामद किए गए पिस्तौल से नहीं चलाई जा सकती थी । विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि नंद सिंह की त्वचा पर कालापन नहीं आया था क्योंकि वह बनियान और कमीज पहने हुए था । अतः, प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य पर पूर्णतया विश्वास करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि दाऊद खां ने नंद सिंह पर घटनास्थल पर गोली चलाई और उस समय कई साक्षी मौजूद थे । इस आधार पर, विचारण न्यायालय ने दाऊद खां को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया ।

उच्च न्यायालय का विनिश्चय

15. उच्च न्यायालय के समक्ष दाऊद खां की ओर से और अधिक विस्तार से दलीलें दी गई हैं । प्राथमिक रूप से ये दलीलें दी गई थीं (जो हमारे समक्ष भी दोहराई गई हैं) कि न्यायालयिक रिपोर्ट से प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों का वृत्तांत मिथ्या सिद्ध होता है । यह दलील दी गई कि साक्षियों के अनुसार गोली लगभग 4 (चार) फुट की दूरी से चलाई गई थी । इसके बावजूद नंद सिंह की त्वचा पर कोई भी कालापन नहीं आया । उच्च न्यायालय ने इस आधार पर इस दलील को खारिज कर दिया कि साक्षियों ने यह कथन किया है कि 'गोली निकट से चलाई गई थी' और यह कि

‘किसी भी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी ने यह नहीं कहा है कि 4 फुट से कम की दूरी से गोली चलाई गई थी’। दूरी में थोड़ा परिवर्तन हो सकता है किंतु यह अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त, मात्र इस कारण से कि (नंद सिंह की) त्वचा पर कालापन नहीं था, यह अपरिहार्य निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि गोली दूर से चलाई गई थी।

16. यह दलील दी गई है कि पिस्तौल दाऊद खां से नहीं अपितु जावेद से बरामद की गई है। उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यदि ऐसा हुआ था, तब इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि दाऊद खां ने जावेद को हथियार सौंपा था। हमारे समक्ष इस दलील पर बल नहीं दिया गया है और हमें इस पर और अधिक समय लगाने की आवश्यकता नहीं है सिवाय इस पर विचार करने के कि विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला था कि बरामदगी दाऊद खां के कहने पर की गई थी।

17. यह दलील दी गई है कि अगले दिन के समाचारपत्र में छपी खबर पुलिस अधीक्षक से प्राप्त की गई थी और वह इस बाबत थी कि कुछ अज्ञात व्यक्तियों ने गोली चलाई थी। उच्च न्यायालय ने यह दलील खारिज कर दी और यह अभिनिर्धारित किया कि समाचारपत्र की खबर को साक्ष्य नहीं माना जा सकता। हमारे समक्ष भी यह दलील निर्बल रूप से दी गई है किंतु इससे मुश्किल से ही कोई निष्कर्ष निकल सकता है।

18. यह दलील दी गई है कि वह मिट्टी जिस पर नंद सिंह का रक्त लगा हुआ था, घटनास्थल से लगभग 70 (सत्तर) फुट की दूरी पर बरामद हुई थी। इससे यह उपदर्शित होता है कि गोली बत्रा टेलीकाम पर नहीं बल्कि कहीं और चली थी। यह दलील दी गई है कि उच्च न्यायालय ने छोटू खां प्रतिरक्षा साक्षी 1) के साक्ष्य पर विश्वास न करके गलती की है जिसने यह कथन किया था कि किसी व्यक्ति ने उसकी (छोटू की) टायर की दुकान के निकट एक ट्रक में से नंद सिंह पर गोली चलाई थी। उच्च न्यायालय ने यह राय व्यक्त की है कि रक्त कहीं और इसलिए पड़ा पाया गया था कि नंद सिंह गोली लगने के पश्चात् भागा था और लगभग 70 (सत्तर) फुट की दूरी पर जाकर गिर गया था। इस कारण से भी उच्च न्यायालय ने छोटू खां (प्रतिरक्षा साक्षी 1) के साक्ष्य को अविश्वसनीय पाया और घटना के संबंध में उसके द्वारा दिया गया वृत्तांत बाद में आया विचार पाया।

19. अंतिमतः, यह दलील दी गई है कि मजिस्ट्रेट द्वारा प्रथम इत्तिला

रिपोर्ट प्राप्त किए जाने में जो लगभग 37 घंटों का विलंब हुआ है उसके संबंध में स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। उच्च न्यायालय ने इस दलील पर ध्यान तो दिया था किंतु दुर्भाग्यवश उस पर कोई कार्यवाही नहीं की।

20. मामले के कुल मिलाकर सभी तथ्यों पर विचार करने पर यह पता चलता है कि दाऊद खां की ओर से यह दलील दी गई है कि जो व्यक्ति गोली चलाए जाने के साक्षी हैं, उनके साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया जा सकता। उच्च न्यायालय ने यह दलील खारिज की है।

21. तथापि, उच्च न्यायालय ने यह महसूस किया है कि दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय हत्या का मामला नहीं बनता है क्योंकि दाऊद खां ने केवल एक गोली चलाई थी और स्थिति का असम्यक् लाभ नहीं लिया, इसीलिए ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने का मामला बनता है जिससे मृत्यु होना संभावित हो जो कि दंड संहिता की धारा 304 के प्रथम भाग के अधीन आता है। तदनुसार, दाऊद खां को उसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया और जुर्माने के साथ 7 (सात) वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया।

22. व्यथित होकर दाऊद खां ने हमारे समक्ष अपील की है।

प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में विलंब : दलीलें और चर्चा

23. यह दलील दी गई है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट गजेन्द्र सिंह द्वारा समय-पूर्व दर्ज कराई गई थी। वास्तव में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 20 जून, 2004 को दर्ज कराई गई थी किंतु उसे 19 जून, 2004 को बदल कर समय पूर्व कर दिया। यह दलील दी है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में की गई ओवर रायटिंग से यह स्पष्ट हो जाता है। इससे यह संकेत मिलता है कि पहले अभियुक्त 'चुना गया' और उसके पश्चात् उसे आलिप्त करने के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई। हमें इस दलील में कोई सार दिखाई नहीं देता है। हमने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की मूल प्रति देखी है और हमें ओवर रायटिंग किए जाने जैसी कोई बात दिखाई नहीं देती है। हमने यह भी देखा है कि ऐसी कोई दलील विचारण न्यायालय या उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं दी गई थी।

24. यह भी दलील दी गई है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में विलंब था। **तुलिया काली और ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार**¹ वाले मामले को निर्दिष्ट किया गया। हमें उस दलील में भी कोई सार

¹ (2014) 2 एस. सी. सी. 1.

दिखाई नहीं देता है। यह कथन किया गया है कि घटना लगभग 9.30 बजे अपराह्न में घटित हुई थी। प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में मुश्किल से ही कोई विलंब हुआ है। तथापि, यह कहा जा सकता है कि यह दलील इस अनुमान पर आधारित है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 20 जून, 2004 को दर्ज कराई गई थी न कि तारीख 19 जून, 2004 को और इस दलील को हम पहले ही खारिज कर चुके हैं।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 157 : दलीलें और चर्चा

25. इसके पश्चात् यह दलील दी गई कि मजिस्ट्रेट द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्राप्त किए जाने में लगभग 36/37 घंटे का विलंब हुआ है क्योंकि मजिस्ट्रेट को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 21 जून, 2014 को लगभग 11.00 बजे पूर्वाह्न में मिली थी और इस विलंब के बावत कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। दाऊद खां के विद्वान् काउंसिल के अनुसार इस बात से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे संक्षेप में 'संहिता' कहा गया है) की धारा 157 का अतिक्रमण हुआ है जिसके अधीन यह अपेक्षा की गई है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (जिसे विशेष रिपोर्ट या स्पष्ट रिपोर्ट कहा जाता है) की एक प्रति तत्काल संबद्ध मजिस्ट्रेट को भेजी जानी चाहिए।

26. संहिता की धारा 157* का निर्वचन अनिर्णीत विषय नहीं है। ब्रह्मस्वरूप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य¹ वाले मामले में इस विषय पर विस्तार से चर्चा की गई है और इस चर्चा में इस विषय पर बड़ी संख्या में मामलों पर

* धारा 157. अन्वेषण के लिए प्रक्रिया - (1) यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को, इत्तिला प्राप्त होने पर या अन्यथा, यह संदेह करने का कारण है कि ऐसा अपराध किया गया है जिसका अन्वेषण करने के लिए धारा 156 के अधीन वह सशक्त है तो वह उस अपराध की रिपोर्ट उस मजिस्ट्रेट को तत्काल भेजेगा जो ऐसे अपराध का पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान करने के लिए सशक्त है और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का अन्वेषण करने के लिए, और यदि आवश्यक हो तो अपराधी का पता चलाने और उसकी गिरफ्तारी के उपाय करने के लिए, उस स्थान पर या तो स्वयं जाएगा या अपने अधीनस्थ अधिकारियों में से एक को भेजेगा जो ऐसी पंक्ति से निम्नतर पंक्ति का न होगा जिसे राज्य सरकार साधारण या विशेष आदेश द्वारा इस निमित्त विहित करे :

परंतु, -

(क) जब ऐसे अपराध के किए जाने की कोई इत्तिला किसी व्यक्ति के विरुद्ध उसका नाम देकर की गई है और मामला गंभीर प्रकार का नहीं है तब यह आवश्यक न होगा कि पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी उस स्थान पर अन्वेषण करने के लिए स्वयं जाए या अधीनस्थ अधिकारी को भेजे ;

¹ (2011) 6 एस. सी. 288.

विचार किया गया है। प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति मजिस्ट्रेट को तत्काल भेजने का उद्देश्य छलसाधन की संभावना को रोकना है। अतः मजिस्ट्रेट को विशेष रिपोर्ट भेजने का संबंध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने से है। यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में कोई विलंब नहीं हुआ है, तब मजिस्ट्रेट को विशेष रिपोर्ट संसूचित करने में हुए विलंब का वास्तव में कोई महत्व नहीं रह जाता, क्योंकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में छलसाधन किए जाने की संभावना से इनकार किया जा सकता है। फिर भी, अभियोजन पक्ष को यह स्पष्ट करना होगा कि मजिस्ट्रेट को विशेष रिपोर्ट भेजने में विलंब क्यों हुआ है। तथापि, यदि अन्वेषण अधिकारी से विलंब के संबंध में कोई प्रश्न नहीं पूछा गया है, तब अभियोजन पक्ष का यह कर्तव्य नहीं है कि वह विलंब को स्पष्ट करे। ऐसा कोई भी सार्वजनिक नियम नहीं है कि मजिस्ट्रेट को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट भेजने में जब कभी कोई विलंब होता है, तब ऐसी स्थिति में अभियोजन वृत्तांत अविश्वसनीय हो जाएगा। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इस संबंध में विनिश्चय करने के लिए मामले के तथ्य और परिस्थितियां महत्वपूर्ण हैं।

27. विशेष रिपोर्ट भेजने में हुए विलंब को लेकर हाल ही में **शिव शंकर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**¹ वाले मामले में विनिश्चय किया गया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि इससे पहले कि ऐसी दलील स्वीकार की जाए अभियुक्त को यह साबित करना होगा कि मजिस्ट्रेट को

(ख) यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को यह प्रतीत होता है कि अन्वेषण करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है तो वह उस मामले का अन्वेषण न करेगा :

परंतु यह और कि बलात्संग के अपराध की दशा में, पीड़िता के कथन का अभिलेखन पीड़ित के निवास पर या उसके विकल्प के स्थान पर और यावत साध्य उसके माता-पिता या सहायक या नजदीकी नातेदार या इलाके के सामाजिक कार्यकर्ता की उपस्थिति में महिला पुलिस अधिकारी द्वारा किया जाएगा।

(2) उपधारा (1) के परंतुक के खंड (क) और (ख) में वर्णित दशाओं में से प्रत्येक दशा में पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी अपनी रिपोर्ट में उस उपधारा की अपेक्षाओं का पूर्णतया अनुपालन न करने के अपने कारणों का कथन करेगा और उक्त परंतुक के खंड (ख) में वर्णित दशा में ऐसा अधिकारी इत्तिला देने वाले को, यदि कोई हो, ऐसी रीति से, जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाए, तत्काल इस बाबत की सूचना दे देगा कि वह उस मामले में अन्वेषण न तो करेगा और न कराएगा।

¹ (2013) 12 एस. सी. सी. 539.

प्रथम इत्तिला रिपोर्ट भेजने में हुए विलंब से उसके मामले पर किस प्रकार प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अनेक पूर्ववर्ती विनिश्चयों का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया है :-

“30. अपीलार्थियों की ओर से एक अन्य दलील यह दी गई है कि अधिकारिता वाले मजिस्ट्रेट को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति भेजे जाने का कोई भी सबूत न होने पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 157 का अतिक्रमण हो जाता है और इस प्रकार प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का दर्ज कराया जाना भी संदिग्ध हो जाता है। उक्त दलील खारिज ही की जाएगी क्योंकि न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट से यह प्रकट होता है कि वह तारीख 13 जून, 1979 को 4.00 बजे अपराह्न में दर्ज कराई गई थी और अगले दिन अर्थात् तारीख 14 जून, 1979 को अग्रेषित की गई थी। इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय तथा विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णय से यह प्रकट होता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 157 के अभिकथित अतिक्रमण के आधार पर अपीलार्थियों की ओर से इस संबंध में न तो दर्शाया गया है और न ही कोई आक्षेप किया गया है कि उनके मामले पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इस न्यायालय ने कई बार यह अभिनिर्धारित किया है कि जब तक यह दर्शित न किया जाए कि अभियुक्त के मामले पर गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है तब तक मात्र इस बात से कि मजिस्ट्रेट को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति भेजने में विलंब किया गया है, अभियोजन पक्षकथन किसी भी प्रकार से निर्बल नहीं हो सकता अतः, अपीलार्थियों की ओर से दी गई दलील स्वीकार नहीं की जा सकती।”

31. इस संदर्भ में, हम संदीप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2012) 6 एस. सी. सी. 107] वाले मामले में हाल ही में किए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट करना चाहेंगे जिसमें निर्णय के पृष्ठ 132 पर पैरा 62-63 में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है -

“62. अपीलार्थियों की ओर से भी निर्बल दलील दी गई कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 157 में यथा अनुबंधित स्पष्ट रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को तत्काल अग्रेषित नहीं की गई। विद्वान् काउंसिल के अनुसार प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, जो तारीख 17 नवंबर, 2004 को दर्ज कराई गई थी उसे तारीख 19 नवंबर,

2004 को 2004 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 116 के रूप में रजिस्ट्रीकृत कराया गया था और उसे तारीख 20 नवंबर, 2004 को परिवर्तित किया गया और वह मजिस्ट्रेट को तारीख 25 नवंबर, 2004 को अग्रेषित की जा सकी। जहां तक उक्त दलील का संबंध है, हम पाला सिंह **बनाम** पंजाब राज्य [(1972) 2 एस. सी. सी. 640] वाले मामले के पृष्ठ 645 पर पैरा 8 में स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब वास्तव में बिना किसी विलंब के, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित कराई जाती है और उस रिपोर्ट के आधार पर अन्वेषण किया जाता है और न्यायालय की जानकारी में अन्य कोई भी कमी नहीं लाई जाती है तब संबद्ध मजिस्ट्रेट द्वारा रिपोर्ट प्राप्त किए जाने में हुआ विलंब चाहे जितना भी अनुचित या आपत्तिजनक क्यों न हो, अभियुक्त के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़ने की स्थिति में इस निष्कर्ष पर पहुंचना न्यायोचित नहीं हो सकता कि अन्वेषण दूषित है और अभियोजन असमर्थनीय है।

63. **पाला सिंह** वाले मामले में प्रयोग किए गए उपरोक्त विनिश्चयाधार को वर्तमान मामले पर लागू करते हुए मजिस्ट्रेट को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अग्रेषित किए जाने में हुए विलंब के संबंध में यह कहा गया है कि अपीलार्थियों के मामले पर कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है। जहां तक अन्वेषण आरंभ किए जाने का संबंध है, हमारी पूर्ववर्ती विस्तृत चर्चाओं से यह प्रकट होता है कि उक्त पहलू में कोई भी कमी नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में इस पहलू को लेकर हमें अभियोजन पक्ष कथन में कोई भी कमी दिखाई नहीं देती है। वास्तव में, उपरोक्त विनिश्चय का अनुसरण तत्पश्चात् सरवन सिंह **बनाम** पंजाब राज्य [(1976) 4 एस. सी. सी. 369], अनिल राय **बनाम** बिहार राज्य [(2001) 7 एस. सी. सी. 318], अकील अहमद **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य [(2008) 16 एस. सी. सी. 372], वाले मामलों में किया गया है।”

28. निःसंदेह, यह सत्य है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पूर्व दिनांकित या समयपूर्व न की जाए इसके बाह्य कारक मजिस्ट्रेट को भेजे जाने का समय

और उसके द्वारा उसे प्राप्त किए जाने का समय है। प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति तत्काल प्रेषित करने से यह सुनिश्चित हो जाता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में कोई भी छलसाधन या अन्तर्वेशन नहीं किया गया है। **सुदर्शन बनाम महाराष्ट्र राज्य¹** वाला मामला देखिए। यदि अभियोजन पक्ष से प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति प्रेषित किए जाने में हुए विलंब को स्पष्ट करने को कहा जाए तो उसे चाहिए कि वह स्पष्ट करे। **मेहराज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य²** वाला मामला देखिए। तथापि, यदि न्यायालय अभियोजन वृत्तांत की सत्यता और साक्षियों की विश्वसनीयता से सहमत है, तब विलंब के संबंध में स्पष्टीकरण न दिया जाना अभियोजन पक्षकथन के लिए अहितकर नहीं हो सकता। यह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर आधारित होता है। **रतिराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य³** वाला मामला देखिए।

29. जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने में कोई विलंब नहीं किया गया है। इसलिए इसमें छलसाधन किए जाने का प्रश्न नहीं उठता है। इसके अतिरिक्त पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी सुरेंद्र सिंह (अभि. सा. 21) से मजिस्ट्रेट को विशेष रिपोर्ट प्रेषित करने में हुए विलंब के संबंध में कोई भी प्रश्न नहीं पूछा गया। तथापि, अन्वेषण अधिकारी राजिन्दर पारिक (अभि. सा. 25) से स्पष्टीकरण मांगा गया जिसने स्पष्ट उत्तर दिया कि न्यायालय या मजिस्ट्रेट को विशेष रिपोर्ट भेजने का कर्तव्य, उसका नहीं है। ऐसे अधिकारी से जो कि थाने का भारसाधक अधिकारी था और वह उत्तर दे सकता था, कोई भी प्रश्न न पूछे जाने पर इस संबंध में अभियोजन पक्ष के विरुद्ध कोई भी प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता और न ही यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि मजिस्ट्रेट को विशेष रिपोर्ट प्राप्त होने में जो विलंब हुआ है, वह अभियोजन पक्ष कथन के लिए घातक है। यह प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के संगत साक्ष्य के अतिरिक्त है जिस पर हम बाद में विचार करेंगे।

प्राक्षेपिकी संबंधी रिपोर्ट : दलीलें और चर्चा

30. यह दृढ़तापूर्वक दलील दी गई है कि न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट (प्रदर्श पी-37) में कुल मिलाकर यह उल्लेख नहीं है कि नन्द सिंह के शरीर से जो गोली प्राप्त की गई है वह उस पिस्तौल से चलाई

¹ (2014) 12 एस. सी. सी. 312.

² (1994) 5 एस. सी. सी. 188.

³ (2013) 12 एस. सी. सी. 316.

गई थी जो दाऊद खां के कहने पर जावेद के कब्जे से बरामद की गई थी। न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट निम्न प्रकार है :-

“1. पैकेट ‘ई’ में से एक .32 बोर का रिवाल्वर (डब्ल्यू/1) गया है जो ऐसा अग्न्यायुध है जिसकी सर्विस की जानी चाहिए। तथापि, यह ऐसा आयुध है जिससे कभी-कभी गोली न भी चले।

2. रिवाल्वर की नाल में लगी कालिख से यह उपदर्शित होता है कि .32 बोर का कारतूस इस रिवाल्वर (डब्ल्यू/1) से चलाया गया है। किंतु यह सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है कि अंतिम गोली कब चलाई गई थी।

3. पिंड और सूक्ष्मदर्शी परीक्षण के आधार पर यह राय दी गई है कि यह संभव नहीं है कि पैकेट ‘ई’ में रखे 7.65 मिलीमीटर वाले कारतूस का खोल (सी/1) और .32 बोर वाले ताम्र खोल वाले कारतूस (बी/1) जो पैकेट ‘डी’ में रखा हुआ था का संबंध पैकेट ‘ई’ में रखे रिवाल्वर (डब्ल्यू/1) के साथ सुनिश्चित किया जाए क्योंकि पर्याप्त साक्ष्य का अभाव है।”

31. न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट का परिशीलन करने पर यह पता चलता है कि किसी भी तरह यह सुनिश्चित नहीं है कि नंद सिंह के शरीर से निकाली गई गोली दाऊद के कहने पर जावेद से बरामद किए गए पिस्तौल से चलाई गई थी या नहीं। इस बात को दृष्टिगत करते हुए विद्वान् काउंसेल ने मोहिन्दर सिंह बनाम राज्य¹ वाले मामले का अवलंब लिया है। उस मामले के तथ्य पूर्णतया अलग थे। यह कथन किया गया था कि मृतक दलीप सिंह को दो क्षतियां पहुंची थीं जिनमें से एक क्षति अपीलार्थी-मोहिन्दर सिंह द्वारा चलाई गई बंदूक से मृतक के वक्ष पर कारित हुई थी और दूसरी क्षति उसके कान के निकट कारित हुई थी जब वह रास्ते में पड़ा हुआ था और गुरनाम सिंह ने लगभग 4-5 फुट की दूरी से रायफल चलाई थी। अभियोजन पक्ष के स्पष्ट पक्षकथन के अनुसार अपीलार्थी-मोहिन्दर सिंह ने बंदूक से गोली चलाई थी किंतु यह बात इस न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं की गई है और इस न्यायालय ने यह स्वीकार किया है कि अपीलार्थी-मोहिन्दर सिंह ने रायफल से क्षति कारित की है दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि गोली हथियार से मेल नहीं खाती है। इस संदर्भ में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है :-

¹ [1950] एस. सी. आर. 821.

“ऐसे मामले में जिसमें किसी घातक हथियार से क्षति पहुंचने या घाव कारित होने से मृत्यु हुई है तब सदैव यही माना गया है कि अभियोजन पक्ष का यह कर्तव्य है कि वह विशेषज्ञ द्वारा दिए गए साक्ष्य से यह साबित करे कि जिस हथियार से जिस रीति में अभिकथित रूप से क्षति कारित की गई है उसी हथियार से उसी रीति में क्षति कारित किया जाना संभावित है। यह मूल बात है कि जब अभियोजन पक्ष का पक्षकथन निश्चित या सकारात्मक हो, तब इससे संपूर्ण मामला साबित होना चाहिए। वर्तमान मामले में यह संदिग्ध है कि क्या अपीलार्थी - मोहिन्दर सिंह ने किसी बंदूक या रायफल से क्षतियां कारित की हैं। वास्तव में इस बात की अधिक संभावना है कि क्षतियां बंदूक से नहीं अपितु रायफल से कारित की गई हैं और फिर भी अभियोजन का यह पक्षकथन तो बनता ही है कि अपीलार्थी के पास बंदूक थी और उससे उसकी परीक्षा में निश्चित रूप से यह पूछा गया है कि उसके पास बंदूक (प्रदर्श पी-16) थी। सम्यक् रूप से योग्यता प्राप्त विशेषज्ञ ने ही यह साक्ष्य दिया है कि यह सुनिश्चित किया जा सकता था कि क्या अपीलार्थी द्वारा कारित की गई क्षतियां ऐसी थीं जो बंदूक या रायफल से ही कारित की जा सकती थीं और मात्र इस प्रकार ही यह संविवाद दूर किया जा सकता था कि ऐसी क्षतियां अत्यंत निकट दूरी से, जैसाकि साक्ष्य में उल्लेख किया गया है, किसी अग्न्यायुध से कारित की जा सकती हैं।”

32. अब इस पर विचार करना है कि उस मामले में विशेषज्ञ ने क्या राय दी थी? इस न्यायालय ने यह देखा कि खुफिया विभाग, फिलौर की प्रयोगशाला के निदेशक ने निम्न राय व्यक्त की है :-

“बंदूक से गोली चलाए जाने के संकेत मिलते हैं किंतु विशेषज्ञ यह नहीं बता सकता कि अंतिम बार गोली कब चलाई गई थी। संभवतः, कारतूस के खोल (प्रदर्श पी-10 और पी-15) इस बंदूक (प्रदर्श पी-16) से चलाए गए हैं किंतु विशेषज्ञ यह भी नहीं बता सकता कि ये कारतूस उसी बंदूक से चलाए गए हैं या उस जैसी किसी एक या अलग-अलग बंदूकों से चलाए गए हैं। विशेषज्ञ ने इस बंदूक (प्रदर्श पी-16) से कारतूस चलाकर न तो कोई परीक्षण किया है और न ही उसने कारतूस (प्रदर्श पी-10 और पी-15) के निशानों का मिलान किया है।”

33. इस आधार पर, यह व्यक्त किया गया है कि अभियोजन पक्ष के

अनुसार मृतक दिलीप सिंह पर दो गोलियां चलाई गई थीं और “महत्वपूर्ण बात जो अभियोजन पक्ष को साबित करनी है, यह है कि ये गोलियां एक व्यक्ति द्वारा नहीं अपितु दो व्यक्तियों द्वारा चलाई गई थीं और दोनों ही गोलियां जिस प्रकार और जिस दूरी से चलाई गई हैं वैसा ही अभिकथन प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा किया गया है। हमारी राय में, अभियोजन साक्ष्य में अत्यंत मूल मुद्दे को लेकर असंगतता है और निचले न्यायालयों द्वारा ये ही गलती की गई है कि उन्होंने इस असंगतता को अनदेखा किया है।” अभियोजन साक्ष्य में आई इस असंगतता को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय ने अपीलार्थी-मोहिन्दर सिंह को संदेह का लाभ दिया। इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय ने तीनों प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया क्योंकि उनमें से दो संयोगी साक्षी थे और पूर्णतया स्वतंत्र साक्षी नहीं थे और तीसरा साक्षी पक्षपाती है और उसका परिसाक्ष्य अन्यथा भी असंभावी है क्योंकि उसने यह दावा किया है कि उसने गोली चलाते हुए तब देखा जब उसकी गर्दन के पीछे उसे गोली लग चुकी थी।

34. जहां तक वर्तमान अपील का संबंध है, इस मामले के तथ्य पूर्णतया भिन्न हैं। यद्यपि न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट इस आशय से अनिर्णायक है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि क्या शरीर से निकाली गई गोली बरामद किए गए हथियार से निश्चित रूप से मेल खाती है, तथापि, इस बात में संदेह नहीं कि शरीर से निकाली गई गोली बरामद की गई बंदूक से चलाई जा सकती थी। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि (जो कि महत्वपूर्ण है) गोली और बंदूक के बीच मेल न खाने वाली कोई बात नहीं है। अतः **मोहिन्दर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले से दाऊद खां को सहायता नहीं मिल सकती। तथापि, विद्वान् काउंसेल ने इसका लाभ उठाने के लिए **अब्दुल सईद** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**¹ वाले मामले का अवलंब लिया है और यह विनिश्चय भी इस मामले के साथ किसी भी प्रकार संगत नहीं है। उस मामले में चिकित्सीय साक्ष्य और प्रत्यक्ष साक्ष्य के बीच विरोधाभास था जबकि इस मामले में ऐसा कोई विवाद नहीं है। चिकित्सीय साक्ष्य और प्रत्यक्ष साक्ष्य में इस बात को लेकर कोई संदेह नहीं है कि दाऊद खां ने बंदूक चलाई थी। न्यायालयिक साक्ष्य से यह दर्शित होता है कि नंद सिंह के शरीर से निकाली गई गोली बरामद की गई बंदूक से चलाई जा सकती थी। इस बात पर प्रश्न नहीं उठाया गया है कि नंद सिंह पर बरामद की गई बंदूक से गोली चलाई गई थी या

¹ (2010) 10 एस. सी. सी. 259.

अन्य किसी बंदूक से और किसी भी साक्षी से कोई भी ठोस प्रश्न दाऊद के कहने पर जावेद से बरामद की गई बंदूक के संबंध में नहीं किया गया है और न ही यह प्रश्न किया गया है कि अभियुक्त दाऊद खां द्वारा इसी बंदूक का प्रयोग किया गया था या अन्य किसी बंदूक का ।

त्वचा पर कालापन : दलीलें और चर्चा

35. यह दलील दी गई है कि चूंकि नंद सिंह पर निकट से गोली चलाई गई थी, इसलिए उसकी त्वचा पर थोड़ा कालापन आ सकता था किंतु शवपरीक्षण रिपोर्ट से ऐसा कोई भी कालापन दर्शित नहीं होता है । यह दलील दी गई है कि इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि नंद सिंह पर वास्तव में किसी और स्थान पर गोली लगी थी (अर्थात् जहां पर वह घायल होकर गिरा था) न कि वह स्थान जो अभियोजन पक्ष द्वारा बताया गया है ।

36. नरेन्द्र कुमावत (अभि. सा. 11) जो नंद सिंह के साथ था और उस समय भी साथ था जब यह घटना घटित हुई थी, ने यह कथन किया है कि दाऊद खां ने लगभग दो फुट की दूरी से गोली चलाई थी । इसी प्रकार, सूरजमल (अभि. सा. 19) ने यह कथन किया है कि गोली दो फुट की दूरी से चलाई गई थी, जबकि महाबीर सिंह (अभि. सा. 7) ने यह कथन किया है कि गोली एक फुट की दूरी से चलाई गई थी । नरेन्द्र सिंह (अभि. सा. 23) ने यह कथन किया है कि गोली 'चार अंगुल की दूरी से चलाई गई थी किंतु पिस्तौल को वक्ष से सटाकर गोली नहीं चलाई गई थी' । अंतिमतः, ऋषि राज शेखावत (अभि. सा. 24) ने यह कथन किया है कि 'नंद सिंह के वक्ष से सटाकर गोली नहीं चलाई गई थी बल्कि गोली एक या दो फुट की दूरी से चलाई गई थी' । अतः, प्रत्येक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी ने यह कथन किया है कि नंद सिंह पर दाऊद खां द्वारा अत्यंत निकट से गोली चलाई गई थी और किसी भी स्थिति में दो फुट या उससे कम दूरी से ही गोली चलाई गई थी । उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष गलत निकाला है कि साक्षियों ने यह साक्ष्य दिया है कि गोली निकट दूरी से चलाई गई थी किंतु किसी भी साक्षी ने दूरी नहीं बताई है ।

37. स्थिति कुछ भी हो, इस प्रक्रम पर मोदीज़ मेडिकल ज्यूरिसप्रूडेंस एंड टैक्सीकोलोजी (22वां संस्करण पृष्ठ 354) नामक पुस्तक को निर्दिष्ट किया जा सकता है जिसमें बंदूक की गोली से त्वचा पर घाव में आए कालापन के संबंध में यह उल्लेख किया गया है :-

“यदि अग्न्यायुध शरीर के अत्यंत निकट से या शरीर से सटाकर

चलाया जाता है तब अधस्त्वक ऊतक (उपचर्म) पर प्रविष्टि घाव के चारों ओर दो या तीन इंच के व्यास में विदीर्ण क्षति कारित होती है और त्वचा आमतौर पर झुलस जाती है तथा धुएं से काली हो जाती है और उस पर बिना जले बारूद के कणों से गोदन बन जाती है। घाव के निकट के बाल झुलस जाते हैं और उस स्थान के समवर्ती वस्त्र का भाग आग की लपट से जल जाता है। यदि बारूद धूम्र रहित है तब घाव के चारों ओर स्लेटी या श्वेत रंग का निशान बन जाता है। यदि इस घाव का फोटोचित्र इनफ्रारेड प्रकाश में खींचा जाए तब घाव से चारों ओर धुएं का गोल छल्ला स्पष्ट दिखाई देगा। यदि तीन फुट से अनधिक दूरी से किसी बंदूक से और दो फुट से अनधिक किसी रिवाल्वर या पिस्तौल से गोली चलाई जाती है तब घाव के चारों ओर कालापन पाया जाता है ।’

38. इन परिस्थितियों में, यदि नंद सिंह ने वास्तव में लगभग दो फुट या उससे कम दूरी से गोली चलाई थी तब मृतक की त्वचा पर कालापन होता। विचारण न्यायालय ने इस बात पर ध्यान दिया किंतु उसने यह राय व्यक्त की कि चूंकि नंद सिंह बनियान और कमीज (प्रदर्श पी-6) पहने हुए था, इसलिए उसकी त्वचा बंदूक की गोली से काली नहीं हो सकी। ऐसा हो सकता है किंतु इस संबंध में कोई साक्ष्य नहीं है, नंद सिंह के बनियान और कमीज पर कालापन आया या नहीं इस संबंध में भी किसी भी साक्षी से कोई प्रश्न नहीं पूछा गया है। अतः विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष पर विवाद करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है।

रक्त अनुचिह्न : दलीलें और चर्चा

39. दाऊद खां के विद्वान् काउंसेल ने असंगत परिस्थिति निर्दिष्ट की है जो यह है कि नंद सिंह वक्ष में गोली लगने के पश्चात् लगभग 70 फुट की दूरी चल पाया था। इस पूरी दूरी को तय करने में रास्ते में कहीं भी रक्त से बने कोई चिह्न नहीं मिले थे और न ही घटनास्थल पर रक्त गिरा हुआ था। **मेहराज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य¹** वाले मामले में घटनास्थल पर रक्त का मौजूद न होना या घटनास्थल से लेकर उस स्थान तक रक्त के निशानों का न पाया जाना जहां से शव बरामद हुआ है, इस बात से न्यायालय को अभियोजन वृत्तांत पर संदेह हुआ है।

40. तथापि, इस मामले में अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य में इस संबंध में

¹ (1994) 5 एस. सी. सी. 188.

कोई भी संदेह नहीं है। डा. तेज सिंह दांगी (अभि. सा. 14) जो कि चिकित्सा बोर्ड के एक सदस्य हैं, ने शवपरीक्षण किया और यह कथन किया कि उसने ऐसी परिस्थितियों में रक्त गिरने के संबंध में कोई राय नहीं दी थी और यह भी आवश्यक नहीं है कि यदि शरीर का कोई भाग क्षतिग्रस्त होता है तो रक्त बाहर गिरेगा। इसके प्रतिकूल, डा. के. आसिफ (अभि. सा. 15) जो कि शवपरीक्षण करने वाले चिकित्सा बोर्ड ने एक अन्य सदस्य हैं, ने यह मत व्यक्त किया है कि घटनास्थल पर ऐसी स्थिति में रक्त गिर सकता है, किंतु “रक्त घाव से बहुत कम मात्रा में निकलेगा” जो गोली लगने के प्रविष्टि घाव से कम मात्रा में निकलेगा और “निकास घाव से रक्त अधिक मात्रा में निकलेगा” अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि नंद सिंह का रक्त घटनास्थल पर बिखरा हुआ नहीं पाया गया था।

41. अभिलेख पर यह मौजूद है कि नंद सिंह नवयुवक और स्वस्थ व्यक्ति था। यद्यपि यह असंगत प्रतीत होता है कि वक्ष में गोली लगने के पश्चात् नंद सिंह लगभग 70 फुट की दूरी चल कर गया था किंतु यह बात असंभावी नहीं हो सकती। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए उचित व्यक्ति चिकित्सा विशेषज्ञ हो सकता था किंतु चिकित्सा विशेषज्ञ से कोई प्रश्न नहीं पूछा गया। इन परिस्थितियों से, इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि नंद सिंह ने जमीन पर गिरने से पूर्व उपरोक्त दूरी तय नहीं की थी।

कठघरे में की जाने वाली शनाख्त

42. दाऊद खां द्वारा यह दलील दी गई है कि तीन संयोगी साक्षी अर्थात् महाबीर सिंह (अभि. सा. 7), नरेन्द्र सिंह (अभि. सा. 23) और ऋषि राज शेखावत (अभि. सा. 24), ये सभी कस्बे के बाहर के व्यक्ति हैं। इस प्रकार, वे दाऊद खां या जावेद की शनाख्त कर ही नहीं सकते थे। यह भी दलील दी गई है कि कोई भी शनाख्त परेड नहीं कराई गई इसलिए कठघरे में की गई शनाख्त का अवलंब लिया ही नहीं जा सकता था।

43. दाऊद खां द्वारा ऐसी कोई भी दलील विचारण न्यायालय के समक्ष और न ही उच्च न्यायालय के समक्ष दी गई है और हमें इस प्रक्रम पर इस संबंध में दलील दिए जाने को अनुज्ञात करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है।

44. इसके अतिरिक्त, **अशोक देवबर्मा बनाम त्रिपुरा राज्य¹** वाले मामले में हाल ही में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब विचारण के

¹ (2014) 4 एस. सी. सी. 747.

दौरान किसी अभियुक्त की शिनाख्त से संबंधित साक्ष्य सारभूत साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाता है, तब यह उस मामले के तथ्यों पर आधारित होता है कि ऐसे साक्ष्य को एकमात्र साक्ष्य के रूप में इस प्रकार स्वीकार किया जाए या नहीं कि उसके आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध किया जा सके। उस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि यदि साक्षी विश्वसनीय और विश्वासप्रद हैं, तब मात्र यह तथ्य कि शिनाख्त परेड नहीं कराई गई थी, स्वयं में ऐसा कोई कारण नहीं हो सकता जिसके आधार पर उन साक्षियों के साक्ष्य को त्यक्त किया जा सके। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, इस न्यायालय ने कई विनिश्चयों का अवलंब लिया है (कांता प्रसाद बनाम दिल्ली प्रशासन¹, हरभजन सिंह बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य², जडुनाथ सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य³, जार्ज बनाम केरल राज्य⁴ और दाना यादव बनाम बिहार राज्य⁵)। इसके पूर्व भी ऐसा ही मत मनु शर्मा बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र, दिल्ली)⁶ वाले मामले में भी व्यक्त किया गया।

45. किसी भी स्थिति में, गोली चलाई जाने की घटना के दो अन्य साक्षी हैं अर्थात् नरेन्द्र कुमावत (अभि. सा. 11) और सूरज मल (अभि. सा. 19) ये दोनों साक्षी स्थानीय निवासी हैं और नंद सिंह तथा दाऊद खां को जानते थे और ये उनकी आसानी से शिनाख्त भी कर सकते थे।

46. घटना से संबंधित पांच साक्षियों ने साक्ष्य दिया है कि घटना बत्रा टेलीकाम पर तारीख 19 जून, 2004 को रात्रि में घटित हुई थी। हमें इनमें से किसी भी साक्षी के साक्ष्य को अविश्वसनीय ठहराने का कोई कारण विशेषकर इस स्थिति में दिखाई नहीं देता है कि इन सभी साक्षियों ने घटनाक्रम का संगत वर्णन किया है। कुछ छोटे-मोटे विरोधाभास भी हैं, ऐसे विरोधाभास स्वाभाविक हैं, जैसे कि बंदूक और नंद सिंह के बीच की दूरी किंतु इन विरोधाभासों से अभियोजन पक्षकथन का सार प्रभावित नहीं होता है और न ही विरोधाभासों से साक्षियों की विश्वसनीयता दुर्बल होती है।

निष्कर्ष

47. यदि मामले के तथ्यों पर एक-एक करके विचार किया जाए और

¹ ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 350.

² (1975) 4 एस. सी. सी. 480.

³ (1970) 3 एस. सी. सी. 518.

⁴ (1998) 4 एस. सी. सी. 605.

⁵ (2002) 7 एस. सी. सी. 295.

⁶ (2010) 6 एस. सी. सी. 1.

बिना किसी क्रम के विचार किया जाए तब संदेह पैदा होता है । तथापि, यदि इन तथ्यों पर संयुक्त रूप से विचार किया जाए तब कोई संदेह बाकी नहीं रह पाता । तथ्य संयुक्त रूप से इस प्रकार हैं : (i) नंद सिंह को बंदूक से गोली मारी गई, (ii) जो गोली नंद सिंह के शरीर से निकाली गई वह उस बंदूक से चलाई जा सकती थी इसका निषेधात्मक पहलू यह हो सकता था कि शरीर से निकाली गई गोली बरामद की गई बंदूक से चलाई नहीं जा सकती थी । किसी भी व्यक्ति ने इस पर प्रश्न नहीं उठाया है, (iii) गोली निकट दूरी से चलाई गई थी किंतु नंद सिंह की त्वचा पर कोई भी कालापन नहीं था इसका कारण यह हो सकता है कि उसने कपड़े पहने हुए थे । किसी भी व्यक्ति ने इस पर भी प्रश्न नहीं उठाया है, (iv) नंद सिंह की मृत्यु तत्काल नहीं हुई और गोली लगने के बावजूद उसने 70 फुट की दूरी चल कर तय की । इस पर भी कोई प्रश्न नहीं किया गया है, (v) चिकित्सा विशेषज्ञ ने यह साक्ष्य दिया है कि प्रविष्टि घाव से रक्त निकलना आवश्यक नहीं है और यह संभव है कि नंद सिंह का रक्त घटनास्थल और वह स्थान जहां उसकी मृत्यु हुई, के बीच पड़ा हुआ नहीं पाया गया । तथापि, रक्त वहां मौजूद था जहां पर नंद सिंह की मृत्यु हुई थी, (vi) इस घटना के पांच प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं जिन्होंने गोली चलाते हुए देखा था और इन साक्षियों ने संगत साक्ष्य दिया है और दाऊद खां की शनाख्त उस व्यक्ति के रूप में की है जिसने नंद सिंह पर गोली चलाई । इन निष्कर्षों और परिणामों में से कोई भी अनुचित नहीं है । इसके प्रतिकूल, ये निष्कर्ष/परिणाम विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार किए गए हैं । इससे भिन्न मत व्यक्त किए जाने का हमें कोई कारण दिखाई नहीं देता है ।

48. हमारे समक्ष प्रस्तुत सम्पूर्ण सामग्री पर विचार करने के पश्चात्, हमें दाऊद खां द्वारा कारित किए गए अपराध और उसके लिए की गई दोषसिद्धि के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत को कायम रखने में कोई संकोच नहीं है । हमें राज्य द्वारा फाइल की गई इस अपील में कोई सार दिखाई नहीं देता है और हमें दाऊद खां द्वारा कारित किए गए अपराध के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को उलटने का कोई कारण भी दिखाई नहीं देता है ।

49. दोनों अपीलें खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

अस.

[2016] 2 उम. नि. प. 39

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

बनाम

अजय कुमार शर्मा और एक अन्य

26 नवंबर, 2015

न्यायमूर्ति विक्रमजीत सेन और न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 24 [सपटित उत्तर प्रदेश राज्य लीगल रिमेम्ब्रेंसर मैनुअल] – अपर जिला सरकारी काउंसेल, सहायक जिला सरकारी काउंसेल, पैनल अधिवक्ता और उप जिला सरकारी काउंसेल पदों की नियुक्ति – राज्य को ऐसे व्यक्तियों को काउंसेल के रूप में नियुक्त करने की स्वतंत्रता है जिसमें उसकी आस्था और विश्वास है, अतः अधिवक्ताओं की सक्षमता सुनिश्चित करते हुए अपर जिला सरकारी काउंसेल, सहायक जिला सरकारी काउंसेल, पैनल अधिवक्ता और उप जिला सरकारी काउंसेल की नियुक्ति, जोहरी मल वाले मामले में व्यक्त मताभिव्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए की जानी चाहिए ।

इन सभी अपीलों में, न्यायालय को संपूर्ण उत्तर प्रदेश राज्य के अधीनस्थ न्यायालयों में जिला सरकारी काउंसेल के नवीकरण और नियुक्ति पर भी विचार करना है । अपीलार्थी के रूप में राज्य में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ न्यायपीठ की खंडपीठ द्वारा पारित 2012 की रिट याचिका प्रकीर्ण न्यायपीठ सं. 9127 में तारीख 5 नवंबर, 2014 के अंतिम निर्णय और आदेश को चुनौती दी है । उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित आदेश में जिला सरकारी काउंसेल की नियुक्ति को समाप्त करते हुए राज्य सरकार के आदेशों को अभिखंडित किया और आगे राज्य सरकार को उनके नवीकरण पर पुनर्विचार करने का निदेश दिया । असंदिग्धतः, नियुक्तियां और नवीकरण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 24 और संपूर्ण उत्तर प्रदेश राज्य को लागू विधिक परामर्शी मैनुअल के अनुरूप होना चाहिए । ऐसा मैनुअल जो 1975 में प्रवृत्त हुआ, अन्य बातों के साथ-साथ एक ओर जिला न्यायाधीश और जिला मजिस्ट्रेट और दूसरी ओर राज्य से आज्ञापक “परामर्श” विहित करता है । अगस्त, 2008 में तत्कालीन राज्य सरकार ने तारीख 13 अगस्त, 2008 के सरकारी आदेश के निबंधनानुसार एल. आर. मैनुअल को संशोधित किया और तद्वारा जिला सरकारी काउंसेल की

नियुक्ति के लिए जिला न्यायाधीश से परामर्श की प्रक्रिया को हटा दिया : प्रभावतः, इसके पश्चात् एल. आर. मैनुअल में राज्य को केवल जिला मजिस्ट्रेट से ही परामर्श करने की अपेक्षा रहेगी। यथासंशोधित एल. आर. मैनुअल के आधार पर ही प्रत्यर्थी हमारे समक्ष संपूर्ण उत्तर प्रदेश राज्य में जिला सरकारी काउंसिल के रूप में नियुक्ति के लिए आए थे। यह उल्लेखनीय लक्षण है जिस पर न्यायालय का विनिश्चय कुछ अद्योपाय में परिवर्तित होगा। राज्य सरकार का आदेश जो तारीख 13 अगस्त, 2008 का है के विरुद्ध कार्यवाहियों में पारित तारीख 6 जनवरी, 2012 के आदेश द्वारा उच्च न्यायालय ने यथाशीघ्र नए सिरे से नियुक्ति करने का निदेश दिया और मध्यवर्ती अवधि में विद्यमान पैनलकृत अधिवक्ताओं को अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने की अनुज्ञा दी। उसके थोड़े समय पश्चात् एक मामले में तारीख 12 जनवरी, 2012 के अपने आदेश के निबंधनानुसार उच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य को “अपर जिला सरकारी काउंसिल, सहायक जिला सरकारी काउंसिल, पैनल अधिवक्ता और उप जिला सरकारी काउंसिल के पद” पर अधिवक्ताओं के चयन और नियुक्ति पर पुनर्विचार करने का निदेश दिया; यह कि पुराने उपबंधों के अनुसरण में नियुक्त व्यक्ति पुनर्विचार प्रक्रिया के पूरा होने तक बने रहेंगे। इसके ठीक पश्चात् इस धारणा पर विशेष इजाजत याचिकाओं को वापस लेने के लिए इस न्यायालय के समक्ष अनुरोध किया गया कि नई निर्वाचित राज्य सरकार ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के चुनौतीधीन निर्णयों को स्वीकार कर लिया है और तदनुसार इसको समग्रता में कार्यान्वित करना चाहती है। इन विशेष इजाजत याचिकाओं के निपटान के अनुक्रम में इस न्यायालय ने सुस्पष्टतः और मार्मिकतः यह मत व्यक्त किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 24 की संवैधानिक विधिमान्यता को चुनौती नहीं दी गई है। इस न्यायालय ने सर्वसम्मत से यह राय व्यक्त की कि उच्च न्यायालय के चुनौतीधीन निर्णयों को कार्यान्वित किया जाए। फिर भी तीन “स्पष्टीकरण” अभिलिखित किए गए। पहला, यह कि उच्च न्यायालय और/या संबद्ध जिले के जिला और सेशन न्यायाधीश के परामर्श से की गई नियुक्तियों को अस्त-व्यस्त न किया जाए। दूसरा, “विद्यमान रिक्तियों के लिए इसमें सभी अपीलार्थियों के मामलों को जो सेवा में हैं या सेवा से बाहर हैं और उच्च न्यायालयों के समक्ष सभी याचियों जिनकी सेवाएं ऐसे व्यक्ति जिन्होंने रिट याचिका और/या इन सिविल अपीलों की विचाराधीनता के दौरान उच्च न्यायालय में रिट याचिकाएं फाइल की थीं, सहित जिनकी सेवाएं किसी भी समय समाप्त की गई थीं पर आज से तीन मास की अवधि के भीतर इस

न्यायालय के निर्णय के अनुसार नवीकरण/पुनर्विचार के लिए विचार किया जाएगा.....”, तीसरा उत्तर प्रदेश सरकार के विधि और न्याय विभाग के सचिव को व्यक्तिगत उत्तरदायी बनाया जाता है कि वह उपरोक्त नियुक्तियां पूरी करें। उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय ने “पूर्व निर्णय” और निर्णीतानुसरण के आवश्यक तत्वों और सिद्धांतों का बलपूर्वक पुनर्कथन किया जो सभी कामन ला न्यायिक प्रणालियों के श्रेणीबद्ध चरित्र के आधारभूत लक्षण हैं। पूर्व निर्णय का सिद्धांत यह अधिदेश देता है कि विधि की प्रतिपादना को समवर्ती या समान न्यायपीठों और निश्चित रूप से सभी छोटे न्यायपीठों और अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा भी अनुसरण किया जाए और लागू किया जाए। दूसरे शब्दों में छोटे और बाद वाले न्यायपीठ को पूर्व और वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा अधिकथित विधि को लागू करने के अलावा कोई स्वतंत्रता नहीं है; अर्थात् वह विधि जो उस विषय पर लागू किया गया कहा गया है। अनुच्छेद 141 के अलावा न्यायालयों की यह नीति है कि पूर्व निर्णय का अनुसरण करें और स्थिर बिंदुओं को अस्त-व्यस्त न करें। पूर्व निर्णयों का प्रयोजन न्यायिक विनिश्चयों को भविष्य सूचकता प्रदान करना है और यह नुक्ताचीनी से परे है कि विधि की निश्चितता विधि के नियम का आवश्यक तत्व है। विपथता तभी अपनाई जाए जब समवर्ती या समान न्यायपीठ पूर्व विनिश्चय को संदेहास्पद तर्क या प्रभावितता का होना पाता है और परिणामतः उसकी न्यायिक अंतरात्मा इतना क्षुब्ध और व्याकुल है कि वह विद्यमान तर्काधार का अनुसरण करना असंभाव्य पाता है। न्यायपीठ को तब माननीय मुख्य न्यायमूर्ति से वृहत्तर न्यायपीठ के गठन का अनुरोध करने के अनुशासन का पालन करना चाहिए। संगतता न्याय प्रशासन की आधार भूमि है। यह संगतता ही है जो व्यवस्था में विश्वास पैदा करती है और इस संगतता को अंतिमता के नियम का सम्मान किए बिना कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता। न्यायिक निर्णयों में संगतता प्राप्त करने के उद्देश्य से ही न्यायालयों ने पूर्व निर्णय के नियम, निर्णीतानुसरण के सिद्धांत आदि को विकसित किया। ये नियम और सिद्धांत लोक नीति पर आधारित हैं और यदि इनका पालन न्यायालयों द्वारा नहीं किया जाता है तो न्याय प्रशासन में अस्थिरता फैल जाएगी जो न्यायालय इस मामले में बहुतायत में पाता है। दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ में पीठासीन होकर, हम पूर्व निर्णय के नियम को लागू करने से बेहतर इस समय कुछ नहीं कर सकते जैसा हमारे लिए अनुसरण करने हेतु छोड़ा गया है। अपर जिला सरकारी काउंसिल, सहायक

जिला सरकारी काउंसिल, पैनल अधिवक्ता और उप जिला सरकारी काउंसिल की नियुक्ति से संबंधित विधि प्रत्यक्षतः उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जोहरी मल वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष विवादक थी जहां विधि को व्यापकतः स्पष्ट किया गया है। कुमारी श्रीलेखा विद्यार्थी या उसके पश्चात् दिए गए किसी निर्णय पर चर्चा करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। जोहरी मल वाले मामले में, इस न्यायालय ने एल. आर. मैनुअल और दंड प्रक्रिया संहिता का भी परिशीलन किया और यह दोहराया कि जिला काउंसिल वृत्तिकतः नियुक्त किए जाते हैं; यह कि राज्य सरकार उनके कार्यपालन से संतुष्ट होने के पश्चात् अनुक्रम का अवधारण करने के लिए स्वतंत्र थी और यह कि न्यायालयों को ऐसे विषयों पर न्यायिक पुनर्विलोकन का उपयोग करते समय चौकस रहना चाहिए जो राज्य सरकार अर्थात् उनके काउंसिल या अधिवक्ताओं की नियुक्ति के विवेकाधिकार के भीतर आते हैं। इस न्यायालय ने यह दोहराया कि जिला काउंसिल अपनी पदावधि के नवीकरण की बाबत किसी कानूनी अधिकार का उपभोग नहीं करते तथा राज्य सरकार को इस बाबत वैवेकिक शक्तियां हैं। अधिवक्ताओं के न्यायालयिक कार्यपालन को ही जिला काउंसिल के रूप में उनके पुनर्नियुक्ति का एक मात्र मानदंड नहीं माना जाना चाहिए और यह कि राज्य सरकार उन व्यक्तियों में विश्वास और निष्ठा रखने के लिए स्वतंत्र है जिन्हें वे अपने अधिवक्ताओं के रूप में नियुक्त करने का चुनाव करते हैं। यह नुक्ताचीनी से परे है कि यह आपराधिक न्याय की व्यवस्था के हित में है कि सत्यनिष्ठा रखने वाले सक्षम काउंसिल की ही नियुक्ति की जाए अन्यथा न्याय के दुरुपयोग की घोर संभावना है। उनका चुनाव करने में राज्य को न केवल उनके न्यायालयिक सक्षमता का समाधान करना होगा बल्कि यह भी कि उनका कोई आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है। तथापि, इसका यह अर्थ नहीं है कि अपर जिला सरकारी काउंसिल, सहायक जिला सरकारी काउंसिल, पैनल अधिवक्ता और उप जिला सरकारी काउंसिल के कर्तव्यों का इस समय निर्वहन करने वाले व्यक्ति सिविल पदों पर नियुक्त हैं और उसके द्वारा सातत्यता का अधिकार रखते हैं। न्यायालय की राय में, जो जोहरी मल वाले मामले में वर्णित है, राज्य को किसी अन्य वादकारी की तरह उस काउंसिल को नियुक्त करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए जिसमें उनकी आस्था और विश्वास हो। केवल यह प्रत्याशा की जाती है कि राज्य द्वारा अपनाया गया विकल्प इस प्रकार नहीं होना चाहिए जो यह सुनिश्चित करने के उनके पवित्र और दुर्भरदायित्व को विफल करता हो कि सभी नागरिकों को न्याय मिले। जोहरी मल वाले

मामले में, इस न्यायालय ने स्पष्टतः सरकारी अधिवक्ता के रूप में अधिवक्ता के पुनर्नवीकरण या पुनर्नियुक्ति के जारी रखने के दावे को खारिज कर दिया है। न्यायालय पूर्णतः विधि की इस प्रतिपादना से सहमत है। न्यायालय यह सोचता है कि अपर जिला सरकारी काउंसिल, सहायक जिला सरकारी काउंसिल, पैनल अधिवक्ता और उप जिला सरकारी काउंसिल की नियुक्ति के लिए अधिवक्ताओं की सक्षमता पर विचार किया जाना सही दृष्टिकोण है। न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि विद्यमान सरकारी काउंसिलों की पुनर्नियुक्ति या पुनर्नवीकरण पर विचार करने की इस प्रक्रिया को आरंभ करना गलत दृष्टिकोण होगा चूंकि वह सरकार के ऐसे अधिवक्ताओं को नियुक्त करने के विवेकाधिकार को क्षीण ही नहीं बल्कि विघटित करेगा जिसमें उनका विश्वास है। उच्च न्यायालय ने दूसरी दृष्टिकोण का अनुसरण किया जिसके परिणामस्वरूप राज्य सरकार को असंतोष हुआ और उनका असंतोष कि उनके विवेकाधिकार के परिक्षेत्र को किसी उचित कारण के बिना खंडित किया गया है। (पैरा 10, 13, 14, 15 और 16)

न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे

मैं अपने विद्वान् भ्राता से पूर्णतः सहमत हूँ कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में “दंड प्रक्रिया संहिता”) की धारा 24 की व्याप्ति और निर्वचन, लोक अभियोजक/जिला सरकारी काउंसिल की नियुक्ति, पुनर्नवीकरण, अवधि के विस्तार से संबंधित मुद्दे, उनकी प्रकृति और अंततः (उत्तर प्रदेश सरकार) लीगल रिमेम्ब्रेंसर मैनुअल और विशेषकर ऐसी नियुक्ति/पुनर्नवीकरण/अवधि के विस्तार आदि से संबंधित उपबंध जैसे मुद्दे जो इन अपीलों के विषयवस्तु हैं, अब अनिर्णीत विषय नहीं रह गए हैं और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जोहरी मल वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा प्रमाणिकतः विनिश्चित किए जा चुके हैं। इस न्यायालय द्वारा इस विनिश्चय का लगातार अनुसरण किया जा रहा जब कभी भी विचारार्थ ये मुद्दे सामने आए। इन परिस्थितियों में और जोहरी मल वाले मामले में दिए गए प्रामाणिक निर्णय को ध्यान में रखते हुए, उन्हीं मुद्दों पर फिर से विचार करने का कोई अवसर उद्भूत नहीं होता जब इन कार्यवाहियों में यद्यपि कुछ अन्य व्यक्तियों के अनुरोध पर ये मुद्दे पूर्व अवसरों पर इस न्यायालय के पास पहुंचे थे जैसाकि न्यायालय विद्वान् अपने भ्राता द्वारा मुख्य निर्णय में उल्लिखित है जिसका भी विनिश्चय इस न्यायालय द्वारा किया गया। वस्तुतः “पूर्व निर्णय” और “निर्णीतानुसरण” का

सिद्धांत न्यायालय को इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि का अनुसरण करने का आदेश देता है और तब और अधिक जब इसका निर्णय तीन न्यायाधीशों से मिलकर बने न्यायपीठ द्वारा किया गया हो। (पैरा 2, 3 और 4)

अवलंबित निर्णय

पैरा

- [2004] (2004) 4 एस. सी. सी. 714 :
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जोहरी मल । 8, 14, 15, 16

अनुसरित निर्णय

- [2014] (2014) 14 एस. सी. सी. 548 :
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सत्यब्रत सिंह ; 19

- [2013] (2013) 5 एस. सी. सी. 277 :
दीपक अग्रवाल बनाम केशव कौशिक और अन्य ; 19

- [2012] (2012) 3 एस. सी. सी. 117 :
सेन्टर फार पब्लिक इंटरेस्ट लिटीगेशन और अन्य
बनाम भारत संघ और अन्य ; 19

- [2011] (2011) 5 एस. सी. सी. 341 :
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम राकेश कुमार
केसरी और एक अन्य । 9, 19

निर्दिष्ट निर्णय

- [2013] (2013) 3 एस. सी. सी. 372 :
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अशोक कुमार निगम ; 9

- [2005] (2005) 4 एस. सी. सी. 649 :
जी. टेलीफिल्मस् लिमिटेड बनाम भारत संघ ; 9

- [2002] (2002) 4 एस. सी. सी. 234 :
चंद्र प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ; 13

- [2001] (2001) 1 एस. सी. सी. 748 :
आंध्र प्रदेश सरकार बनाम ए. पी. जायसवाल ; 13

- [2000] (2000) 1 एस. सी. सी. 644 :
उप निरीक्षक रूप लाल बनाम उप राज्यपाल ; 13

[1994]	(1994) 2 एस. सी. सी. 204 : उत्तर प्रदेश राज्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य विधि अधिकारी संगम ;	8
[1993]	(1993) सप्ली 2 एस. सी. सी. 734 : डा. ए. आर. सिरकर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ;	9
[1991]	(1991) 1 एस. सी. सी. 212 : कुमारी श्रीलेखा विद्यार्थी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ;	8,14
[1989]	(1989) 2 एस. सी. सी. 754 : भारत संघ बनाम रघुवीर सिंह ;	12,13
[1989]	(1989) 2 एस. सी. सी. 691 : आनदी मुक्ता सदगुरु श्री मुक्ता जी वनदास स्वामी सुवर्णा जयंती महोत्सव स्मारक न्यास बनाम बी. आर. रुदारी ।	9

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 की सिविल अपील सं. 13727 के साथ सिविल अपील सं. 13728.

2012 रिट याचिका प्रकीर्ण न्यायपीठ संख्या 9127 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ न्यायपीठ की खंड न्यायपीठ के तारीख 5 नवंबर, 2014 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री विजय बहादुर सिंह, महाधिवक्ता, कपिल सिब्बल, ज्येष्ठ अधिवक्ता, गौरव भाटी, अपर महाधिवक्ता, एम. आर. शमशाद, अशोक लाल, उदय प्रताप सिंह, (सुश्री) नीदा खान, शशांक सिंह, रजत सिंह, आदित्य समद्वार, अहमद एस. अजहर, आदित एस. पुजारी, मनोज गोयल, शुवोदीप राँय, (सुश्री) प्रितिका द्विवेदी, राकेश मिश्रा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री अमन लेखी, कोलिन

गोंजाल्विस, सलमान खुर्शीद, ज्येष्ठ अधिवक्ता, सौरभ लावानिया, अचिंत्या द्विवेदी, आनंद सिद्धिकी, भगवती प्रसाद पाधेय, मोहित चौधरी, (सुश्री) वैशाली मित्रल, जे. के. शर्मा, (सुश्री) पुजा शर्मा, (सुश्री) केझो, सत्या मित्रा, प्रदीप कुमार माथुर, पी. के. जैन, सौरभ जैन, पी. के. गोस्वामी, एस. पी. सिंह राठोर, उदय प्रकाश यादव, मुकेश के. गिरी, राणा रंजीत सिंह, विवेक कुमार सिंह, रशीद सईद, शुवोदीप राँय, जे. एम. शर्मा, अजीत शर्मा, अक्षत शर्मा, नितिन सिंह, रोहित सिंह, नीरज कुमार श्रीवास्तव, पवन कुमार शुक्ला, पंकज कुमार सिंह, आशुतोष दुबे, महिन्द्र दुबे, डा. विनोद कुमार तिवारी, इम्तियाज अहमद, श्रीमती नगमा इम्तियाज, (सुश्री) अम्रा मुसावी, (मैसर्स इक्विटी लेक्स एसोसिएट की ओर से), शकील अहमद सईद, दानिश अहमद सईद, उजमी जमील हुसैन, मो. परवेज दबास, मिलन लशकर, अनूप कुमार श्रीवास्तव, भानू प्रताप सिंह, वरुण सिंह, विपीन कुमार सक्सेना, अधिवक्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति विक्रमजीत सेन ने दिया ।

न्या. सेन – इजाजत दी गई ।

2. शीर्ष टिप्पण का सुधार करने के आवेदनों और प्रत्यर्थी पक्षकार के रूप में पक्षकार बनाए जाने के सभी आवेदनों को मंजूर किया गया ।

3. इन सभी अपीलों में, हमें संपूर्ण उत्तर प्रदेश राज्य के अधीनस्थ

न्यायालयों में जिला सरकारी काउंसेल (सिविल और दांडिक) के नवीकरण और नियुक्ति पर भी विचार करना है। अपीलार्थी के रूप में राज्य में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ न्यायपीठ की खंडपीठ द्वारा पारित 2012 की रिट याचिका प्रकीर्ण न्यायपीठ सं. 9127 में तारीख 5 नवंबर, 2014 के अंतिम निर्णय और आदेश को चुनौती दी है। उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित आदेश में जिला सरकारी काउंसेल की नियुक्ति को समाप्त करते हुए राज्य सरकार के आदेशों को अभिखंडित किया और आगे राज्य सरकार को उनके नवीकरण पर पुनर्विचार करने का निदेश दिया। असंदिग्धतः, नियुक्तियां और नवीकरण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 24 और संपूर्ण उत्तर प्रदेश राज्य को लागू विधि परामर्शी मैनुअल (इसमें इसके पश्चात् “एल. आर. मैनुअल” कहा गया है) के अनुरूप होना चाहिए। ऐसा मैनुअल जो 1975 में प्रवृत्त हुआ, अन्य बातों के साथ-साथ एक ओर जिला न्यायाधीश और जिला मजिस्ट्रेट और दूसरी ओर राज्य से आज्ञापक “परामर्श” विहित करता है।

4. अगस्त, 2008 में तत्कालीन राज्य सरकार ने तारीख 13 अगस्त, 2008 के सरकारी आदेश के निबंधनानुसार एल. आर. मैनुअल को संशोधित किया और तद्वारा जिला सरकारी काउंसेल की नियुक्ति के लिए जिला न्यायाधीश से परामर्श की प्रक्रिया को हटा दिया : प्रभावतः, इसके पश्चात् एल. आर. मैनुअल में राज्य को केवल जिला मजिस्ट्रेट से ही परामर्श करने की अपेक्षा रहेगी। यथासंशोधित एल. आर. मैनुअल के आधार पर ही प्रत्यर्थी हमारे समक्ष संपूर्ण उत्तर प्रदेश राज्य में जिला सरकारी काउंसेल के रूप में नियुक्ति के लिए आए थे। यह उल्लेखनीय लक्षण है जिस पर हमारा विनिश्चय कुछ अद्योपाय में परिवर्तित होगा। राज्य सरकार का आदेश जो तारीख 13 अगस्त, 2008 का है, प्रमुख **यू. पी. शासकीय अधिवक्ता कल्याण समिति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2008** की रिट याचिका प्रकीर्ण न्यायपीठ संख्या 7851 (2012) 30 एल. सी. डी. 1066 में प्रकाशित याचिका सहित 100 से अधिक रिट याचिकाओं के समूह में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ न्यायपीठ के समक्ष चुनौती दी गई। उन कार्यवाहियों में पारित तारीख 6 जनवरी, 2012 के आदेश द्वारा उच्च न्यायालय ने यथाशीघ्र नए सिरे से नियुक्ति करने का निदेश दिया और मध्यवर्ती अवधि में विद्यमान पैनलकृत अधिवक्ताओं को अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने की अनुज्ञा दी। उसके थोड़े समय पश्चात् **विशन पाल सक्सेना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2011** की रिट याचिका प्रकीर्ण न्यायपीठ संख्या 8246 वाले मामले में तारीख 12 जनवरी, 2012 के अपने

आदेश के निबंधनानुसार उच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य को “अपर जिला सरकारी काउंसेल, सहायक जिला सरकारी काउंसेल, पैनल अधिवक्ता और उप जिला सरकारी काउंसेल के पद” पर अधिवक्ताओं के चयन और नियुक्ति पर पुनर्विचार करने का निदेश दिया ; यह कि पुराने उपबंधों के अनुसरण में नियुक्त व्यक्ति पुनर्विचार प्रक्रिया के पूरा होने तक बने रहेंगे ; और नई नियुक्तियां कठोरतः **यू. पी. शासकीय अधिवक्ता कल्याण समिति और साधना शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** [2011 की रिट याचिका प्रकीर्ण न्यायपीठ संख्या 7825] के अनुरूप की जाएं ।

5. पूर्वोक्त निर्णयों से व्यथित होकर राज्य सरकार ने **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम साधना शर्मा** शीर्षक से 2012 की विशेष इजाजत याचिका संख्या 4042-4043 फाइल की जिसकी विचाराधीनता के दौरान राज्य सरकार में परिवर्तन हो गया । इसके ठीक पश्चात् इस धारणा पर विशेष इजाजत याचिकाओं को वापस लेने के लिए इस न्यायालय के समक्ष अनुरोध किया गया कि नई निर्वाचित राज्य सरकार ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के चुनौतीधीन निर्णयों को स्वीकार कर लिया है और तदनुसार इसको समग्रता में कार्यान्वित करना चाहती है । इन विशेष इजाजत याचिकाओं के निपटान के अनुक्रम में इस न्यायालय ने सुस्पष्टतः और मार्मिकतः यह मत व्यक्त किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 24 की संवैधानिक विधिमान्यता को चुनौती नहीं दी गई है । इस न्यायालय ने सर्वसम्मत से यह राय व्यक्त की कि उच्च न्यायालय के चुनौतीधीन निर्णयों को कार्यान्वित किया जाए । फिर भी तीन “स्पष्टीकरण” अभिलिखित किए गए । पहला, यह कि उच्च न्यायालय और/या संबद्ध जिले के जिला और सेशन न्यायाधीश के परामर्श से की गई नियुक्तियों को अस्त-व्यस्त न किया जाए । दूसरा, “विद्यमान रिक्तियों के लिए इसमें सभी अपीलार्थियों के मामलों को जो सेवा में हैं या सेवा से बाहर हैं और उच्च न्यायालयों के समक्ष सभी याचियों जिनकी सेवाएं ऐसे व्यक्ति जिन्होंने रिट याचिका और/या इन सिविल अपीलों की विचाराधीनता के दौरान उच्च न्यायालय में रिट याचिकाएं फाइल की थीं, सहित जिनकी सेवाएं किसी भी समय समाप्त की गई थीं पर आज से तीन मास की अवधि के भीतर इस न्यायालय के निर्णय के अनुसार नवीकरण/पुनर्विचार के लिए विचार किया जाएगा.....”, तीसरा उत्तर प्रदेश सरकार के विधि और न्याय विभाग के सचिव को व्यक्तिगत उत्तरदायी बनाया जाता है कि वह उपरोक्त नियुक्तियां पूरी करें । **हर्ष गुप्ता और अन्य** (हर्ष गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश

राज्य) द्वारा फाइल की गई 2012 की रिट याचिका संख्या 6069 का निपटान उच्च न्यायालय द्वारा 25 जुलाई, 2012 को इस न्यायालय के पूर्वोक्त आदेश के निबंधनानुसार किया गया ।

6. उपरोक्त आदेशों के पारित होने के परिणामस्वरूप, राज्य सरकार ने इस आशय का तारीख 11 जून, 2012 को एक सरकारी आदेश जारी किया कि सभी जिला सरकारी काउंसिलों की नियुक्ति को रद्द किया जाए । तथापि, नई नियुक्तियां किए जाने तक पदधारियों को अपने कर्तव्यों का निर्वहन जारी रखने की अनुज्ञा दी गई थी । जिला मजिस्ट्रेटों को सिविल, दंडिक और राजस्व पक्ष की रिक्तियों की संख्या सत्यापित करना था ।

7. तारीख 5 सितंबर, 2012 के सरकारी आदेश के निबंधनानुसार, तारीख 17 जुलाई, 2012 की उच्चतम न्यायालय और तारीख 25 जुलाई, 2012 के उच्च न्यायालय के निर्णयों के अनुसरण में प्रत्यर्थियों का बचनबंध समाप्त किया गया और परामर्श रिपोर्ट के आरोप में उनका नवीकरण प्रतीक्षित था । नियुक्ति की समाप्ति को मनमाना बताते हुए **अजय कुमार शर्मा और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** (2012 की रिट याचिका प्रकीर्ण न्यायपीठ संख्या 9127) सहित रिट याचिकाएं इसके परिणामस्वरूप फाइल की गई हैं । तथापि, इस न्यायालय ने तारीख 13 नवंबर, 2013 के आदेश द्वारा यह निदेश दिया कि “विद्यमान पदधारी की नियुक्ति के नवीकरण के मामलों को एल. आर. मैनुअल के अंतर्विष्ट उपबंधों और इस न्यायालय के निर्णयों के अनुसार विचार किया जाए । यह कार्य आज से चार माह की अवधि के भीतर पूरा किया जाए ।” अंततः, तारीख 5 नवंबर, 2014 के अंतिम आदेश के निबंधनानुसार जो हमारे समक्ष विचाराधीन है उच्च न्यायालय ने **अजय कुमार शर्मा और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** वाले मामले में प्रत्यर्थियों के नवीकरण से इनकार करने वाले आदेशों को अभिखंडित करते हुए उत्प्रेषण ; उनकी अभ्यर्थिता पर पुनर्विचार करने का राज्य सरकार को निदेश देते हुए परमादेश जारी किया । उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 25क के अनुसरण में अभियोजन निदेशालय गठित करने का सरकार को निदेश देते हुए परमादेश भी जारी किया था और अंततः जिला न्यायाधीश और जिला मजिस्ट्रेट को यह सुनिश्चित करने का भी निदेश दिया था कि आपराधिक पूर्ववृत्त वाले किसी व्यक्ति को जिला सरकारी काउंसिल के रूप में कार्य करने की अनुज्ञा नहीं दी जाए ।

8. अपीलार्थी/राज्य की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल श्री कपिल

सिब्ल का यह निवेदन है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय का आक्षेपित आदेश अवैधता को जारी रखने की ईप्सा करता है। उन्होंने इस निवेदन को कि जिला काउंसिल के पद की नियुक्ति एक वृत्तिक नियुक्ति है ; पदधारी को कोई सार्वजनिक प्रकृति की प्रास्थिति प्रदत्त नहीं की गई है ; और यह भी कि स्वयं एल. आर. मैनुअल में मात्र कार्यपालिक अनुदेश हैं जिसमें अनुच्छेद 166(3) की सहवर्तिता अंतर्वलित नहीं है ; अतः एल. आर. मैनुअल भारत के संविधान के अनुच्छेद 13 के अधीन विधि नहीं है, इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों के न्यायपीठ के विनिश्चय **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जोहरी मल¹** वाले मामले का दृढ़तापूर्वक अवलंब लिया ; और यह कि **जोहरी मल¹** वाले मामले में इस न्यायालय ने **कुमारी श्रीलेखा विद्यार्थी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य²** के विरुद्ध शर्तें व्यक्त कीं। श्री सिब्ल ने हमारे समक्ष **कुमारी श्रीलेखा विद्यार्थी²** वाले मामले के तथ्यों को इन तथ्यों से भिन्न बताया जहां सभी सरकारी काउंसिलों को सरकारी आदेश द्वारा संपूर्णतः समाप्त किया गया था। आक्षेपित आदेश में राज्य के विरुद्ध जारी परमादेश की रिट के संधार्यता के प्रश्न पर श्री सिब्ल ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी न तो विधिक अधिकार के रूप में दावा कर सकते हैं न ही सरकार उनके वचनबंध को जारी रखने के विधिक कर्तव्याधीन है जो परमादेश के लिए दोनों आवश्यक तत्व हैं। उन्होंने उचित ही यह स्वीकार किया कि विशिष्ट प्रत्यर्थी “वेन्सवरी युक्तियुक्तता” के मानक के प्रतिकूल अपनी नियुक्तियों की बाबत उत्प्रेषण की ईप्सा कर सकता है। श्री सिब्ल ने हमारा ध्यान **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य विधि अधिकारी संगम³** वाले मामले की ओर आकृष्ट किया जिसमें इस न्यायालय ने मुख्य स्थायी काउंसिल, स्थायी काउंसिल और सरकारी अधिवक्ताओं की नियुक्तियों पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि जिनकी नियुक्तियां मनमानी प्रक्रिया के अधीन हुई हैं, की शिकायत को नहीं सुना जाना चाहिए यदि उनकी नियुक्तियों की समाप्ति समानतः मनमानी हैं। श्री सिब्ल ने आगे यह निवेदन किया कि हमारे समक्ष आक्षेपित वर्तमान आदेश हमारे समक्ष आक्षेपित निर्णय के पूर्व इलाहाबाद उच्च न्यायालय की समवर्ती न्यायपीठों द्वारा दिए गए निर्णयों का पालन न करने के कारण अनवधानता से ग्रस्त हैं। उनका आगे यह निवेदन है कि समवर्ती न्यायपीठों अर्थात्

¹ (2004) 4 एस. सी. सी. 714.

² (1991) 1 एस. सी. सी. 212.

³ (1994) 2 एस. सी. सी. 204.

रामचरण सिंह प्रजापति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2014 की रिट याचिका (सिविल) 46350 और गुरु प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2014 की रिट याचिका (सिविल) 39935 के पूर्वोक्त निर्णयों में अन्य बातों के साथ-साथ विधि का सही दृष्टिकोण प्रतिपादित किया गया है कि विधि में नियुक्तियों के पुनर्नवीकरण को अनुज्ञात कर अकृत और शून्य बनाना अवैधता को सत्य बनाने के समान है। समाप्त करते हुए, विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल ने यह भी दलील दी कि प्रत्यर्थियों की ओर से तथ्यतः सिद्धांत के लागू करने की पूर्व धारणा का तर्क सारहीन है।

9. प्रत्यर्थियों के ज्येष्ठ विद्वान् काउंसिल श्री अमन लेखी का यह निवेदन है कि राज्य का अपना दृष्टिकोण भ्रामक है क्योंकि जोहरी मल (उपरोक्त) वाले मामले के तथ्यों पर भी कुमारी श्रीलेखा विद्यार्थी (उपरोक्त) वाले मामले से भिन्न नहीं रहता है क्योंकि नवीकरण बाद वाले दो न्यायाधीश की न्यायपीठ के निर्णय में भी इस न्यायालय के समक्ष प्रश्नगत था। केवल कारण कि क्यों इस न्यायालय ने जोहरी मल (उपरोक्त) वाले मामले में हस्तक्षेप किया और बाद में पुनः उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राकेश कुमार केसरी¹ वाले मामले में हस्तक्षेप किया, यह था क्योंकि पहले वाले मामले में सिफारिश पक्ष में नहीं था और बाद वाले मामले में पदधारी अक्षम था। श्री लेखी का आगे यह निवेदन है कि राज्य सरकार इस तथ्य का अवलंब नहीं ले सकती कि नियुक्तियां शून्य थीं क्योंकि प्रथमतः, नियुक्तियां उस समय और विस्तारित नियमों के अधीन विधिमान्य थीं और इस कारण भी कि “तथ्यतः सिद्धांत” उनके बचाव में थे। उन्होंने अपने निवेदन के समर्थन में डा. ए. आर. सिरकर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य² वाले मामले का अवलंब लिया। दूसरा “परिकरणों की शिष्टता” के सिद्धांत को लागू करने के संबंध में विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल श्री लेखी का यह तर्क है कि कार्यपालिका को न्यायिक निर्णयों को असफल करने या अकृत करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती। तीसरा, यह कि इन नियुक्तियों में सातत्यता का तत्व है जैसा कुमारी श्रीलेखा विद्यार्थी (उपरोक्त) वाले मामले में बल दिया गया है। अन्य कुछ प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसिल श्री मनोज गोयल का आगे यह निवेदन है कि आनदी मुक्ता सदगुरु श्री मुक्ता जी वनदास स्वामी सुवर्ना जयंती महोत्सव

¹ (2011) 5 एस. सी. सी. 341.

² (1993) सप्ली 2 एस. सी. सी. 734.

स्मारक न्यास बनाम बी. आर. रूदारी¹ और जी. टेलीफिल्मस् लिमिटेड बनाम भारत संघ² वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के उचित परिशीलन से यह प्रकट होता है कि परमादेश से इस आधार पर इनकार नहीं किया जा सकता कि प्रवर्तनीय कर्तव्य कानून द्वारा अधिरोपित नहीं है वस्तुतः यह संविदा को प्रवृत्त कराने के लिए भी पारित किया जा सकता है। उन्होंने यह बल दिया कि परमादेश कुमारी श्रीलेखा विद्यार्थी (उपरोक्त) वाले मामले के आलोक में समुचित उपचार है क्योंकि डी. जी. सी. और ए. डी. जी. सी. की नियुक्ति में लोक तत्व अंतर्वलित है जो स्वतः भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और न्यायिक पुनर्विलोकन को आकर्षित करने का पर्याप्त कारण है। हमारा ध्यान उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अशोक कुमार निगम³ वाले मामले की ओर आकृष्ट किया गया जहां इस न्यायालय ने यह दोहराया कि एल. आर. मैनुअल के संबद्ध उपबंधों के अधीन इनकारी के लिए तर्क अनिवार्य है जिसका वह दावा कर रहे हैं वह सामूहिक नामजूरी के लिए विधिमान्य आधार नहीं है। इस मुद्दे पर कि लखनऊ न्यायपीठ का आक्षेपित निर्णय अनवधानतावश है, श्री लेखी का यह निवेदन है कि आक्षेपित आदेश ने रामचरण सिंह प्रजापति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और गुरु प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य वाले मामलों में इलाहाबाद के समवर्ती न्यायपीठ के विनिश्चयों की उचित ही उपेक्षा की क्योंकि स्वयं इलाहाबाद न्यायपीठ ने ऐसे आदेश पारित किए थे जो अनवधानतावश थे। ज्येष्ठ विद्वान् काउंसिल श्री जितेन्द्र मोहन शर्मा ने भी यह निवेदन किया कि राज्य सरकार ने पहले ही उत्तर प्रदेश राज्य बनाम साधना शर्मा, 2012 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 4042-43 वाले मामले में सरकारी अधिवक्ताओं के नवीकरण के मामलों पर पुनर्विचार करने की सहमति व्यक्त की है और अब राज्य भिन्न आधार नहीं ले सकते। तथापि, यह ध्यातव्य है कि राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश शासकीय अधिवक्ता कल्याण समिति वाले मामले में उच्च न्यायालय के निर्णय को लागू करने के लिए अपील वापस ले ली है और सरकारी अधिवक्ताओं के नवीकरण के मामले पर पुनर्विचार करने के लिए सहमत नहीं है जैसा श्री शर्मा का कहना है।

10. इस न्यायालय ने “पूर्व निर्णय” और निर्णीतानुसरण के आवश्यक

¹ (1989) 2 एस. सी. सी. 691.

² (2005) 4 एस. सी. सी. 649.

³ (2013) 3 एस. सी. सी. 372.

तत्वों और सिद्धांतों का बलपूर्वक पुनर्कथन किया जो सभी कामन ला न्यायिक प्रणालियों के श्रेणीबद्ध चरित्र के आधारभूत लक्षण हैं। पूर्व निर्णय का सिद्धांत यह अधिदेश देता है कि विधि की प्रतिपादना को समवर्ती या समान न्यायपीठों और निश्चित रूप से सभी छोटे न्यायपीठों और अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा भी अनुसरण किया जाए और लागू किया जाए। दूसरे शब्दों में छोटे और बाद वाले न्यायपीठ को पूर्व और वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा अधिकथित विधि को लागू करने के अलावा कोई स्वतंत्रता नहीं है; अर्थात् वह विधि जो उस विषय पर लागू किया गया कहा गया है। अनुच्छेद 141 के अलावा न्यायालयों की यह नीति है कि पूर्व निर्णय का अनुसरण करें और स्थिर बिंदुओं को अस्त-व्यस्त न करें। पूर्व निर्णयों का प्रयोजन न्यायिक विनिश्चयों को भविष्य सूचकता प्रदान करना है और यह नुक्ताचीनी से परे है कि विधि की निश्चितता विधि के नियम का आवश्यक तत्व है। विपथता तभी अपनाई जाए जब समवर्ती या समान न्यायपीठ पूर्व विनिश्चय को संदेहास्पद तर्क या प्रभाविता का होना पाता है और परिणामतः उसकी न्यायिक अंतरआत्मा इतना क्षुब्ध और व्याकुल है कि वह विद्यमान तर्काधार का अनुसरण करना असंभाव्य पाता है। न्यायपीठ को तब माननीय मुख्य न्यायमूर्ति से वृहत्तर न्यायपीठ के गठन का अनुरोध करने के अनुशासन का पालन करना चाहिए।

11. यदि समवर्ती संख्या के आबद्धकारी पूर्व निर्णयों का अनुसरण नहीं किया जाता है तो विधि की सातत्यता और निश्चितता की जड़ें उन्मूलित हो जाएंगी जिनका पोषण, दृढ़ीकरण, शाश्वतीकरण और प्रोद्भवन किया जाना चाहिए। यद्यपि बिल्कुल भिन्न संदर्भ में यह कहा गया है फिर भी हमें बिलयम बटलर यीट द्वारा लिखित “द सकेंड कर्मिंग” कविता का आरंभिक छंद याद आता है। पंक्तियां प्रकटतः पूर्व निर्णय के सिद्धांत का उल्लेख नहीं करती किंतु वह इस प्राचीन और मान्य सिद्धांत की बुद्धिमत्ता प्रस्तुत करने में प्रासंगिक हैं।

“चौड़े चक्कर में बार-बार घुमते हुए बाज, बाजपालक की नहीं सुन सकता है ; बातें बिल्कुल अलग हैं ; केंद्र व्यवस्था नहीं कर सकता ; संसार में अराजकता ही फैल जाती है।”

12. इस न्यायालय द्वारा दिए गए सभी विनिश्चयों को असीम उद्धृत करने के संदर्भ में, **भारत संघ बनाम रघुवीर सिंह¹** वाले मामले में संविधान

¹ (1989) 2 एस. सी. सी. 754.

न्यायपीठ ने विधि की निम्नलिखित प्रतिपादना व्यक्त की है :-

“25. इस मुद्दे के संबंध में सभी मामलों के प्रतिनिर्देश करना आवश्यक नहीं है । उपर्युक्त से सामान्य दिशानिर्देश सरलतापूर्वक प्राप्त किए जा सकते हैं । इन मार्गदर्शक सिद्धांतों को आगे परिभाषित करने की संभावना आगे विधिक अनुभव के साथ परिकल्पित की जा सकती है, और जब विधि की विभिन्न राष्ट्रीय प्रणालियों से संबंधित सामान्य विधि शास्त्र संबंधी मूल्यों के कारण सहमतिजन्य पद्धति संभव हो । परंतु यह भविष्य की बात है ।

26. इस प्रश्न की बाबत कुछ वाद-विवाद हुआ था कि क्या न्यायाधीशों की खंड न्यायपीठ अधिक संख्या वाले न्यायाधीशों के खंड न्यायपीठ द्वारा अधिकथित विधि का अनुसरण करने के लिए बाध्य है । इस मुद्दे पर जावेद अहमद हमीद पावला **बनाम** महाराष्ट्र राज्य वाले मामले में न्यायमूर्ति ओ. चिन्नप्पा रेड्डी द्वारा व्यक्त किए गए कतिपय मतों के कारण संदेह उद्भूत हुआ है । पहले दो न्यायाधीशों वाले खंड न्यायपीठ ने, जिनमें से वह एक था, टी. वी. वथीस्वर्ण **बनाम** तमिलनाडु राज्य वाले मामले में यह मत व्यक्त किया था कि मृत्यु दंडादेश के निष्पादन में दो वर्ष से अधिक के विलंब को मृत्यु दंडादेश के अधीन व्यक्ति को संविधान के अनुच्छेद 21 का आश्रय लेने और मृत्यु दंडादेश को अभिखंडित करने की मांग करने के लिए हकदार बनाने के लिए पर्याप्त समझा जाना चाहिए । उसने यह मताभिव्यक्ति की कि ऐसा तब भी होगा । यदि निष्पादन में विलंब अपील फाइल करने के लिए आवश्यक समय अथवा अभियुक्त के दंड स्थगन पर विचार करने अथवा किसी अन्य हेतुक से, जिसके लिए अभियुक्त स्वयं उत्तरदायी हो, हुआ है । इस मत को शेरसिंह और अन्य **बनाम** पंजाब राज्य वाले मामले में तीन न्यायाधीशों वाले न्यायपीठ द्वारा अस्वीकार किया गया । इस मामले में विद्वान् न्यायाधीशों ने यह मताभिव्यक्ति की कि इस बाबत कोई निश्चित नियम अधिकथित नहीं किया जा सकता था । उपर्युक्त टी. वी. वथीस्वर्ण (उपरोक्त) वाले मामले में व्यक्त किए गए मत से सीधे असहमति व्यक्त करते हुए, विद्वान् न्यायाधीशों ने यह कहा कि उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय तथा कार्यपालक प्राधिकारियों के समक्ष कार्यवाहियों में लगे समय की गणना की जानी चाहिए और यह विचार करना सुसंगत है कि क्या विलंब अभियुक्त के आचरण के कारण हुआ था । उपर्युक्त

जावेद अहमद अब्दुल हमीद पावला वाले मामले में दो न्यायाधीशों के एक अन्य न्यायपीठ के एक सदस्य के रूप में न्यायमूर्ति ओ. चिन्नप्पा रेड्डी ने उपर्युक्त शेर सिंह वाले मामले में की गई मताभिव्यक्तियों की विधिमान्यता को ध्यान नहीं दिया और इस मुद्दे पर कोई अंतिम राय व्यक्त किए बिना यह टिप्पण किया, कि यह गंभीर प्रश्न है कि –

“क्या तीन न्यायाधीशों वाला यह खंड न्यायपीठ मात्र इस कारण दो न्यायाधीशों वाले खंड न्यायपीठ के निर्णय को उलट सकता था कि तीन दो से अधिक होते हैं। न्यायालय सुविधा की दृष्टि से दो और तीन न्यायाधीशों के खंडों में बैठता है और तीन न्यायाधीशों वाले खंड न्यायपीठ के लिए दो न्यायाधीशों वाले खंड न्यायपीठ के विनिश्चय को उलटना अनुपयुक्त होगा (देखिए यंग बनाम ब्रिस्टल एरोप्लेन कं. लिमिटेड)। ऐसा अन्यथा वहां होगा जहां पूर्ण न्यायपीठ अथवा संविधान न्यायपीठ ऐसा करे।”

यहां यह अभिलिखित करना उपयुक्त रहेगा कि उपर्युक्त शेर सिंह वाले मामले में व्यक्त की गई राय की विधिमान्यता की बाबत व्यक्त किए गए संदेह के कारण, मृत्यु दंडादेश के निष्पादन में हुए विलंब के प्रभाव का प्रश्न पांच न्यायाधीशों वाले खंड न्यायपीठ के लिए निर्दिष्ट किया गया था और त्रिबेनीबेन बनाम गुजरात राज्य वाले मामले में संविधान न्यायपीठ ने उपर्युक्त टी. वी. वथीस्वर्ण वाले मामले को उलट दिया।

27. तब ऐसे किसी मामले के संबंध में जिसमें बाद में कम संख्या वाले न्यायाधीशों के खंड न्यायपीठ के समक्ष उसी मुद्दे को उठाया गया है खंड न्यायपीठ द्वारा सुनाए गए विधि के प्रभाव के संबंध में क्या स्थिति होनी चाहिए? इस बाबत किसी प्रकार का कोई सांविधानिक या कानूनी उपबंध नहीं है, और यह मुद्दा पूर्णतः भारत में न्यायालयों की उस प्रथा द्वारा शासित है जिसकी शताब्दियों से बार-बार अभिपुष्टि की गई है। इस बाबत कोई संदेह नहीं किया जा सकता है कि किसी वरिष्ठ न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि में संगति और सुनिश्चितता की अभिवृद्धि करने के लिए आदर्श संकल्पना यह होगी कि विधि के प्रश्नों का विनिश्चय करने के लिए संपूर्ण न्यायालय समस्त मामलों में सुनवाई करे, और इस कारण अमरीकी सुप्रीम कोर्ट ऐसा करता है। किंतु उस कार्य की मात्रा को देखते हुए जिसकी ओर न्यायालय को ध्यान देना पड़ता है, भारत में पद्धति और सुविधा

के सामान्य नियम के रूप में यह आवश्यक हो गया है कि न्यायालय को खंडों में सुनवाई करनी चाहिए, और प्रत्येक खंड में न्यायाधीश हों जिनकी संख्या न्यायिक आवश्यकता की अत्यावश्यकताओं, इससे संबंधित किसी कानूनी आदेश को सम्मिलित करते हुए मामले की प्रकृति द्वारा, और ऐसी अन्य विचारणाओं द्वारा अवधारित हो जिन्हें मुख्य न्यायमूर्ति, जिसमें ऐसा प्राधिकार परिपाटी द्वारा न्यायगत होता है, अति उपयुक्त पाएं। विभिन्न खंड न्यायपीठों द्वारा विधि के मुद्दों पर विसंगत विनिश्चयों की संभावनाओं के विरुद्ध रक्षा करने के लिए ही इस नियम का विकास किया गया है ताकि विधि और उसके समकालीन स्तर के विकास में संगति और सुनिश्चितता की अभिव्यक्ति हो सके, यह कि विधि का कथन खंड न्यायपीठ द्वारा उसी खंड न्यायपीठ का अथवा कम संख्या वाले न्यायाधीशों को न्यायपीठों पर आबद्धकर समझा जाए। इस सिद्धांत का अनुसरण भारत में न्यायाधीशों के अनेकों पीढ़ियों द्वारा किया गया है। हम इस मुद्दे पर अभी हाल के कुछ मामलों के प्रतिनिर्देश कर सकते हैं। जान मार्टिन **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य वाले मामले में, तीन न्यायाधीशों के खंड न्यायपीठ ने भूतनाथ माटे **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य वाले मामले, जिसका विनिश्चय दो न्यायाधीशों के खंड न्यायपीठ द्वारा किया गया था, की अपेक्षा हरधन साहा **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य वाले मामले में घोषित विधि का अनुसरण सही ठहराया, जिसका विनिश्चय पांच न्यायाधीशों के खंड न्यायपीठ द्वारा किया गया था। तथापि, इंदिरा नेहरू गांधी **बनाम** श्री राजनारायण वाले मामले में न्यायमूर्ति बेग ने यह अभिनिर्धारित किया कि पांच न्यायाधीशों का संविधान न्यायपीठ केशव नंद भारती श्रीपदगालवरु पूज्य जी **बनाम** केरल राज्य वाले मामले में तेरह न्यायाधीशों के संविधान न्यायपीठ द्वारा आबद्ध था। गणपति सीताराम बालवलकर और एक अन्य **बनाम** वामन श्रीपदमागे (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से मामले में इस न्यायालय ने अभिव्यक्ततः यह कहा कि इस न्यायालय के चार न्यायाधीशों के खंड न्यायपीठ द्वारा विधि के किसी मुद्दे पर अपनाया गया मत न्यायालय के तीन न्यायाधीशों के खंड न्यायपीठ पर आबद्धकर था और मट्टूलाल **बनाम** राधेलाल वाले मामले में इस न्यायालय ने विनिर्दिष्टतः यह मताभिव्यक्ति की कि जहां इस न्यायालय के दो विभिन्न न्यायपीठों द्वारा मताभिव्यक्ति का मेल न हो तो अधिक संख्या वाले न्यायाधीशों के खंड न्यायपीठ द्वारा सुनाए गए

निर्णय को कम संख्या वाले न्यायाधीशों के खंड न्यायपीठ के विनिश्चय की अपेक्षा अधिमान दिया जाएगा ।

इस न्यायालय ने भी आचार्य महाराज श्री नरेन्द्र प्रसाद जी आनंद प्रसाद जी महाराज और अन्य **बनाम** गुजरात राज्य और अन्य वाले मामले में यह अधिकथित किया कि ऐसे मामले में भी जहां दो भिन्न मत वाले खंड न्यायपीठों में समान संख्या वाले न्यायाधीश थे, एक खंड न्यायपीठ के लिए दूसरे के मत की शुद्धता या अन्यथा का विनिश्चय करने की छूट नहीं थी । इस सिद्धांत की भारत संघ और अन्य **बनाम** गोडफ्रे फिलिप्स इंडिया लिमिटेड वाले मामले में पुनः अभिपुष्टि की गई थी । इस मामले में यह उल्लेख किया गया कि जीतराम **बनाम** हरियाणा राज्य वाले मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों के खंड न्यायपीठ ने इस मुद्दे पर कि, क्या प्रोमसरी विबंध के सिद्धांत को कार्यपालक आवश्यकता की प्रतिरक्षा का अवलंब लेकर विफल किया जा सकता था, और यह अभिनिर्धारित करके कि ऐसा करना पूर्णतः अमान्य था पश्चात्पूर्वी न्यायपीठ की उस सुस्वीकृत और वांछनीय पद्धति के प्रति निर्देश किया गया जिसमें विद्वान् न्यायाधीशों के यह निष्कर्ष निकालने पर कि निर्देश किया जाना स्थिति की मांग थी बृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष निर्देश किया जाए, मोतीलाल पदमपत शुगर मिल्स **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य वाले मामले में दो न्यायाधीशों के पूर्ववर्ती खंड न्यायपीठ द्वारा अपनाए गए मत से भिन्न मत अपनाया था ।

28. हमारी यह राय है कि इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा घोषित विधि उसी खंड न्यायपीठ या कम संख्या वाले न्यायाधीशों के न्यायपीठ पर आबद्धकर है और इसलिए कि ऐसा विनिश्चय आबद्धकर हो, यह आवश्यक नहीं है कि यह पूर्ण न्यायालय या न्यायालय के संविधान न्यायपीठ द्वारा दिया गया विनिश्चय हो । तथापि, हम यह समझते हैं कि सुनिश्चितता और सम्यक् प्राधिकार प्रदान करने के प्रयोजनार्थ भविष्य में इस न्यायालय के विनिश्चय उस समय तक कम से कम तीन न्यायाधीशों के खंड न्यायपीठों द्वारा किए जाएं जब तक कि, अकाट्य कारणों से, ऐसा करना सुविधाजनक रूप में संभव न हो ।

13. **चंद्र प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य¹** वाले मामले में इस

¹ (2002) 4 एस. सी. सी. 234.

न्यायालय के पांच न्यायाधीशों के न्यायपीठ के हाल ही के विनिश्चय में **रघुवीर सिंह** वाले मामले के पूर्वोक्त प्रतिपादित सिद्धांत की पुष्टि की और उससे निम्नलिखित उद्धरण का प्रतिनिर्देश किया जा सकता है :-

“22. पूर्वोक्त निर्णयों के सम्यक् परिशीलन से यह दर्शित होता है कि इस न्यायालय ने भारत में न्यायिक प्रणाली के श्रेणीबद्ध प्रकृति पर ध्यान दिया । इसमें यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि यह सर्वोत्तम महत्व का विषय है कि इस न्यायालय द्वारा घोषित विधि निश्चित, स्पष्ट और संगत होनी चाहिए । जैसाकि पूर्वोक्त निर्णयों में कहा गया है, यह सामान्य ज्ञान का विषय है कि इस न्यायालय के अधिकांश विनिश्चय केवल इसलिए महत्वपूर्ण नहीं हैं क्योंकि वे पक्षकारों के अधिकारों का न्यायनिर्णयन और उनके बीच विवादों का समाधान करते हैं बल्कि इसलिए भी क्योंकि ऐसा करते समय वे भावी मामलों में आबद्धकर सिद्धांत के रूप में प्रवर्तनकारी विधि की घोषणा भी करते हैं । आबद्धकर पूर्व निर्णय का सिद्धांत हमारी न्यायिक प्रणाली के प्रशासन में सर्वाधिक महत्व का है । यह न्यायिक विनिश्चयों में निश्चितता और संगतता का बढ़ावा देता है । न्यायिक संगतता व्यवस्था में विश्वास बढ़ाता है अतः इस न्यायालय के विनिश्चयों में विधिक सिद्धांतों के प्रतिपादन में संगतता के लिए इसकी आवश्यकता है । पूर्वोक्त संदर्भ में, इस न्यायालय ने **रघुवीर सिंह** वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा विधि की घोषणा समान या छोटे संख्या वाले न्यायाधीशों की न्यायपीठ पर आबद्धकर है । विधि की इस प्रतिपादना के अग्रसरण में, इस न्यायालय ने **परिजा** के बाद वाले निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया कि -

‘किंतु यदि दो विद्वान् न्यायाधीशों की न्यायपीठ यह निष्कर्ष निकालता है कि तीन विद्वान् न्यायाधीशों का पूर्व निर्णय इस प्रकार बहुत गलत है कि किसी भी परिस्थितियों में इसका अनुसरण नहीं किया जा सकता, तो यह उचित अनुक्रम अपनाया जाना चाहिए कि तीन विद्वान् न्यायाधीशों से बनने वाले न्यायपीठ के समक्ष मामले को निर्दिष्ट किया जाए जैसा यहां किया गया है और यह कारण भी बताया जाए कि वह पूर्व निर्णय से क्यों सहमत नहीं है । तब भी यदि तीन विद्वान् न्यायाधीशों की न्यायपीठ यह निष्कर्ष पर पहुंचती है कि तीन

“विद्वान् न्यायाधीशों की न्यायपीठ का पूर्व निर्णय गलत है तो पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ को प्रतिनिर्देश किया जाना न्यायोचित है।”¹

उप निरीक्षक रूप लाल बनाम उप राज्यपाल¹ वाले मामले को लागू करते हुए, इस न्यायालय ने **आंध्र प्रदेश सरकार बनाम ए. पी. जायसवाल²** वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि :-

“संगतता न्याय प्रशासन की आधार भूमि है। यह संगतता ही है जो व्यवस्था में विश्वास पैदा करती है और इस संगतता को अंतिमता के नियम का सम्मान किए बिना कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता। न्यायिक निर्णयों में संगतता प्राप्त करने के उद्देश्य से ही न्यायालयों ने पूर्व निर्णय के नियम, निर्णीतानुसरण के सिद्धांत आदि को विकसित किया। ये नियम और सिद्धांत लोक नीति पर आधारित हैं और यदि इनका पालन न्यायालयों द्वारा नहीं किया जाता है तो न्याय प्रशासन में अस्थिरता फैल जाएगी जो हम इस मामले में बहुतायत में पाते हैं।”

14. दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ में पीठासीन होकर, हम पूर्व निर्णय के नियम को लागू करने से बेहतर इस समय कुछ नहीं कर सकते जैसा हमारे लिए अनुसरण करने हेतु छोड़ा गया है। अपर जिला सरकारी काउंसिल, सहायक जिला सरकारी काउंसिल, पैनल अधिवक्ता और उप जिला सरकारी काउंसिल की नियुक्ति से संबंधित विधि प्रत्यक्षतः **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जोहरी मल³** वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष विवादक थी जहां विधि को व्यापकतः स्पष्ट किया गया है। **कुमारी श्रीलेखा विद्यार्थी** या उसके पश्चात् दिए गए किसी निर्णय पर चर्चा करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

15. **जोहरी मल** (उपरोक्त) वाले मामले में, इस न्यायालय ने एल. आर. मैनुअल और दंड प्रक्रिया संहिता का भी परिशीलन किया और यह दोहराया कि जिला काउंसिल वृत्तिकतः नियुक्त किए जाते हैं; यह कि राज्य सरकार उनके कार्यपालन से संतुष्ट होने के पश्चात् अनुक्रम का अवधारण करने के लिए स्वतंत्र थी और यह कि न्यायालयों को ऐसे विषयों पर न्यायिक पुनर्विलोकन का उपयोग करते समय चौकस रहना चाहिए जो

¹ (2000) 1 एस. सी. सी. 644.

² (2001) 1 एस. सी. सी. 748.

³ (2004) 4 एस. सी. सी. 714.

राज्य सरकार अर्थात् उनके काउंसिल या अधिवक्ताओं की नियुक्ति के विवेकाधिकार के भीतर आते हैं। इस न्यायालय ने यह दोहराया कि जिला काउंसिल अपनी पदावधि के नवीकरण की बाबत किसी कानूनी अधिकार का उपभोग नहीं करते तथा राज्य सरकार को इस बाबत वैवेकिक शक्तियां हैं। अधिवक्ताओं के न्यायालयिक कार्यपालन को ही जिला काउंसिल के रूप में उनके पुनर्नियुक्ति का एक मात्र मानदंड नहीं माना जाना चाहिए और यह कि राज्य सरकार उन व्यक्तियों में विश्वास और निष्ठा रखने के लिए स्वतंत्र है जिन्हें वे अपने अधिवक्ताओं के रूप में नियुक्त करने का चुनाव करते हैं। हम इस निर्णय के निम्नलिखित पैरा को दोहराने से अधिक कुछ नहीं कर सकते जो हमारे और प्रत्येक दो अन्य न्यायाधीशों के न्यायपीठ पर आबद्धकर है :-

“40. जहां तक दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन अधिकथित प्रक्रियाओं का काउंसिल की नियुक्ति करने में अपनाया जाता है और युक्तियुक्त या उचित प्रक्रिया को अंगीकृत किया जाता है, न्यायालय मामूली रूप से विनिश्चय में हस्तक्षेप नहीं करेगा। अधिवक्ता द्वारा धारित पद की प्रकृति के मुकाबले राज्य की वृत्तिक ठहराव की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए न्यायालय किसी विनिश्चय को पलटने में संकोच करते हैं जब तक कोई आपवादिक मामला नहीं बनता है। यह प्रश्न कि क्या राज्य अपने काउंसिल के कार्यपालन से संतुष्ट है या नहीं, प्राथमिकतः उसके और काउंसिल के बीच का मामला है। दंड प्रक्रिया संहिता पदावधि के पुनर्नवीकरण या विस्तार के बारे में उपबंध नहीं करती। लोक अभियोजक या जिला काउंसिल के पदावधि के विस्तार की तुलना किसी कानून के अधीन अनुदत्त अनुज्ञप्ति या परमिट के अधीन पुनर्नवीकरण के अधिकार से नहीं की जानी चाहिए। पदधारी के पास ऐसा कोई इस प्रकार का विधिक प्रवर्तनीय अधिकार नहीं है।

41. ओम कुमार बनाम भारत संघ, (2001) 2 एस. सी. सी. 386 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि जहां प्रशासनिक कार्रवाई की चुनौती अनुच्छेद 14 के अधीन विभेदकारी, समान के असमान या असमान के समान होने के रूप में की जाती है वहां प्राथमिक पुनर्विलोकनकर्ता न्यायालयों के रूप में संवैधानिक न्यायालयों के लिए लागू विभेद के स्तर की शुद्धता पर विचार करने का प्रश्न है और यह कि क्या यह अतिशयकारी है और क्या इसका

संबंध प्रशासक द्वारा प्राप्त किए जाने वाले आशयित उद्देश्य से संबंध है । इस प्रकार राज्य की कार्रवाई का निर्णयन बहुत सावधानी और चौकसी से किया जाना चाहिए । मस्तिष्क में यह बात उभरती है कि लोक अभियोजक और जिला काउंसिल के अधिकार कानून के अधीन मिश्रित नहीं होते । यद्यपि, वैकेिक शक्तियां न्यायिक पुनर्विलोकन की परिधि से परे नहीं हैं फिर भी यह स्वयं सिद्ध है कि न्यायालयों को विवेकाधिकार के उचित प्रयोग के लिए लोक प्राधिकारियों को पर्याप्त छूट/भूमिका निभाने की अनुज्ञा देनी चाहिए ।

.....

44. जब केवल अच्छे और सक्षम काउंसिल की नियुक्ति राज्य द्वारा की जाती है तो ही लोक हित की सुरक्षा होगी । राज्य को लोक अभियोजकों की नियुक्ति करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि विधिसम्मत नियम कायम रखने के प्रयोजन के लिए न्याय का सही प्रशासन अनिवार्य है जिससे परिणामतः लोकतंत्र की पुष्टि पर प्रत्यक्ष प्रभाव होगा । इस प्रकार लोक अभियोजकों या जिला काउंसिल की कोई नियुक्ति राजनीतिक प्रयोजनों को पूरा करने के लिए या कुछ लोगों को कुछ असम्यक् फायदा पहुंचाने के लिए नहीं किया जाना चाहिए । राज्य द्वारा अपने काउंसिल के प्रतिधारण पर विचार लोक हित के मापदंड पर किया जाना चाहिए । राज्य को कुशल, ईमानदार और सक्षम अधिकारी द्वारा प्रतिस्थापित करना चाहिए, अन्य बातों के साथ-साथ जब वह अधिक सक्षम अधिवक्ता की नियुक्ति करने की स्थिति में है । ऐसी दशा में किसी अधिवक्ता द्वारा सही कार्यपालन भी अधिक महत्व का नहीं हो सकता ।

.....

46. दंड प्रक्रिया संहिता अवधि के पुनर्नवीकरण या विस्तार का उल्लंघन नहीं करती । सुस्पष्टतः विधायिका में ऐसे मामलों को राज्य के विवेकाधिकार पर छोड़ना उचित समझा । निःसंदेह यह सही है कि लोक अभियोजकों की अवधि के विस्तार या पुनर्नवीकरण के मामले में भी राज्य से उचित और युक्तियुक्त ढंग से कार्य करने की अपेक्षा है । राज्य प्रसामान्यतः लीगल रिमेम्ब्रेंसर मैनुअल में अधिकथित सिद्धांतों का पालन करने के लिए आबद्ध होगा ।

.....

75. तथापि, जिला सरकारी काउंसिल के लगाए जाने के मामले में लोक पद की अवधारणा सामने नहीं आती। तथापि, यह सही है कि काउंसिल के मामले में विकल्प सरकार का ही है और कोई भी व्यक्ति नियुक्त किए जाने के अधिकार का दावा नहीं कर सकता। निश्चय ही ऐसा इस प्रकार से है क्योंकि यह बहुत ही आस्था और विश्वास का पद है। तथापि, अनुच्छेद 14 का उपबंध सीमित विस्तार तक लागू होगा क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता में नामित कृत्यकारी लोक कृत्यकारी हैं। उन्हें लोक कर्तव्य का भी पालन करना पड़ता है। यदि राज्य लोक कर्तव्य का पालन करने में असफल रहता है या विधि के सिद्धांतों की अवहेलना, विपथन और अलगाव से कार्य करता है तो न्यायालय हस्तक्षेप कर सकते हैं। न्यायालय तब हस्तक्षेप कर सकेगा जब ऐसी नियुक्तियों के प्रयोजन के लिए सरकार द्वारा अधिकथित विधिक नीति से विपथन किया जाता है या विधि के आज्ञापक उपबंधों का पालन नहीं किया जाता। न्यायिक पुनर्विलोकन का भी अवलंब लिया जा सकता है यदि लोक पद के धारक व्यक्ति को कानून से असंबद्ध कारणों से हटाए जाने की ईप्सा की जाती है।¹

16. यह नुक्ताचीनी से परे है कि यह आपराधिक न्याय की व्यवस्था के हित में है कि सत्यनिष्ठा रखने वाले सक्षम काउंसिल की ही नियुक्ति की जाए अन्यथा न्याय के दुरुपयोग की घोर संभावना है। उनका चुनाव करने में राज्य को न केवल उनके न्यायालयिक सक्षमता का समाधान करना होगा बल्कि यह भी कि उनका कोई आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है। तथापि, इसका यह अर्थ नहीं है कि अपर जिला सरकारी काउंसिल, सहायक जिला सरकारी काउंसिल, पैनल अधिवक्ता और उप जिला सरकारी काउंसिल के कर्तव्यों का इस समय निर्वहन करने वाले व्यक्ति सिविल पदों पर नियुक्त हैं और उसके द्वारा सातत्यता का अधिकार रखते हैं। हमारी राय में, जो **जोहरी मल** (उपरोक्त) वाले मामले में वर्णित है, राज्य को किसी अन्य वादकारी की तरह उस काउंसिल को नियुक्त करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए जिसमें उनकी आस्था और विश्वास हो। केवल यह प्रत्याशा की जाती है कि राज्य द्वारा अपनाया गया विकल्प इस प्रकार नहीं होना चाहिए जो यह सुनिश्चित करने के उनके पवित्र और दुर्भरदायित्व को विफल करता हो कि सभी नागरिकों को न्याय मिले। **जोहरी मल** (उपरोक्त) वाले मामले में, इस न्यायालय ने स्पष्टतः सरकारी अधिवक्ता के रूप में अधिवक्ता के पुनर्नवीकरण या पुनर्नियुक्ति के जारी रखने के दावे

को खारिज कर दिया है। हम पूर्णतः विधि की इस प्रतिपादना से सहमत हैं। हम यह सोचते हैं कि अपर जिला सरकारी काउंसिल, सहायक जिला सरकारी काउंसिल, पैनल अधिवक्ता और उप जिला सरकारी काउंसिल की नियुक्ति के लिए अधिवक्ताओं की सक्षमता पर विचार किया जाना सही दृष्टिकोण है। हमें यह प्रतीत होता है कि विद्यमान सरकारी काउंसिलों की पुनर्नियुक्ति या पुनर्नवीकरण पर विचार करने की इस प्रक्रिया को आरंभ करना गलत दृष्टिकोण होगा चूंकि वह सरकार के ऐसे अधिवक्ताओं को नियुक्त करने के विवेकाधिकार को क्षीर्ण ही नहीं बल्कि विघटित करेगा जिसमें उनका विश्वास है। उच्च न्यायालय ने दूसरी दृष्टिकोण का अनुसरण किया जिसके परिणामस्वरूप राज्य सरकार को असंतोष हुआ और उनका असंतोष कि उनके विवेकाधिकार के परिक्षेत्र को किसी उचित कारण के बिना खंडित किया गया है।

17. अपीलें मंजूर की जाती हैं। आक्षेपित निर्णय को खर्चा अधिरोपित किए बिना अपास्त किया जाता है। नई नियुक्तियां यथाशीघ्र की जाएं।

न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे

18. मुझे अपने विद्वान् भ्राता न्यायमूर्ति विक्रमजीत सेन के विद्वतापूर्ण निर्णय को पढ़ने का फायदा हुआ और मैं उनकी राय से ससम्मान सहमत हूँ। तथापि, मैं सहमति में कुछ और शब्द जोड़ना चाहता हूँ।

19. मैं अपने विद्वान् भ्राता से पूर्णतः सहमत हूँ कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में “दंड प्रक्रिया संहिता”) की धारा 24 की व्याप्ति और निर्वचन, लोक अभियोजक/जिला सरकारी काउंसिल की नियुक्ति, पुनर्नवीकरण, अवधि के विस्तार से संबंधित मुद्दे, उनकी प्रकृति और अंततः (उत्तर प्रदेश सरकार) लीगल रिमेम्ब्रेंसर मैनुअल और विशेषकर ऐसी नियुक्ति/पुनर्नवीकरण/अवधि के विस्तार आदि से संबंधित उपबंध जैसे मुद्दे जो इन अपीलों के विषयवस्तु हैं, अब अनिर्णीत विषय नहीं रह गए हैं और **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जोहरी मल¹** वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा प्रमाणिकतः विनिश्चित किए जा चुके हैं। इस न्यायालय द्वारा इस विनिश्चय का लगातार अनुसरण किया जा रहा जब कभी भी विचारार्थ ये मुद्दे सामने आए (**उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम राकेश कुमार केसरी और एक अन्य²**, सेन्टर फार पब्लिक इंटरेस्ट लिटीगेशन और

¹ (2004) 4 एस. सी. सी. 714.

² (2011) 5 एस. सी. सी. 341.

अन्य बनाम भारत संघ और अन्य¹, दीपक अग्रवाल बनाम केशव कौशिक और अन्य² और उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सत्यव्रत सिंह³ वाले मामले देखें) ।

20. इन परिस्थितियों में और जोहरी मल (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए प्रामाणिक निर्णय को ध्यान में रखते हुए, उन्हीं मुद्दों पर फिर से विचार करने का कोई अवसर उद्भूत नहीं होता जब इन कार्यवाहियों में यद्यपि कुछ अन्य व्यक्तियों के अनुरोध पर ये मुद्दे पूर्व अवसरों पर इस न्यायालय के पास पहुंचे थे जैसाकि मेरे विद्वान् भ्राता द्वारा मुख्य निर्णय में उल्लिखित है जिसका भी विनिश्चय इस न्यायालय द्वारा किया गया ।

21. वस्तुतः “पूर्व निर्णय” और “निर्णीतानुसरण” के सिद्धांत हमें इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि का अनुसरण करने का आदेश देते हैं और तब और अधिक जब इसका निर्णय तीन न्यायाधीशों से मिलकर बने न्यायपीठ द्वारा किया गया हो ।

22. मेरा यह भी मत है कि उच्च न्यायालय को यद्यपि मुद्दों पर विचार करना चाहिए किंतु जैसा मेरे विद्वान् भ्राता द्वारा पैरा 15 में “गलत ढंग से” उचित ही रखा गया है जिससे हमारे द्वारा हस्तक्षेप करने की आवश्यकता पड़ी ।

23. अतः मेरी विचारित राय में जोहरी मल (उपरोक्त) (पैरा 40 से 44) वाले मामले में विशेषतः व्यक्त उचित मताभिव्यक्तियों और मुख्य निर्णय में यहां इसके पूर्व जो अभिनिर्धारित किया गया है को ध्यान में रखते हुए, अब नए सिरे से नियुक्तियों की जाएं ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

पा.

¹ (2012) 3 एस. सी. सी. 117.

² (2013) 5 एस. सी. सी. 277.

³ (2014) 14 एस. सी. सी. 548.

[2016] 2 उम. नि. प. 65

आदि शैव शिवचरियार्गल एन. संगम और अन्य

बनाम

तमिलनाडु सरकार और एक अन्य

16 दिसंबर, 2015

न्यायमूर्ति रंजन गोगोई और न्यायमूर्ति एन. वी. रमण

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 25 और 26 – धर्म का अधिकार – मंदिरों में अर्चक की नियुक्ति – मंदिरों में अर्चक की नियुक्ति अर्चक की सम्यक् पहचान तथा आगमों के अनुसार और संवैधानिक अधिदेशों तथा शेषाम्मल वाले मामले में दिए गए निदेशों के अनुसार की जानी चाहिए ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 25 और 26 [सपठित तमिलनाडु हिंदू धार्मिक और पूर्त विन्यास अधिनियम, 1959 के अधीन तारीख 23 मई, 2006 का सरकारी आदेश सं. 118] – इस आशय का आदेश कि जो हिंदू है और अपेक्षित अर्हता और प्रशिक्षण रखता है, की नियुक्ति हिंदू मंदिरों में अर्चक के रूप में की जा सकती है, विधिसम्मत और युक्तिसंगत नहीं है तथा संवैधानिक अधिदेशों और आगमों के प्रतिकूल है ।

संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन ये रिट याचिकाएं मद्रुरै के श्री मीनाक्षी अम्मान मंदिर के अर्चकों के संगम और व्यक्तिगत अर्चकों द्वारा संस्थित की गई हैं । रिट याचिकाएं तारीख 23 मई, 2006 के सरकारी आदेश सं. 118 और अध्यादेश सं. 5/2006 (उस समय 2006 का संशोधनकारी अधिनियम प्रभाव में नहीं आया था) को चुनौती देते हुए फाइल की गई, क्योंकि अध्यादेश द्वारा किए गए धारा 55(2) का संशोधन 2006 के संशोधनकारी अधिनियम 15 द्वारा जारी नहीं रखा गया था अतः इन रिट याचिकाओं में विचारार्थ एकमात्र मुद्दे के रूप में 23 मई, 2006 के सरकारी आदेश की वैधता और विधिमान्यता को छोड़कर रिट याचिकाओं में किए गए चुनौती (अध्यादेश के विरुद्ध) का उक्त भाग निरर्थक हो गया । उच्चतम न्यायालय द्वारा रिट याचिकाओं का निपटान करते हुए,

अभिनिर्धारित – धर्म में वह विशिष्ट धार्मिक आस्था सम्मिलित होती है जिस पर लोगों का एक समूह विश्वास करता है । धर्म के रूप में हिंदू धर्म में किसी एक एकल धार्मिक आस्था के चयन या समापन के अधिदेश के बिना सभी तरह की धार्मिक आस्था सम्मिलित है । यह ऐसा धर्म है जिसका कोई

एक संस्थापक नहीं है; कोई एक धार्मिक ग्रंथ नहीं है और कोई एक उपदेश नहीं है। इसे सनातन धर्म अर्थात् शाश्वत आस्था के रूप में वर्णित किया गया है क्योंकि यह शताब्दियों की सामूहिक प्रज्ञा और प्रेरणा है जो हिंदू धर्म सिखाना या प्रचार करना चाहता है। अवधारणा को ध्यान में रखते हुए अब हम आगे बढ़ते हैं। उन मुद्दों को उजागर करने के पूर्व जिन पर न्यायालय को इस मामले में विचार करना है, संविधान के भाग 3 के संगत संवैधानिक उपबंधों पर ध्यान देना आवश्यक है। स्पष्ट और असंदिग्ध निबंधनों में अनुच्छेद 13 में यह अधिकथित है कि संविधान पूर्व विधियों सहित ऐसी सभी विधियां शून्य हैं जो भाग 3 द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकारों से असंगत हैं या अल्पीकरण में हैं। उप अनुच्छेद (3) विधियों की परिधि में विधि का बल रखने वाले सभी नियमों, विनियमों, अधिसूचना, प्रथा और रूढ़ि को समाहित करता है। यद्यपि भाग 3 के कई उपबंधों पर पुनः बल देने की कतई आवश्यकता नहीं है फिर भी मामले के संदर्भ में संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के उपबंधों पर विनिर्दिष्ट ध्यान देने की आवश्यकता है। जहां अनुच्छेद 25 अंतःकरण और धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने के अधिकार की स्वतंत्रता प्रदान करता है जिस धर्म का कोई व्यक्ति मूल अधिकार के रूप में समर्थन करता है, वहीं ऐसे अधिकार के प्रयोग को लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा भाग 3 के अन्य उपबंधों के भी अधीन बनाता है। अनुच्छेद 25(2)(ख) यह स्पष्ट करता है कि अनुच्छेद 25 के उपबंधों का मुख्य भाग राज्य को ऐसी कोई विधि बनाने से निवारित करने या किसी विद्यमान विधि के प्रवर्तन के मार्ग में नहीं आएगा जो सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए या सार्वजनिक प्रकार की हिंदुओं की सभी धार्मिक संस्थाओं के सभी वर्गों या अनुभागों के लिए खोलने का उपबंध करती है। इसी प्रकार अनुच्छेद 26 सभी धार्मिक संप्रदाय को अपने धर्म विषयक कार्यों का प्रबंध करने का अधिकार प्रदत्त करते हुए यह स्पष्ट करता है कि किसी धार्मिक संप्रदाय के धर्म विषयक कार्य के प्रबंध का अधिकार केवल धर्म के विषयों तक निर्बंधित है। अतः, उपरोक्त उल्लेखानुसार, भाग 3 के उपबंधों से यह पर्याप्त स्पष्ट होता है कि धन की स्वतंत्रता का और किसी संप्रदाय के धार्मिक कार्यकलाप के प्रबंध करने का अधिकार निःसंदेह एक मूल अधिकार है, फिर भी यह लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन है और यह और कि संविधान के भाग 3 में ऐसे अधिकारों का आमेलन राज्य को अनुच्छेद 25 और 26 दोनों के मुख्य भाग द्वारा यथा अधिदिष्ट व्यापक लोक हित में समुचित रीति में कार्रवाई करने से निवारित नहीं करेगा। इसके अलावा धर्म की स्वतंत्रता

भाग 3 के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए निःसंदेह, संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 का अर्थान्वयन भाग 3 के अन्य उपबंधों के साथ सामंजस्यपूर्ण रूप से किया जाना चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन धर्म की स्वतंत्रता केवल आस्था तक सीमित नहीं है बल्कि धार्मिक आचरण तक विस्तारित है जिसे बार-बार दोहराने की आवश्यकता नहीं है। आस्था और आचरण का अधिकार लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा संविधान के भाग 3 के उपबंधों के अधीन रहते हुए अनुच्छेद 25 द्वारा प्रत्याभूत है। उप अनुच्छेद (2) एक अपवाद है और उप अनुच्छेद (1) किसी विद्यमान विधि या ऐसी विधि जो अन्य बातों के साथ-साथ सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए या सार्वजनिक प्रकार की हिंदुओं की धार्मिक संस्थाओं को हिंदुओं के सभी वर्गों और अनुभागों के लिए खोलने का उपबंध करने के लिए अधिनियमित की जाए, अधिकार को गारंटीकृत बनाती है। दूसरी ओर अनुच्छेद 26(ख) जहां तक धर्म के विषय का संबंध है पुनः लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए अपने धर्म विषयक कार्यों का प्रबंध करने के लिए प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या उसके अनुभाग को गारंटी प्रदान करता है और ऐसी विधि जो अनुच्छेद 25(2)(ख) के अधीन बनाई जाए, के अधीन रहते हुए इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित की जाए। अतः अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन गारंटीकृत अधिकार सीमित हैं और संवैधानिकतः अनुज्ञेय पैरामीटर के भीतर उपभोग किए जाने योग्य हैं। प्रायः ऐसे अवसर उद्भूत होते हैं जब यह अवधारित करना आवश्यक हो जाता है कि क्या दावाकृत और प्राख्यापित आस्था या आचरण किसी समूह या संप्रदाय के धार्मिक आचरण का मूल भाग है जिसके लिए ऐसे दावे के न्यायनिर्णयन की अपेक्षा होती है। ऐसे दावे का विनिश्चय करना संविधान न्यायालय का कर्तव्य हो जाता है। यह न तो आसान और न ही वांछनीय कार्य है जिसे न्यायालय से करने की अपेक्षा की जाती है। ऐसे कार्य का पालन उसको प्रदत्त किसी एक्लीसियाई अधिकारिता के आधार पर न्यायालय में व्यादिष्ट नहीं है बल्कि यह संवैधानिकतः मध्यस्थ के रूप में इसकी भूमिका के रूप में है। कोई आशंका कि स्वयं आवश्यक धार्मिक आचरण का न्यायालय द्वारा अवधारण अनुच्छेद 25 और 26 द्वारा गारंटीकृत अधिकारों को अस्वीकार करता है, का खंडन संवैधानिक आवश्यकता की कसौटी पर करना होगा। ऐसे अवधारण के बिना कोई प्रभावी न्यायनिर्णयन नहीं हो सकता कि क्या दावाकृत अधिकार लोक व्यवस्था सदाचार और स्वास्थ्य के अनुरूप है और सामाजिक कल्याण और सुधार की अविवादित और अप्रश्नगत धारणा से

संगत है । यह अभिनिर्धारित करते हुए हमेशा उचित संतुलन बनाया जा सकता है कि आवश्यक धार्मिक आचरण का अवधारण करने के लिए न्यायालयिक शक्ति का प्रयोग यद्यपि अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन हमेशा गारंटीकृत अधिकारों का संरक्षण करने के लिए अंतर्निहित शक्ति के रूप में उपलब्ध है किंतु उसका उपयोग हमेशा निर्बंधित और अवरुद्ध रूप में किया जाना चाहिए । पूर्ववर्ती विचार-विमर्श उद्भूत मुद्दे की महत्ता और उसका हिंदू समाज पर प्रभाव के सहज परिणाम उपदर्शित करती है । अतः, यह यदि स्वविफलकारी नहीं फिर भी पूर्व न्याय के सिद्धांत को लागू कर या गुणागुण के अधार पर न्यायनिर्णयन का वर्जन कर या आक्षेपित सरकारी आदेश को कार्यपालिक आदेश के रूप में जिसे विधायी अनुमोदन नहीं है, को अभिखंडित कर समाधान के लिए पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण अपनाना गलत होगा । इस तथ्य द्वारा स्पष्ट किया गया है कि यद्यपि जो सरकारी आदेश तारीख 23 मई, 2006 द्वारा लाया गया है, अध्यादेश द्वारा कानून में सम्मिलित किए जाने की ईप्सा की गई थी जिसे अंततः विधायिका के समक्ष पेश संशोधनकारी विधयेक में विनिर्दिष्टतः पूर्वोक्त समामेलन का लोप किया गया था । तथापि, पूर्वोक्त तथ्य के महत्व की अनदेखी नहीं की जा सकती । इस पर बल देने की ईप्सा की गई है कि स्वयं द्वारा यह सरकारी आदेश की विधिमान्यता का अवधारक तत्व नहीं हो सकता है जिसका परीक्षण किसी विनिर्दिष्ट विधि द्वारा समाहित न किए गए क्षेत्र में कार्यपालक शक्ति के प्रयोग के दृष्टांत के रूप में इसे मानते हुए कतिपय अन्य आधारों पर करना होगा । संविधान के अनुच्छेद 17 के आधार पर उठाया गया अस्पृश्यता का मुद्दा पेंडुलम के बिल्कुल विपरीत है । संविधान का अनुच्छेद 17 अंधविश्वास और ऐसी धारणा पर आधारित जाति आधारित आचरण है जिसका कोई तर्क या आधार नहीं है । गोपाला मूपनार वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा शतक पूर्व बनाई गई आगमों की व्याख्या कि गर्भगृह से अपवर्जन और पूजा करने का कर्तव्य केवल ब्राह्मणों तक है, महत्वपूर्ण है । गोपाला मूपनार वाले मामले में ब्राह्मणों को भी अपवर्जन के संबंध में चिरभोग को भी श्री पार्थसारथी भट्टाचार्य की राय में दोहराया गया है जैसाकि यह शेषाम्मल वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा उल्लिखित है । ऐसा अपवर्जन जाति, जन्म या वंशावली के आधार पर नहीं है । अतः अनुच्छेद 17 और सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 के उपबंध वर्तमान मामले के लिए अधिक महत्वपूर्ण नहीं है । इसी प्रकार राज्य का अपने शपथपत्र में शिव मंदिरों में अर्चक के रूप में शैवायत और वैष्णव मंदिरों में वैष्णव को नियुक्त करने का 'प्रस्ताव' किसी ऐसे

संप्रदाय के समझ के संदर्भ में अकृत्रिम है जिसे शैवायत और वैष्णव दोनों अनुयायियों की दशा में उप-समूह की पहचान करना बहुत दुष्कर है । तथापि, इस बात की उपेक्षा नहीं की जा सकती जो उक्त प्रस्ताव में निहित 'स्वीकृति' है जिसका परिणाम आक्षेपित सरकारी आदेश में कुछ नमनीयता है जिसे स्वयं राज्य ने स्वीकार किया है । शेषाम्मल वाला मामला ऐसे किसी प्रतिपादना के लिए नजीर नहीं है कि क्या उस प्रश्न के बारे में मंदिरों के विशिष्ट या समूह को लागू आगम या आगमों के समूह में अधिकथित है जिस पर न्यायालय विचार कर रहा है कि क्या उपासकों या आस्तिकों के किसी विशिष्ट संप्रदाय के पास पूजा करने के लिए अर्चक की नियुक्ति करने का अनन्य अधिकार है । यही नहीं, क्या निर्णय में किसी विशिष्ट वर्ग या जाति पर ध्यान दिया है जिसमें से मंदिर के अर्चकों की नियुक्ति की जाए जैसा आगमों द्वारा विहित है । कुल मिलाकर इसका यह कहना है कि कुछ आगम किसी विशिष्ट और भिन्न पंथ/समूह/संप्रदाय के अर्चकों द्वारा पूजा करने की आवश्यकता की मूलभूत धार्मिक आस्था शामिल कर सकते हैं जिसके न हो सकने पर मूर्ति दूषित हो जाएगी जिसे शोधन समारोह द्वारा शुद्ध करने की अपेक्षा होगी । विशुद्धतः, यदि प्रश्नगत आगम में जाति या वर्ग के आधार पर नागरिकों के किसी समूह से अर्चक के रूप में नियुक्त किया जाना विहित नहीं है तो संविधान के अनुच्छेद 17 या भाग 3 के किसी अन्य उपबंध की पवित्रता या सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 का अतिक्रमण नहीं होगा । शेषाम्मल वाले मामले में जो कहा गया है वह यह है कि यदि अर्चकों की नियुक्ति के बारे में आगमों द्वारा कोई चिरभोग किया गया है तो तमिलनाडु अधिनियम की धारा 28 न्यासी बोर्ड मंदिर के कार्यों का संचालन ऐसी रूढ़ि या प्रथा के अनुसार करने का अधिदेश देती है । संवैधानिक संगतता की अपेक्षा अंतर्निहित है और यदि प्रथा या रूढ़ि अनुच्छेद 25 और 26 द्वारा दिए गए या परिकल्पित संरक्षणात्मक आवरण के बाहर है तो निश्चित रूप से विधि अपना अनुक्रम अपनाएगी । स्वभावतः, संवैधानिक विधिसम्मतता सभी धार्मिक आस्था या आचरणों का अधिक्रमण करती है । दुरुहता संवैधानिक मूल्यों को समझने या पुनः उल्लिखित करने में नहीं है । तनिक भी संदेह नहीं है कि वे क्या हैं ? किंतु यह अवधारित करने के लिए कि क्या उसके अग्रसरण में राज्य कार्रवाई का दावा अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन संवैधानिक प्रत्याभूतियों पर अभिभावी है, में प्रायः यह अंतर्वलित हो सकता है कि क्या आवश्यक धार्मिक आस्था और आचरण की पहचान करने के संतुलित और दुरुह कार्य के रूप में जैसाकि यह पहले निर्दिष्ट है, जिसके बिना स्वयं धर्म अस्तित्व में

नहीं रह सकता । यह इस कार्य के अनुपालन में है कि इस न्यायालय की किसी अनन्य कलीसियाई अधिकारिता का अभाव, यदि कोई अन्य खामी और अपर्याप्तता है जिसे महसूस किया जा सकता है । तथापि, आगमों में अंतर्विष्ट चिरभोग के बारे में कुछ हद तक अनिश्चितता है । उपरोक्त के साथ-साथ विषय पर सुस्थिर कार्य और स्वीकृत तथा अविवादित विद्वानों की संख्या की बिल्कुल अनुपलब्धता है । ऐसी स्थिति में उस मताभिव्यक्ति की याद आती है जो शिरूर मठ वाले मामले में न्यायमूर्ति मुखर्जी द्वारा चेतावनी टिप्पण दिया गया है कि यह विनिश्चित करने के लिए संप्रदाय की संपूर्ण स्वायत्तता नहीं है कि कौन सी बात आवश्यक धार्मिक आचरण गठित करता है, यह विचार जो यद्यपि 'अल्पमत' के रूप में इस न्यायालय द्वारा बाद में उजागर किया गया है । किंतु शीघ्र ही न्यायालय को यह स्पष्ट करना चाहिए कि न्यायालय का ऐसे किसी मत को विवाद के न्यायिक अवधारण के किसी वर्जन के संकेत के रूप में नहीं समझा जा सकता जब कभी यह मुद्दा उद्भूत हो । कोई प्रतिकूल मत ऐसे दावों और रूढ़ियों के भारी पैमाने पर विरोध पैदा करेगा कि कौन-कौन सी बात धार्मिक आचरण का अभिन्न भाग है जिसके समाधान के लिए कोई स्वीकार्य या पर्याप्त आधार नहीं है । इसके अलावा शिरूर मठ वाले मामले में अनुध्यात "संपूर्ण स्वायत्तता" और "बाहरी प्राधिकारी" के अर्थ को उस संदर्भ द्वंद्व ग्रस्त नहीं ठहराना चाहिए जिसमें विचार को पहले ही उद्धृत, अभिलिखित किया गया है (पृष्ठ 1028) । यह विनिश्चित करने के लिए कि आवश्यक धार्मिक आचरण क्या है, सभी "बाहरी प्राधिकारी" के अपवर्जन को स्वयं अनुच्छेद 25 और 26 द्वारा यथा परिकल्पित धार्मिक स्वतंत्रता से संबंधित मामलों में राज्य की सीमित भूमिका के संदर्भ में देखा जाना चाहिए न कि न्यायालयों को जो संवैधानिक अधिकारों और सिद्धांतों के निर्णायक हैं । तब अंतिम परिणाम क्या है ? उत्तर स्पष्ट समाधान का विरोध करता है और न्यायालय का यह विचारित मत है कि आक्षेपित सरकारी आदेश की विधिमान्यता या अन्यथा नियुक्ति के प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर होगा । यथावश्यक, किसी एकल या मंदिर समूह के लिए एक विशिष्ट या आगमों के समूह द्वारा विहित किया गया पाया जाना विवाद्यक का निर्णायक तत्व होगा । इस संबंध में इस बात पर बल देना आवश्यक होगा जो पहले ही संविधान के अनुच्छेद 16(5) के प्रयोजन और आशय के संबंध में कहा गया है अर्थात् अर्चक के रूप में नियुक्ति के लिए किसी विशिष्ट वर्ग या संप्रदाय का कुछ अपवर्जन या समामेलन अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं करेगा जहां तक ऐसा समामेलन/अपवर्जन जाति, जन्म या किसी अन्य संवैधानिक अस्वीकार्य

पैरामीटर के मापमान पर आधारित नहीं है। जहां तक किसी विशिष्ट आगम या आगमों के अधीन चिरभोग यथा उपरोक्त विमर्शित किसी संवैधानिक अधिदेश के प्रतिकूल नहीं है, इस आशय के खुल्लमखुल्ला आदेश द्वारा तारीख 23 मई, 2006 का आक्षेपित सरकारी आदेश कि 'ऐसा कोई व्यक्ति जो हिंदू है और अपेक्षित अर्हता और प्रशिक्षण रखता है की नियुक्ति हिंदू मंदिरों में अर्चक के रूप में की जा सकती है', शेषाम्मल वाले मामले में अभिकथित उक्ति के विरुद्ध होना संभाव्य है। दावाकृत रूढ़ि और प्रथा का अवधारण अनिवार्य है और उस आलोक में यह है कि तारीख 23 मई, 2006 के आक्षेपित सरकारी आदेश की विधिमान्यता का विनिश्चय अर्चकों के नियुक्ति के प्रत्येक मामले में किया जाएगा जब कभी यह मुद्दा उठता है। भविष्य में विनिर्दिष्ट न्यायिक अधिनिर्णय की आवश्यकता अनिवार्य और अवांछनीय है; वर्तमान मामले की रूपरेखा और उद्भूत मुद्दों की यहां चर्चा की गई है। (पैरा 1, 2, 3, 36, 39, 40, 41, 42 और 43)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[1972]	(1972) 2 एस. सी. सी. 11 :
शेषाम्मल और अन्य, आदि, आदि बनाम
तमिलनाडु राज्य ;	4
[1915]	ए. आई. आर. 1915 मद्रास 363 :
गोपाला मूपनार और अन्य बनाम सुब्रह्मणयम
अय्यर और अन्य ।	30

निर्दिष्ट निर्णय

[2004]	(2004) 12 एस. सी. सी. 770 :
पुलिस आयुक्त और अन्य बनाम आचार्य
जगदीश्वरानंद अवधूत और एक अन्य ;	35
[2002]	(2002) 8 एस. सी. सी. 106 :
एन. आदित्यन बनाम ट्रावनकोर देवास्वम
बोर्ड और अन्य ;	13
[1983]	(1983) 1 एस. सी. सी. 147 :
संजीव कोक मैनुफैक्चरिंग बनाम मैसर्स
भारत कोकिंग कोल लिमिटेड और एक अन्य ;	12

- [1966] [1966] 3 एस. सी. आर. 242 :
शास्त्री यज्ञपुरुसादजी और अन्य बनाम
मूलदास भद्रदास वैश्य और एक अन्य ; 27
- [1961] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 1402 :
दरगाह कमेटी, अजमेर और एक अन्य बनाम
सैय्यद हुसैन अली और अन्य ; 34
- [1958] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 255 :
श्री वेंकटारमण देवारु और अन्य बनाम मैसूर
राज्य और अन्य ; 33
- [1954] [1954] एस. सी. आर. 1005 :
कमिश्नर, हिंदू रिलिजियस इनडाउमेंटस, मद्रास
बनाम श्री लक्ष्मीन्द्र तीरथ स्वामीयर आफ श्री
शिरूर मठ ;
- [1943] 88 एल. ईडी. 1148 = 322 यू. एस. 78 (1943) :
यूनाइटेड स्टेट बनाम बालार्ड ; 35
- [1939] 84 एल. ईडी. 1213 = 310 यू. एस. 296
(1939) :
जेसी कैंटवेल बनाम स्टेट आफ कनेक्टिकट । 35

आरंभिक अपीली अधिकारिता : 2014 की रिट याचिका (सिविल)
सं. 354 के साथ 2006 की रिट
याचिका (सिविल) सं. 355, 383
और 384.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका ।

पक्षकारों की ओर से

सर्वश्री सुब्रमणियम प्रसाद, अपर
महाधिवक्ता, के. पारासरन, पी. पी.
राव, कोलिन कांसेल्व, ज्येष्ठ
अधिवक्ता, जी. उमापति, विनीत
पांडेय, (सुश्री) आर. मेखला, राकेश
के. शर्मा, ए. मुकुन्द राव, अर्जुन
सिंह, गैचागंपो गैंगमेई, श्रीधर
पोटाराजू, एम. योगेश कन्ना, श्री

विबनेश, स्वरनेन्धू चटर्जी, सावरिश सुब्रमणियम, प्रभूरमा सुब्रमणियम, बी. सुब्रह्मणिया प्रसाद, नरेश कुमार, पी. आर. कोविलन पोंगकुन्तरान, (सुश्री) महालक्ष्मी पवानी, एस. राजू, (सुश्री) गीता गोविलन, वी. जी. प्रगाशम, (सुश्री) एस. रमामणि, बी. बालाजी, राकेश शर्मा और (सुश्री) आर. शासे

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति रंजन गोगोई ने दिया ।

न्या. गोगोई – धर्म में वह विशिष्ट धार्मिक आस्था सम्मिलित होती है जिस पर लोगों का एक समूह विश्वास करता है । धर्म के रूप में हिंदू धर्म में किसी एक एकल धार्मिक आस्था के चयन या समापन के अधिदेश के बिना सभी तरह की धार्मिक आस्था सम्मिलित है । यह ऐसा धर्म है जिसका कोई एक संस्थापक नहीं है ; कोई एक धार्मिक ग्रंथ नहीं है और कोई एक उपदेश नहीं है । इसे सनातन धर्म अर्थात् शाश्वत आस्था के रूप में वर्णित किया गया है क्योंकि यह शताब्दियों की सामूहिक प्रज्ञा और प्रेरणा है जो हिंदू धर्म सिखाना या प्रचार करना चाहता है । उपरोक्त अवधारणा को ध्यान में रखते हुए अब हम आगे बढ़ते हैं ।

2. उन मुद्दों को उजागर करने के पूर्व जिन पर न्यायालय को इस मामले में विचार करना है, संविधान के भाग 3 के संगत संवैधानिक उपबंधों पर ध्यान देना आवश्यक है । स्पष्ट और असंदिग्ध निबंधनों में अनुच्छेद 13 में यह अधिकथित है कि संविधान पूर्व विधियों सहित ऐसी सभी विधियां शून्य हैं जो भाग 3 द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकारों से असंगत हैं या अल्पीकरण में हैं । उप अनुच्छेद (3) विधियों की परिधि में विधि का बल रखने वाले सभी नियमों, विनियमों, अधिसूचना, प्रथा और रूढ़ि को समाहित करता है । यद्यपि भाग 3 के कई उपबंधों पर पुनः बल देने की कतई आवश्यकता नहीं है फिर भी वर्तमान मामले के संदर्भ में संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के उपबंधों पर विनिर्दिष्ट ध्यान देने की आवश्यकता है । जहां अनुच्छेद 25 अंतःकरण और धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने के अधिकार की स्वतंत्रता प्रदान करता है जिस धर्म का कोई व्यक्ति मूल अधिकार के रूप में समर्थन करता है, वहीं ऐसे अधिकार के प्रयोग को लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा भाग 3 के अन्य

उपबंधों के भी अधीन बनाता है। अनुच्छेद 25(2)(ख) यह स्पष्ट करता है कि अनुच्छेद 25 के उपबंधों का मुख्य भाग राज्य को ऐसी कोई विधि बनाने से निवारित करने या किसी विद्यमान विधि के प्रवर्तन के मार्ग में नहीं आएगा जो सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए या सार्वजनिक प्रकार की हिंदुओं की सभी धार्मिक संस्थाओं के सभी वर्गों या अनुभागों के लिए खोलने का उपबंध करती है। इसी प्रकार अनुच्छेद 26 सभी धार्मिक संप्रदाय को अपने धर्म विषयक कार्यों का प्रबंध करने का अधिकार प्रदत्त करते हुए यह स्पष्ट करता है कि किसी धार्मिक संप्रदाय के धर्म विषयक कार्य के प्रबंध का अधिकार केवल धर्म के विषयों तक निर्बंधित है।

3. अतः, उपरोक्त उल्लेखानुसार, भाग 3 के उपबंधों से यह पर्याप्त स्पष्ट होता है कि धन की स्वतंत्रता का और किसी संप्रदाय के धार्मिक कार्यकलाप के प्रबंध करने का अधिकार निःसंदेह एक मूल अधिकार है, फिर भी यह लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन है और यह और कि संविधान के भाग 3 में ऐसे अधिकारों का आमेलन राज्य को अनुच्छेद 25 और 26 दोनों के मुख्य भाग द्वारा यथा अधिदिष्ट व्यापक लोक हित में समुचित रीति में कार्रवाई करने से निवारित नहीं करेगा। इसके अलावा धर्म की स्वतंत्रता भाग 3 के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए निःसंदेह, संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 का अर्थान्वयन भाग 3 के अन्य उपबंधों के साथ सामंजस्यपूर्ण रूप से किया जाना चाहिए।

4. अब आवश्यक तथ्यों पर ध्यान दिया जाता है। तमिलनाडु राज्य में हिंदू धर्म और पूर्त संस्थाओं के प्रशासन और शासन से संबंधित विधि को संशोधित करने और समेकित करने के लिए, राज्य विधान-मंडल ने तमिलनाडु हिंदू धर्म और पूर्त विन्यास अधिनियम, 1959 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'तमिलनाडु अधिनियम' कहा गया है) अधिनियमित किया। इस प्रक्रम पर तमिलनाडु अधिनियम की धारा 55 के पारित किए जाने का निर्देश किया जाता है जिसमें यह उपबंध है कि यदि जहां धार्मिक संस्था का पदधारक या सेवक का पद विरासत उत्तराधिकार के सिद्धांत पर भरे जाने की अपेक्षा है वहां उत्तराधिकार के क्रम में अगला व्यक्ति सफल होने का हकदार है। उपरोक्त नियम के कुछ अपवाद थे अर्थात् जहां क्रम में अगला व्यक्ति अप्राप्तवय है या कुछ अक्षमता से ग्रस्त है। पूर्वोक्त उपबंध (धारा 55) को 1970 के संशोधन अधिनियम द्वारा अन्य संबंधित उपबंधों के साथ-साथ संशोधित किया गया जिसे 8 जनवरी, 1971 से प्रवृत्त किया गया। पूर्वोक्त संशोधन द्वारा उत्तराधिकार के क्रम में अगले होने के सिद्धांत

को समाप्त कर दिया गया । संशोधन की चुनौती इस न्यायालय के समक्ष दी गई जिस पर न्यायालय के संविधान न्यायपीठ द्वारा विचार किया गया । **शेषाम्मल और अन्य, आदि, आदि बनाम तमिलनाडु राज्य**¹ वाले मामले में संविधान न्यायपीठ ने अपने निर्णय में संशोधन की विधिमान्यता को कायम रखते हुए अगले प्रश्न अर्थात्, यद्यपि क्रम में अगले होने के सिद्धांत का विधिमान्य समापन किया गया था, पर विचार किया कि क्या मंदिर के पदधारकों या सेवकों की नियुक्ति आगमों अर्थात् मंदिर के निर्माण ; मूर्ति की संस्थापन और देवताओं की पूजा के संचालन जैसे विषयक संधियों द्वारा यथा अधिदिष्ट किसी विशिष्ट समुदाय/समूह/पंथ से किए जाने की अपेक्षा है । संविधान न्यायपीठ ने विषय पर व्यापक करने के पश्चात् पूर्वोक्त प्रश्न का सकारात्मक उत्तर दिया जिसका उल्लेख हम बाद में करेंगे ।

5. तमिलनाडु सरकार, तमिल विकास, सांस्कृतिक और विन्यास विभाग द्वारा तारीख 23 मई, 2006 को सरकारी आदेश सं. 118 को इस आशय का आदेश जारी करने तक **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ निर्णय के संबंध में कोई विवाद पैदा नहीं हुआ था कि, “ऐसा कोई व्यक्ति जो हिंदू है और अपेक्षित अर्हता और प्रशिक्षण प्राप्त है को हिंदू मंदिरों में अर्चक के रूप में नियुक्त की जा सकती है ।” पूर्वोक्त सरकारी आदेश के पश्चात् तमिलनाडु अधिनियम की धारा 55 की उपधारा (2) का और संशोधन करते हुए तारीख 14 जुलाई, 2006 एक अध्यादेश (सं. 5/2006) जारी किया गया । उपरोक्त निर्दिष्ट 1971 संशोधन और 2006 के अध्यादेश के आधार पर, अधिनियम का उक्त उपबंध अर्थात् धारा 55(2) इस प्रकार है :-

“(2) कोई व्यक्ति मात्र इस आधार पर कि वह अंतिम पदधारक के उत्तराधिकार के क्रम में अगला है, उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी रिक्ति पर नियुक्ति का हकदार नहीं होगा ।” [धारा 55(2) के संशोधन द्वारा परिवर्तन किया गया]]

“या किसी रूढ़ि या प्रथा के आधार पर” । [अध्यादेश 5/2006 द्वारा परिवर्तन किया गया]]

6. पैरा 4 में अध्यादेश के स्पष्टीकारक कथन में निम्नलिखित शब्दों में धारा 55(2) के और संशोधन करने के पीछे का प्रयोजन इस प्रकार उपदर्शित है :-

¹ (1972) 2 एस. सी. सी. 11.

“मंदिरों के अर्चकों की नियुक्ति जाति और पंथ के किसी विभेद के बिना की जानी चाहिए । रूढ़ि और प्रथा इसमें बाधक नहीं हो सकते । यह माना जाता है कि स्वयं अधिनियम में स्थिति स्पष्ट की गई है और तदनुसार उक्त अधिनियम की धारा 55 में उपयुक्त संशोधन करने का विनिश्चय किया गया है ।”

7. अध्यादेश के स्थान पर 2006 का तमिलनाडु अधिनियम सं. 15 रखा गया जिसे 29 अगस्त, 2006 को राज्यपाल की सहमति प्राप्त हुई थी । तथापि, अधिनियम में धारा 55 का संशोधन अंतर्विष्ट नहीं था जो अध्यादेश द्वारा किया गया था । दूसरे शब्दों में अध्यादेश द्वारा लाए गए उक्त संशोधन को 2006 के संशोधनकारी अधिनियम सं. 15 से छोड़ दिया गया था ।

8. संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन ये रिट याचिकाएं मद्रुरै के श्री मीनाक्षी अम्मान मंदिर के अर्चकों के संगम और व्यक्तिगत अर्चकों द्वारा संस्थित की गई हैं । रिट याचिकाएं तारीख 23 मई, 2006 के सरकारी आदेश सं. 118 और अध्यादेश सं. 5/2006 (उस समय 2006 का संशोधनकारी अधिनियम प्रभाव में नहीं आया था) को चुनौती देते हुए फाइल की गई थी । क्योंकि अध्यादेश द्वारा किए गए धारा 55(2) का संशोधन 2006 के संशोधनकारी अधिनियम सं. 15 द्वारा जारी नहीं रखा गया था अतः इन रिट याचिकाओं में विचारार्थ एकमात्र मुद्दे के रूप में 23 मई, 2006 के सरकारी आदेश की वैधता और विधिमान्यता को छोड़कर रिट याचिकाओं में किए गए चुनौती (अध्यादेश के विरुद्ध) का उक्त भाग निरर्थक हो गया ।

9. प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल श्री पी. पी. राव और श्री कालिन गौनसेल्वस द्वारा रिट याचिकाओं की संघार्यता के संदर्भ में प्रारंभिक आक्षेप उठाए गए । यह तर्क किया गया कि इन रिट याचिकाओं को लोक हित वाद के रूप में फाइल नहीं किया गया है और तारीख 23 मई, 2006 के आक्षेपित सरकारी आदेश के क्रियान्वयन में किसी विनिर्दिष्ट आदेश के अभाव में रिट याचिकाएं अपरिपक्व हैं । आगे यह दलील दी गई कि यदि रिट याचिकाओं को लोक हित वाद के रूप में माना जाए तो यह सार्वजनिक मंदिरों में लोक पद अर्थात् अर्चक की नियुक्ति के बारे में प्रश्न पैदा करता है अतः रिट याचिकाएं लोक हित वाद के रूप में संघार्य नहीं होगी । आगे यह आग्रह किया गया कि यथास्थिति जब कभी सरकारी आदेश को अर्चक या अर्चकों की वास्तविक नियुक्ति

द्वारा प्रभावी बनाया जाता है तो याची मुद्दा उठाने और यह सिद्ध करने के लिए स्वतंत्र होंगे कि प्रश्नगत मंदिर को शासित करने की रूढ़ि या प्रथा या प्रथागत पद्धति है जिसके अनुसार किसी विशिष्ट संप्रदाय से अर्चक की नियुक्ति की जानी अपेक्षित है ।

10. दो आधारों पर रिट याचिकाओं की संधार्यता के बारे में प्रत्यर्थियों की ओर से दी गई दलीलों को स्वीकार करना हमारे लिए कठिन है । पहला यह स्वीकार करना कठिन है कि क्यों याचियों को मात्र इस कारण आरंभ में ही अनुपयुक्त ठहराया जाए कि तारीख 23 मई, 2006 के सरकारी आदेश को राज्य सरकार के वास्तविक आदेशों द्वारा प्रभावी नहीं बनाया गया है । रिट कार्यवाहियों के संस्थित करने के लिए वास्तविक प्रतिकूलता और प्रतिकूल प्रभाव तथा परिणाम की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है । ऐसे नुकसान की आशंका, यदि वह सुआधारित है, तो न्यायालय में जाने का वाद हेतुक पैदा कर सकता है । यह तर्क कि यह रिट याचिका लोक पद पर नियुक्ति से संबंधित कार्य पर आधारित है और इस प्रकार लोक हित वाद के रूप में ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है, ऐसे मुद्दों का उत्तर देने के लिए स्वीकार्य सामान्य समाधान होगा जो उजागर किए गए हैं और जिनका संबंध देश के बहुतायत नागरिकों की धार्मिक परम्परा और आस्था से है और जो विधि का बल रखने वाले शतक पुरानी परंपराओं और रूढ़ियों का दावा करते हैं । उपरोक्त दूसरा आधार अर्थात् मुद्दे की ऐसी गंभीरता है जो पैदा होता है और जो रिट याचिकाओं में उनके गुणागुण के आधार पर अवधारण के लिए उठाए गए और उठने वाले मुद्दों का उत्तर देने के लिए मुझे प्रेरित करता है ।

11. याचियों की ओर से उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल श्री के. पारासरन ने यह निवेदन किया कि मामले में उद्भूत मुद्दे पूर्णतः **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के निर्णय द्वारा शासित होते हैं । वस्तुतः विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल के अनुसार, वर्तमान मामले के मुद्दे पूर्व न्याय हैं; जिनका विनिश्चय **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में परस्पर पक्षकारों के बीच किया गया है; आगम मंदिरों के अर्चक और प्रत्यर्थी-राज्य दोनों उक्त विनिश्चय के पक्षकार हैं । विनिर्दिष्टतः श्री पारासरन ने यह आग्रह किया कि **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ ने सुस्पष्टतः यह अभिनिर्धारित किया कि किसी अर्चक की नियुक्ति विशिष्ट मंदिर को लागू आगम के अनुसार किया जाना चाहिए और उक्त पुरानी रूढ़ि और परंपरा से कोई विचलन संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 द्वारा

यथा प्रत्याभूत धर्म की स्वतंत्रता और धार्मिक संप्रदाय के अपने कार्यों का प्रबंध करने का अधिकार का अतिलंघन होगा । यथा उल्लिखित अपने चिरभोग द्वारा आक्षेपित सरकारी आदेश **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा बनाई गई विधि की घोषणा को अभिभावी करने के लिए है ।

12. श्री पारासरन का आगे यह आग्रह है कि संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 द्वारा प्रत्याभूत स्वतंत्रताओं की कमी विधान-मंडल द्वारा ही की जा सकती है और इस बाबत विधायी प्रक्रिया भी अनुच्छेद 25 और 26 दोनों में अंतर्विष्ट परिसीमाओं द्वारा सीमित है । इस मामले में 2005 के अध्यादेश सं. 6 द्वारा किया गया तमिलनाडु अधिनियम की धारा 55 का संशोधन 2006 के संशोधन अधिनियम सं. 15 (जैसाकि पहले उल्लिखित है) द्वारा जारी नहीं रखा गया है । अतः आक्षेपित सरकारी आदेश निश्चय ही अपनी प्रभाविता खो देता है । इसमें यहां **संजीव कोक मैनुफैक्चरिंग बनाम मैसर्स भारत कोकिंग कोल लिमिटेड और एक अन्य¹** वाले मामले में प्रकाशित निम्नलिखित पैरा का अवलंब लिया गया :-

“25. न्यायालय में फाइल शपथपत्रों के अभिसाक्षी उन पक्षकारों की ओर से बात कह सकते हैं जिनकी ओर से वे कथनों का शपथपत्र लेते हैं । वे संसद् के लिए नहीं बोल सकते । कोई व्यक्ति संसद् के लिए नहीं बोल सकता और संसद् कभी न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं होती है । संसद् जो कहना चाहती है ऐसा कहने के पश्चात्, केवल न्यायालय यह बताता है कि संसद् के कहने का क्या अभिप्राय है । इससे अधिक कुछ नहीं । किसी भी कानून का संसद् से निकलने के पश्चात् न्यायालय ही केवल प्रामाणिक आवाज है जो संसद् की बात का अर्थ निकाल (निर्वचन) सकता है।”

13. आगे यह दलील दी गई कि सरकारी आदेश अपने प्रख्यापण को उचित ठहराने के लिए गलत तरीके से **एन. आदित्यन** बनाम **ट्रावनकोर देवास्वम बोर्ड और अन्य²** वाले मामले के विनिश्चय का अवलंब लिया । **आदित्यन** (उपरोक्त) वाले मामले का लिया गया अवलंब **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित विधि के समक्ष पूर्णतः भ्रामक है । श्री पारासरन ने आगे यह तर्क दिया कि आक्षेपित सरकारी आदेश को इसके

¹ (1983) 1 एस. सी. सी. 147.

² (2002) 8 एस. सी. सी. 106.

निजी निबंधनों में पढ़ा जाना चाहिए और इसकी विधिमान्यता की रक्षा इससे नहीं की जा सकती है जो इस आशय के प्रति-शपथपत्र के पैरा 51 में राज्य द्वारा किए गए “रियायत” से होना प्रतीत होता है कि राज्य शैव और वैष्णव मंदिरों के बीच अंतर का सम्मान करेगा और प्रत्येक मंदिरों में अर्चकों की नियुक्ति यथास्थिति संबद्ध आगमों में अर्चकों के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए शैव या वैष्णव से की जाएगी। श्री पाराशरन के अनुसार सभी शैव या सभी वैष्णव स्वयमेव साम्प्रदायिक नहीं हैं। केवल ऐसा शैव जो शैवागम के अधीन पात्रता को पूरी करता है और कोई वैष्णव जो पंचरत्न या वैखानस के अधीन पात्रता को पूरी करता है, को संप्रदाय के रूप में निर्दिष्ट किया जा सकता है। ऐसा व्यक्ति जो ऐसे संप्रदाय का सदस्य है की ही नियुक्ति यथास्थिति, शैव या वैष्णव मंदिर के अर्चक के रूप में की जा सकती है।

14. दूसरी ओर प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल श्री पी. पी. राव और श्री कॉलिन गोनसेल्वस ने यह दलील दी कि 1970 के संशोधनकारी अधिनियम की संवैधानिक विधिमान्यता को अभिनिर्धारित करने वाले **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय ने अर्चक के रूप में नियुक्त होने के लिए जाति, संप्रदाय आदि का ध्यान दिए बिना सभी अर्ह हिंदुओं का मार्ग प्रशस्त किया था। यह दलील दी गई कि यदि एक बार आनुवांशिक सिद्धांत को नमनीय बनाया जाता है तो निश्चित ही किसी विशिष्ट समूह के नियुक्त होने का अनन्य अधिकार समाप्त हो जाएगा और यह संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 से संगत गुणता और योग्यता से युक्त अर्हता है जो नियुक्ति के लिए एक निर्णायक परीक्षण है। विद्वान् काउंसिलों ने विनिर्दिष्टतः 2007 के सरकारी आदेश सं. 1 और इस बाबत 23 मई, 2006 के आक्षेपित सरकारी आदेश के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सिफारिशें करने के लिए नियुक्त उच्च शक्ति प्राप्त समिति की सिफारिश को निर्दिष्ट किया। उच्च शक्ति प्राप्त समिति की रिपोर्ट का उल्लेख करते हुए यह दलील दी गई कि यह मंदिर के पुजारियों की आगमों की जानकारी की कमी और मंदिरों के रिवाजों और ऐसे आगमों की जानकारी की उनकी कमी को प्रदर्शित करता है जो आगमों द्वारा विहित हैं। यह निवेदन किया गया कि न केवल आगमों की अंतर्वस्तु अनिश्चित हो गए हैं बल्कि अन्यथा यह मानने पर भी, इसे ऐसे रिवाज की धर्मजता प्रदत्त करने का प्रमाण नहीं हो सकता है जो संविधान विशेषकर उसके भाग 3 में अंतर्विष्ट है, के उपबंधों से असंगत और प्रतिकूल है। आगे यह निवेदन किया गया कि आक्षेपित सरकारी

आदेश संगत है और वस्तुतः समता और समान अवसर के मूल अधिकार को प्रभावी बनाता है और संविधान के उक्त उपबंधों को अभिभावी ठहराते हुए कोई प्रतिकूल रिवाज वैधतः स्वीकार्य नहीं होगी। विद्वान् काउंसिलों ने आगे यह निवेदन किया कि **शेषाम्मल** (उपरोक्त) और **एन. आदित्यन** (उपरोक्त) वाले मामलों के निर्णयों के बीच कोई विरोध नहीं है और संवैधानिक अपेक्षाओं और सिद्धांतों से संगत रीति में दोनों मामलों में घोषित विधि को पढ़ना संभव है।

15. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल श्री गोनसेल्वस द्वारा एक अतिरिक्त मुद्दा उठाया गया कि आक्षेपित सरकारी आदेश को संविधान के अनुच्छेद 17 द्वारा प्रतिस्थापित सिद्धांत की कसौटी पर कायम रखे जाने की आवश्यकता है। मंदिर के गर्भगृह में प्रवेश करने और इस आधार पर धार्मिक कृत्यों का पालन करने के किसी विशिष्ट समूह के अनन्य अधिकार की किसी अन्य व्यक्ति द्वारा ऐसे धार्मिक कृत्यों के पालन से मूर्ति अपवित्र हो जाएगी, ऐसी विचारधारा और कार्य है जो संविधान के अनुच्छेद 17 द्वारा प्रतिषिद्ध है। सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 के अधीन अतिक्रमण और परिणामतः आपराधिक कार्य के मुद्दे को भी उठाया गया।

16. **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के निर्णय के सही अर्थ, प्रयोजन और आशय तथा उपरोक्त संदर्भ में **एन. आदित्यन** (उपरोक्त) वाले मामले में अंकीय छोटे न्यायपीठ के विनिश्चय के आशय को केंद्र मानकर मुद्दे उठाए गए और तर्क किए गए। अतः हम आरंभ में ही उपरोक्त स्थिति को समझने का कार्य करते हैं।

17. **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में चुनौती की रूपरेखा पर पहले ही ध्यान दिया गया है। दोहराते हुए, यह 1970 के संशोधनकारी अधिनियम की विधिमान्यता है जो अन्य बातों के साथ-साथ तमिलनाडु अधिनियम की धारा 55 का संशोधन करने के लिए है जो **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रश्नगत किया गया था। 1970 के संशोधनकारी अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों का कथन इस प्रकार है :-

“वर्ष 1969 में अनुसूचित जाति की अस्पृश्यता, आर्थिक और शैक्षिक विकास की समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह सुझाव दिया कि हिंदू समाज में आनुवांशिक पुजारीपन को समाप्त किया जाए और इस प्रणाली को ऐसी अपेक्षित शैक्षिक अर्हता रखने वाले व्यक्तियों के कलीसियाई संगठन द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सकता है जो पुजारीपन में मान्यता प्राप्त संस्थाओं में प्रशिक्षित हैं और यह कि

जाति, पंथ या मूल वंश को ध्यान दिए बिना सभी लोगों के लिए पंक्ति खोली जाए। तमिलनाडु में, अर्चक, गुरुकुल और पुजारी सभी हिंदू मंदिरों के उत्थुराई सेवक हैं। 'उत्थुराई सेवक' का कर्तव्य मुख्यतः देवता की पूजा अनुष्ठान और अन्य सेवाएं करना, मंत्र, वेद, प्रबंदास, थेवरम और इसी प्रकार का उच्चारण और ऐसे ही कार्य तथा ऐसे कार्यपालन और उच्चारण और सामूहिक गान से संबद्ध कर्तव्य के पालन से संबंधित है। तमिलनाडु हिंदू धार्मिक और पूर्त न्यास अधिनियम, 1959 (1959 का तमिलनाडु अधिनियम 22) की धारा 55 और 56 आनुवांशिक उत्तराधिकार के नियम के लागू कर न्यासियों द्वारा धार्मिक संस्थाओं में पदधारकों और सेवकों की नियुक्ति का उपबंध करती है। सामाजिक सुधार की ओर एक कदम बढ़ाते हुए हिंदू मंदिरों ने पहले ही जाति को ध्यान दिए बिना अपने मंदिर सभी हिंदुओं के लिए खोल दिए हैं।”

(रिखांकन बल देने के लिए किया गया है।)

18. चुनौती के समर्थन में तीन तर्क दिए गए हैं, अर्थात् :-

“(क) अर्चक के पद के आनुवांशिक उत्तराधिकार की स्वतंत्रता को समाप्त कर दिया गया है, यद्यपि इसका उत्तराधिकार शैव और वैष्णव पुजारियों की आस्था का आवश्यक और अभिन्न भाग है।

(ख) ऐसी अर्हताएं विहित करने या न करने की शक्ति सरकार पर है क्योंकि वह इस धार्मिक पद पर आवेदकों को स्वीकार करने का चयन कर सकते हैं यद्यपि स्वयं अधिनियम किसी प्रकार के सिद्धांत का संकेत नहीं करता जिस पर अर्हताएं आधारित होनी चाहिए। राज्य की ओर से प्रति-शपथपत्र में उद्देश्यों और कारणों का कथन जो अंगीकार किया गया है, यह स्पष्ट करता है कि न केवल व्याप्ति बल्कि संशोधन अधिनियम के उद्देश्य को पूरा करने के प्रयोजन के लिए विनिर्दिष्ट संप्रदाय के अर्चकों को नियुक्त कर धर्म के विषय में अपने निजी कार्यकलाप का प्रबंध करने के संप्रदाय के अनन्य अधिकार को अभिभावी करने के लिए है।

(ग) संशोधन अधिनियम पहली बार ऐसे न्यासी को नियुक्त करने का अधिकार प्रदान करता है जो मूल अधिनियम के उपबंधों के अधीन सरकार के नियंत्रणाधीन है और यह धर्म के विषय में अपने निजी क्रियाकलाप का प्रबंध करने के संप्रदाय के अधिकार और धर्म

के रिवाज के बारे में राज्य द्वारा धर्म की स्वतंत्रता और अहस्तक्षेप का खंडन है ।”

19. काफी व्यापक विचार-विमर्श के दौरान और क्षेत्र के विद्वानों के कार्यों पर विचार करने के पश्चात्, आज की तारीख तक अनुच्छेद 25 और 26 की बाबत अधिकथित विधि और विशेषकर आगमों की प्रभाविकता पर संविधान न्यायपीठ ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला :—

“ऐसी कोई राज्य कार्रवाई जो आगमों द्वारा आपराधिकृत अर्चक के छूने से मूर्ति के दूषण या प्रदूषण की अनुज्ञा देता है, व्यापक स्तर पर हिंदू उपासकों की धार्मिक आस्था और पद्धति में काफी हस्तक्षेप करता है और इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 25(1) के अधीन प्रथमदृष्ट्या अविधिमान्य होगा ।”

20. इसके पश्चात्, संविधान न्यायपीठ ने इस न्यायालय के पूर्व कई निर्णयों को निर्दिष्ट करते हुए रिपोर्ट के पैरा 3 में निम्नलिखित रूप से संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के उपबंधों के पीछे छिपे मुख्य सिद्धांतों की पहचान की :—

“पहला यह है कि इन अनुच्छेदों का संरक्षण केवल सिद्धांत या आस्था के विषय तक सीमित नहीं है बल्कि ये धर्म के अनुसरण में किए गए कार्यों तक भी विस्तारित है अतः धार्मिक संस्कार और धर्म पालन, समारोह तथा उपासना के ढंग की भी प्रत्याभूति अंतर्विष्ट है जो धर्म के अभिन्न भाग हैं । दूसरा यह है कि कौन सी बातें धार्मिक या धार्मिक पद्धति का अभिन्न भाग गठित करती हैं, का विनिश्चय विशिष्ट धर्म के सिद्धांत का प्रतिनिर्देश करते हुए न्यायालयों द्वारा किया जाना चाहिए और इसमें ऐसी पद्धतियां सम्मिलित हैं जो समुदाय द्वारा उसके धर्म का भाग मानी जाती हैं ।”

21. अपने समक्ष तथ्यों पर पूर्वोक्त सिद्धांत लागू करते हुए संविधान न्यायपीठ ने मंदिर न्यासी में किसी व्यक्ति को अर्चक नियुक्त करने की शक्तियों और प्राधिकार निहित करने के बारे में संशोधन की चुनौती के समर्थन में किए गए तर्कों के मुख्य बात की पहचान की जहां तक वह मद्रास हिंदू धार्मिक संस्था (अधिकारी और सेवक) सेवा नियम, 1964 के नियम 12 में विनिर्दिष्ट एक संस्था से योग्यता प्रमाणपत्र धारित करता था । उक्त नियम 12 की यह अपेक्षा थी कि अर्चक मंत्र, वेद, प्रबंदम आदि में दक्ष होना चाहिए अर्थात् यह कि ऐसा व्यक्ति पूजा करने के योग्य और अर्ह

हैं तथा अन्य धार्मिक क्रियाकलाप और सेवा करने की जानकारी रखता है। संविधान न्यायपीठ को यह बताया गया कि उपरोक्त स्थिति ऐसी बात के रूप में देता है जहां नियम 12 की अपेक्षा को (नियमों का पश्चात्पूर्वी संशोधन कर) अच्छी तरह से अलग किया जा सकता है जिसका परिणाम न्यासी को वस्तुतः इस तथ्य के होते हुए भी कि किसी विशिष्ट संप्रदाय के व्यक्ति से भिन्न व्यक्ति द्वारा मूर्ति की उपासना करने से देवता को दूषण हो सकता है, अर्चक के रूप में किसी व्यक्ति को नियुक्त करने की वस्तुतः अमार्गदर्शी और बेलगाम शक्ति प्रदान करना होगा। जैसाकि मंदिर न्यासी को तमिलनाडु अधिनियम की धारा 27 के अधीन राज्य के नियंत्रण के अधीन कार्य करना होता है, संविधान न्यायपीठ के समक्ष यह प्रश्न उजागर किया गया कि क्या संशोधन के आधार पर राज्य ने न्यासी के अभिकरण के माध्यम से मंदिर के गर्भगृह में हस्तक्षेप करने और नियंत्रण करने और अर्चक द्वारा संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 द्वारा धार्मिक संप्रदाय को अनुदत्त अधिकारों में हस्तक्षेप करने का अधिकार अभिप्राप्त कर लिया है।

22. संविधान न्यायपीठ ने यह ध्यान दिया कि उपरोक्त स्थिति का विरोध करते हुए तमिलनाडु राज्य के महाधिवक्ता ने यह दलील थी कि धारा 55 के संशोधन के आधार पर न्यासी को दी गई शक्ति अनर्हित शक्ति नहीं थी बल्कि अधिनियम की धारा 28 के उपबंधों के अधीन थी जो इस प्रकार है :-

“**धारा 28.** तमिलनाडु मंदिर प्रवेश प्राधिकार अधिनियम, 1947 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, प्रत्येक धार्मिक संस्था का न्यासी अपने कार्यों का प्रशासन करने और अपनी निधि और संपत्ति का प्रयोग न्यास के निबंधनों के अनुसार करने और सभी विधिसम्मत निदेश जो कोई सक्षम प्राधिकारी उसकी बाबत जारी करे और उतनी सावधानी से जितना एक सामान्य प्रज्ञावान व्यक्ति ऐसे कार्यों, निधियों और संपत्तियों की बाबत करता यदि वह उसका अपना होता, का पालन करने के लिए आबद्ध है।”

इस बाबत महाधिवक्ता ने वस्तुतः यह स्वीकार किया कि यदि किसी संस्था की प्रथा या पद्धति किसी मंदिर का अर्चक किसी विशिष्ट संप्रदाय के होने की अपेक्षा करती है तो उक्त प्रथा न्यासी पर आबद्धकर होगी और वह ऐसी प्रथा के अनुसार धारा 55 के अधीन नियुक्त करने के लिए आबद्ध होगा। महाधिवक्ता के अनुसार, प्रथा, पद्धति या रूढ़ि जो अर्चक का किसी विशिष्ट संप्रदाय से होने की अपेक्षा करती है, धार्मिक आस्था और पद्धतियों

पर आधारित है जबकि सिद्धांत की अगली पंक्ति में, यदि इसे प्रथा के रूप में माना जाए तो यह मात्र लौकिक प्रथा थी जिस पर विधान संविधान के अनुच्छेद 25(2)(क) के अधीन सक्षम होगा। अनुकल्पतः यह दलील दी गई कि यदि आनुवांशिक सिद्धांत को धार्मिक पद्धति के रूप में माना जाए तो उसका परिवर्तन अनुच्छेद 25(2)(ख) के अधीन विधान द्वारा किया जा सकता है और ऐसा विधान सामाजिक कल्याण और सुधार के प्रयोजन के लिए होगा।

23. संविधान न्यायपीठ ने **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित करते हुए प्रश्न का उत्तर दिया कि आनुवांशिक सिद्धांत जो काफी समय से रूढ़िगत था, एक लौकिक सिद्धांत था अतः उक्त प्रथा अर्थात् 1970 के संशोधन अधिनियम का परिवर्तन करने के लिए विधान अनुच्छेद 25(2)(क) के अधीन सक्षम था। तथापि, संविधान न्यायपीठ ने आगे यह कहा कि यह एकमात्र उपरोक्त अपवाद का सीमित विस्तार है अर्थात् अंतिम धारक की पंक्ति में अगले से परे व्यक्तियों में से नियुक्त करने की स्वतंत्रता की न्यासी तमिलनाडु अधिनियम की धारा 28 द्वारा उस पर अधिरोपित बाध्यता से उन्मुक्त है जो अन्यथा न्यासी से मंदिर को लागू होने वाली प्रथा के अनुसार मंदिर के कार्यों का प्रशासन करने की अपेक्षा करती है। संविधान न्यायपीठ के निर्णय का पैरा 22 जिसमें पूर्वोक्त मद का उल्लेख किया गया है शब्दशः उल्लेख करना महत्वपूर्ण है :-

“22. धारा 55 की उपधारा (2) की दृष्टि से, जैसे कि अब वह संशोधित रूप में है, अर्चक की नियुक्ति के विषय में न्यासी का चुनाव मंदिरों में उत्तराधिकार की शृंखला में अगले व्यक्ति के नियम द्वारा अब सीमित नहीं रह गया है, जहां प्रथा यह थी कि अर्चक की आनुवांशिक सिद्धांत के आधार पर नियुक्ति की जाए। न्यासी केवल इस एकमात्र आधार पर नियुक्ति करने के लिए आबद्ध नहीं है कि अभ्यर्थी पद के अंतिम धारक के उत्तराधिकार की शृंखला में अगला व्यक्ति है। उस सीमा तक, और केवल उसी सीमा तक, न्यासी मुख्य अधिनियम की धारा 28 द्वारा अपने पर अधिरोपित बाध्यता से मुक्त हो जाता है कि वह किसी मंदिर की प्रथा के उस भाग के अनुसार, जिसके अनुसार आनुवांशिक नियुक्तियों का व्यादेश है, मंदिर के मामलों का प्रशासन करे। इस संबंध में विधान, जैसाकि हमने बताया है, किसी धार्मिक परिपाटी या विषय या धर्म में हस्तक्षेप नहीं करता है और इसलिए वह अविधिमान्य नहीं है।”

24. **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के निर्णय के पढ़ने से यह दर्शित होता है कि न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित करने के लिए शैव और वैष्णव दोनों मंदिरों के आगमों का विस्तार से परिशीलन किया कि उक्त पुस्तकें विशिष्ट धार्मिक संप्रदायों के अर्चकों की नियुक्ति को निर्बंधित करती हैं और आगे यह कि ऐसे व्यक्तियों द्वारा जो विशिष्ट संप्रदाय के नहीं हैं, मूर्ति की उपासना से मूर्ति दूषित भी हो सकती है जिसका शुद्धिकरण समारोह किए जाने की अपेक्षा होगी। संविधान न्यायपीठ ने आगे यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि पंक्ति में अगले के सिद्धांत पर अर्चकों की नियुक्ति उस विशिष्ट संप्रदाय का धार्मिक कार्य है जिससे उस चिरस्थायी आस्थायुक्त आगमों के अनुसार अर्चकों की नियुक्ति की जानी अपेक्षित है जो मूर्ति की उपासना के अव्यवहित परिवर्ती पद्धतियों में दृढ़तः सन्निविष्ट है अतः ऐसी आस्था/पद्धति धार्मिक पद्धति का अभिन्न भाग गठित करती है जो अधिनियम की धारा 28 (पूर्वोक्त उद्धृत) के अधीन न्यासी पालन करने के लिए बाध्य है। **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा अधिकथित विधि के सही तर्काधार होने के बारे में याचियों ने दलील दी जिसे प्रत्यर्थियों द्वारा प्रश्नगत किया गया है जिनका यह तर्क है कि **शेषाम्मल** (उपरोक्त) और कुछ नहीं बल्कि संविधान न्यायपीठ की व्यक्त सहमति है जो राज्य के महाधिवक्ता द्वारा उसके समक्ष व्यक्त अनुमोदन था। प्रत्यर्थी के अनुसार **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ को यहां उद्भूत मुद्दे पर विचार करने का कोई अवसर नहीं था क्योंकि उसके समक्ष दी गई चुनौती केवल 1970 के संशोधन अधिनियम की विधिमान्यता तक सीमित थी।

25. उपरोक्त के उत्तरों पर थोड़ा बाद में विचार किया जाएगा और इस समय न्यायालय अपना ध्यान **आदित्यन** (उपरोक्त) वाले मामले में अंकगणितीय छोटे न्यायपीठ द्वारा अधिकथित विधि के सही तर्काधार पर केंद्रित करता है।

26. **आदित्यन** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायालय के समक्ष उद्भूत तथ्यों पर अब यह न्यायालय विचार करता है। उसमें चुनौती नम्बूदरी ब्राह्मण द्वारा ऐसे गैर नम्बूदरी ब्राह्मण की नियुक्ति के बारे में था जो प्रश्नगत मंदिर में पुजारी के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए अन्यथा सुअर्हित था। चुनौती इस आधार पर दी गई थी कि मंदिर में यह काफी स्थायी पद्धति और प्रथा रही है कि इसके पुजारियों की नियुक्ति अनन्यतः नम्बूदरी ब्राह्मणों में से की जाती थी और उससे कोई विपथन संविधान के

अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन नम्बूदरी ब्राह्मणों के अधिकारों का अतिक्रमण है। **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले के विनिश्चय सहित **आदित्यन** (उपरोक्त) वाले मामले में विनिर्दिष्टतः निर्दिष्ट इस न्यायालय के विभिन्न पूर्व विनिश्चयों जिसके ब्यौरे यहां पुनः दोहराने की आवश्यकता नहीं है (ऐसे ब्यौरों पर पृथक्तः बाद में किंतु भिन्न संदर्भ में ध्यान दिया गया है) पर विचार करते हुए, यह अभिनिर्धारित किया गया कि जाति के एकमात्र आधार पर दावाकृत अधिकारों को अनुच्छेद 25 और 26 का संरक्षण प्राप्त नहीं हो सकता और **शेषाम्मल** (उपरोक्त) सहित इस न्यायालय का कोई भी पूर्व विनिश्चय इस दलील का समर्थन नहीं करता कि एकमात्र आधार पर पूजा करने से सम्यक् अर्हित व्यक्तियों को भी वर्जित किया जा सकता है कि ऐसा व्यक्ति जन्म या वंशावली द्वारा ब्राह्मण नहीं है। उपरोक्त रीति से विधि की व्याख्या करने के पश्चात्, **आदित्यन** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि संविधान पूर्व दिनों से (जो किसी भी दशा में सुलभ नहीं है) किसी ऐसी पद्धति का कोई सबूत भी ऐसे दावे को कायम नहीं रख सकता जो संवैधानिक मूल्यों के अल्पीकरण में है और लोकनीति या सामाजिक मर्यादा के प्रतिकूल है। हम यह नहीं मानते कि कैसे इस न्यायालय का पूर्वोक्त मत किसी भी दशा में **शेषाम्मल** (उपरोक्त) सहित किसी पूर्व विनिश्चय में व्यक्त मतों से प्रतिकूल मत व्यक्त करता है। **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले के मुद्दे पूर्णतः भिन्न थे और उसमें (पैरा 12) के विचार-विमर्श इस आधार पर किए गए थे कि किसी विशिष्ट संप्रदाय के गर्भगृह में प्रवेश जाति या सामाजिक हैसियत के किसी निर्देश से हीन है। श्री आर. पार्थसारथी भट्टाचार्य जिन्हें रिपोर्ट के उपरोक्त पैरा 12 में निर्दिष्ट किया गया है, विषय पर अविवादित विद्वान् के रूप में यह साबित करने के लिए उद्धृत किया गया है कि जहां तक वैष्णव मंदिरों का संबंध है, 4 (चार) परंपराओं के अनुयायियों के अलावा “.....कोई अन्य, चाहे धर्म गुरु या आचार्य के रूप में समाज में कितनी ही ऊंची स्थिति में हो, या अन्य ब्राह्मण भी मूर्ति को छू नहीं सकते, पूजा नहीं कर सकते या गर्भगृह में प्रवेश नहीं कर सकते” जाति के एकमात्र आधार पर अपवर्जन **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में मुद्दा नहीं था जिससे कि **आदित्यन** (उपरोक्त) वाले विनिश्चय को किसी भी तरह से **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में जो अभिनिर्धारित किया गया है उससे विपथित समझा जा सके।

27. आक्षेपित सरकारी आदेश तारीख 23 मई, 2006 की विधिमान्यता

पर विचार करने के पूर्व यह समझने का प्रयास करना उपयोगी होगा कि हिंदुत्व क्या है ? इस रिपोर्ट की भूमिका में व्यापक उत्तर मिल सकता है किंतु संभवतः हमें मुद्दे पर अधिक गहराई से विचार करना चाहिए । देश के दार्शनिक राष्ट्रपति डा. एस. राधाकृष्णन् ने विख्यात पुस्तक “द हिंदू वे आफ लाइफ” विषय पर गहराई से विचार किया । इस प्रश्न के संदर्भ में **शास्त्री यज्ञपुरुसादजी और अन्य बनाम मूलदास भद्रदास वैश्य और एक अन्य**¹ वाले मामले में उक्त कार्य पर विस्तार से विचार किया कि क्या स्वामी नारायण पंथ एक भिन्न धर्म है और हिंदू धर्म से पृथक् है और परिणामतः उक्त पंथ के मंदिर बम्बई हिंदू सार्वजनिक उपासना स्थल (प्रवेश प्राधिकार) अधिनियम, 1956 की धारा 3 की व्याप्ति के बाहर आते हैं । अधिनियम की पूर्वोक्त धारा 3 अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध करती है कि प्रत्येक मंदिर जिसको अधिनियम लागू होता है, उसी रीति और उसी सीमा तक जैसा सामान्यतः अन्य हिंदुओं में उपासना के लिए अपवर्जित वर्गों के लिए खुले रहेंगे । न्यायालय के इस सामयिक विनिश्चय के दौरान जिसमें उठाए गए प्रश्न का नकारात्मक उत्तर दिया अर्थात्, यह कि प्रश्नगत पंथ सुभिन्न और अलग धर्म नहीं है, यह बहुत विद्वतापूर्ण विचार है जो हिंदुत्व के सही कारकों के संबंध में रिपोर्ट में पाया जाता है जो उपयोगी होगा जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है । रिपोर्ट के निम्नलिखित पैरा को पुनःस्मरण और प्रबोधन के प्रयोजन के लिए दोहराना बहुत उपयोगी होगा ।

“.....

जब हम हिंदू धर्म पर विचार करते हैं तो हम हिंदू धर्म को परिभाषित करना या यहां तक कि इसे पर्याप्ततः उल्लेख करना यदि असंभव नहीं फिर भी कठिन पाते हैं । विश्व के अन्य धर्मों के असमान, हिंदू धर्म किसी एक पैगम्बर का दावा नहीं करता ; किसी एक ईश्वर की उपासना नहीं करता ; किसी एक सिद्धांत का अनुसरण नहीं करता ; किसी एक दार्शनिक अवधारणा पर विश्वास नहीं करता ; किसी एक धार्मिक रस्म-रिवाज या धर्म पालन का अनुसरण नहीं करता ; वस्तुतः यह किसी धर्म या पंथ के संकीर्ण परंपरागत लक्षणों को पूरा करने वाला प्रतीत नहीं होता । इसे व्यापकतः एक जीवन शैली के रूप में वर्णित किया जा सकता है और कुछ नहीं ।

¹ [1966] 3 एस. सी. आर. 242.

.....

हिंदू विचारकों ने इस प्रभावपूर्ण तथ्य को स्वीकार किया कि भारत में रहने वाले पुरुष और महिलाएं भिन्न-भिन्न समुदायों के हैं, भिन्न-भिन्न देवताओं की उपासना करते हैं और भिन्न-भिन्न रस्म-रिवाज अपनाते हैं (कूर्म पुराण) । (वही पृष्ठ 12)

.....

यह ऐसे पंथ और सिद्धांत के जटिल समूह पर हमारी खोज को द्योतित करता है जिसकी तुलना देश के काफी बड़े क्षेत्र में फैली हुई सहायक नदियों और छोटे जलस्रोतों के सतत बहाव द्वारा उफान के अपने सहज एकीकरण में गंगा के शक्तिशाली मात्रा में एक साथ एकत्र होने और अंततः वक्री धाराओं के जटिल डेल्टा और जंगली दलदल में स्वयं को अंततः समाहित कर लेती है हिंदू धर्म हिंदू के समेकित चरित्र का प्रतिबिम्ब है जो एक नहीं बल्कि अनेक हैं । यह सार्वभौमिक स्वीकार्यता के विचार पर आधारित है । इसका लक्ष्य स्वयं ऐसी परिस्थितियों को समायोजित करना है और यह तीन हजार वर्षों से अधिक समय से समायोजन की प्रक्रिया में जुटी है । सर्वप्रथम उद्भूत होती है और तब सभी पंथों से कुछ बातों पर चर्चा होती है, विचार-विमर्श होता है, अपनाया जाता है और तत्पश्चात् समाहित कर लिया जाता है ।” (मोनियर विलियम द्वारा “भारत के धार्मिक विचार और जीवन”, पृष्ठ 57)

भारतीय विचार का इतिहास प्रभावतः इस तथ्य को उजागर करता है कि हिंदू धर्म का विकास हमेशा इस चेतना पर आधारित है कि सत्य के कई पहलू हैं, सत्य के लिए मस्तिष्क के निरंतर खोज द्वारा प्रेरित होता है । सत्य एक है किंतु प्रज्ञावान व्यक्ति इसे भिन्न-भिन्न बताते हैं । लगातार कई युगों से भारतीयों ने देवत्व की प्रकृति की समस्या पर गहन विचार किया जो वह जीवन के अंत में झेलता है और व्यक्ति तथा देवत्व की आत्मा के बीच परस्पर संबंध क्या है ? डा. राधाकृष्णन् का यह कहना है “यदि हम विभिन्न विचारों का सार निकाल सकते हैं और भारतीय विचारों की सामान्य धारणा का पता लगा सकें तो हम यह पाएंगे कि यह एकत्ववादी आदर्शवाद के मार्ग में जीवन और प्रकृति के निर्वचन की व्याख्या है । यद्यपि, इसकी प्रवृत्ति इतनी नमनशील, सहज और बहुआयामी है कि इसके कई रूप बनते

हैं और स्वयं यह पारस्परिक विरोधी उपदेशों को व्यक्त करता है” ।
(वही पृष्ठ 32)

यद्यपि भिन्न-भिन्न हिंदू विचारकों और दार्शनिकों द्वारा विकसित दार्शनिक अवधारणा और सिद्धांत कई तरह से भिन्न हैं और जहां तक कि कुछ विशिष्टियों में एक-दूसरे से प्रतिकूल प्रतीत होते हैं फिर भी वे सभी भूतकाल का सम्मान करते हैं और वेदों को हिंदू दर्शन का एक मात्र आधार मानते हैं । स्वभावतः अपने जीवनकाल के बहुत आरंभिक समय से ही हिंदू धर्म द्वारा यह महसूस किया गया कि सत्य के कई आकार हैं और भिन्न-भिन्न मतों में सत्य के भिन्न-भिन्न पहलू हैं जिसे कोई भी व्यक्ति पूर्णतः व्यक्त नहीं कर सकता ।

क्या हिंदू अपने मंदिरों में उन्हीं देवताओं या कई देवताओं की उपासना करते हैं ? यह दूसरा प्रश्न है जो इस संबंध में पूछा जा सकता है और इस प्रश्न का उत्तर पुनः नकारात्मक । वस्तुतः हिंदू समुदाय के ऐसे कई वर्ग हैं जो मूर्ति की उपासना में विश्वास नहीं करते ; और हिंदू समुदाय के उन वर्गों के बारे में जो मूर्ति की उपासना में विश्वास करते हैं उनमें मूर्तियां प्रत्येक समुदाय की भिन्न-भिन्न होती हैं और यह नहीं कहा जा सकता है कि एक निश्चित मूर्ति या निश्चित संख्या की मूर्ति की उपासना सामान्यतः सभी हिंदुओं द्वारा की जाती है । हिंदू सर्वदेव मंदिर में प्रथम देवता जिनकी उपासना वैदिक समय से की जाती थी मुख्यतः इंद्र, वरुण, वायु और अग्नि थे । बाद में, ब्रह्मा, विष्णु और महेश की उपासना की जाने लगी । समय के दौरान हिंदू सर्वदेव मंदिर में राम और कृष्ण ने अपना स्थान प्राप्त कर लिया और धीरे-धीरे भिन्न-भिन्न दार्शनिक अवधारणाओं के रूप में भिन्न-भिन्न पंथ उभर कर आए और हिंदू समुदाय के भिन्न-भिन्न वर्गों में देवताओं की काफी संख्या जुड़ गई जिसका आजकल यह परिणाम हुआ कि हिंदू देव मंदिरों में ऐसे देवताओं की काफी भारी संख्या दिखाई पड़ने लगी जिनकी उपासना हिंदुओं के भिन्न-भिन्न वर्गों द्वारा की जाती है ।

हिंदू धर्म और दर्शन के विकास से यह दर्शित होता है कि समय-समय पर संतों और धार्मिक सुधारकों ने भ्रष्टाचार और अंधविश्वास के तत्व को हिंदू धारणा और विश्वास से हटाने का प्रयास किया और जिससे भिन्न-भिन्न पंथों का उद्भव हुआ । बुद्ध ने बौद्ध धर्म का विकास किया ; महावीर ने जैनवाद की आधारशिला रखी ; बासव

लिंगायत धर्म के स्थापक बने, ज्ञानेश्वर और तुकाराम ने वरकरी पंथ का आरंभ किया ; गुरुनानक ने सिख धर्म को प्रेरित किया ; दयानंद ने आर्य समाज की स्थापना की और चैतन्य ने भक्ति पंथ की शुरुआत की और रामकृष्ण तथा विवेकानंद के उपदेश के परिणामस्वरूप हिंदू धर्म का विकास बहुत आकर्षक, प्रगतिगामी और सक्रिय रूप में हुआ । यदि हम इन संतों और धार्मिक सुधारकों के उपदेशों का अध्ययन करें, तो हम उनके अपने-अपने मतों में अनेक प्रकार की भिन्नता पाते हैं ; किंतु उन विभिन्नता के पीछे एक सूक्ष्म अनिर्वाच्य एकता है जो उन्हें व्यापक और प्रगतिगामी हिंदू धर्म की परिधि के भीतर बनाए रखती है ।

तिलक को हिंदू धर्म को परिभाषित करने या कम से कम ठीक तरह से वर्णित करने की इस जटिल और कठिन समस्या का सामना करना पड़ा और उन्होंने एक कार्यसाधक फार्मूला विकसित किया जिसे काफी उचित और संतोषजनक माना जा सकता है । तिलक ने कहा : “सम्मान के साथ वेदों की स्वीकृति और इस तथ्य की मान्यता कि मुक्ति का माध्यम या मार्ग भिन्न-भिन्न हैं और इस तथ्य की समझ कि उपासना किए जाने वाले देवताओं की संख्या काफी अधिक है, वस्तुतः यह हिंदू धर्म का विशिष्ट लक्षण है । यह परिभाषा संक्षेपतः हिंदू धर्म के व्यापक विशिष्ट लक्षण को उजागर करता है । यह काफी उल्लेखनीय है कि हिंदू धर्म के इस व्यापक परिधि का उचित उल्लेख तोयनवी द्वारा किया गया है । तोयनवी का यह कथन है : “जब हम सामाजिक व्यवहार के क्षेत्र से बौद्धिक क्षेत्र में जाते हैं तो हिंदुत्व भी दक्षिण पश्चिमी एशियन समूह के धर्मों और विचारधाराओं की तुलना द्वारा बेहतर उभर कर आता है । इनके प्रतिकूल हिंदुत्व का वही दृष्टिकोण है जो ईसाई धर्म पूर्व और मुस्लिम धर्म पूर्व और पुराने विश्व के आधे पश्चिमी देशों के दर्शनशास्त्रों का है । उनकी तरह हिंदुत्व यह मान लेता है कि सत्यता और मुक्ति का एक से अधिक विधिमान्य दृष्टिकोण है और यह कि ये भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण न केवल एक दूसरे से संगत हैं बल्कि एक दूसरे के पूरक हैं ।”

28. यह तथ्य कि संविधान में हिंदुओं का प्रतिनिर्देश सिख, जैन और बुद्ध धर्मों को मानने वाले व्यक्तियों को सम्मिलित करता है और हिंदू विवाह अधिनियम, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम आदि जैसी कानूनी अधिनियमितियां भी उक्त अधिनियमितियों की परिधि के भीतर सिख, जैन और बौद्ध को

समाहित करती हैं जो दूसरी महत्वपूर्ण बात है जिसे उजागर किया गया है और जिस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ।

29. इस बात पर बल दिए जाने की ईप्सा की गई है कि उपरोक्त सभी बातें विश्वास, विचार और उपासना के रूपों का व्यापक विस्तार दर्शित करती हैं कि हिंदुत्व अपने अनुयायियों के बीच या स्वयं के भीतर किसी विपथन या तनाव के बिना समाहित करता है । यह पूर्व प्रस्तुत प्रश्न कि “हिंदुत्व क्या है” ? के उपरोक्त उत्तर की पृष्ठभूमि में हम मामले पर आगे कार्यवाही करते हैं ।

30. प्रतिमा उपासना हिंदू धर्म का एक महत्वपूर्ण लक्षण है । प्रतिमा उपासना का उद्भव रोचक है और विषय पर विद्वत्पूर्ण चर्चा **गोपाला मूपनार और अन्य** बनाम **सुब्रमणियम अय्यर और अन्य**¹ वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के शतक पुराने निर्णय में उपलब्ध है । उक्त रिपोर्ट में विद्वान् न्यायाधीश (न्यायमूर्ति सदाशिव अय्यर) ने स्वीकृत पाठ और उसके अध्ययन पर यह निष्कर्ष निकाला कि मानवता के अस्तित्व के “प्रथम प्रक्रम” में ईश्वर की उपासना प्रत्येक के हृदय में अंतर्भूत होने के रूप में की गई और उपासना में सृष्टि के अपने सभी साथी की एकमात्र सेवा सम्मिलित है । दूसरे युग में, सार्वभौमिक भ्रातृत्व की भावना अपने आरंभिक प्रभाव में खो गई और व्यक्तियों के बीच निकृष्टता और उत्कृष्टता की भावना पैदा हुई जिससे ऐसी स्थिति बनी कि निकृष्ट व्यक्ति ने ऐसे उत्कृष्ट व्यक्ति की उपासना करने के लिए कहा जिसे ईश्वर की अभिव्यक्ति माना गया । सापेक्ष उत्कृष्टता और निकृष्टता के बारे में विवाद पैदा हुआ जिसका समाधान विद्वान् संतों द्वारा प्रतिमा उपासना को लागू कर किया गया जिसने सभी व्यक्तियों को उनकी सापेक्ष उत्कृष्टता के बारे में तू-तू मैं-मैं किए बिना ईश्वर की उपासना करने के लिए समर्थ बनाया । कालांतर में ऐसे मंदिरों में उपासना को विनियमित करने के नियम बनाए गए जिन्हें आगम और थनतरस के रूप में ज्ञात धर्म पुस्तकों में अधिकथित किए गए । विशेषकर **गोपाला मूपनार** (उपरोक्त) वाले मामले में, यह ध्यान दिया गया कि आगमों में, “मंदिर में किससे प्रदूषण कारित होता है और कारित हुए प्रदूषण को हटाने के लिए उत्सवों के बारे में” नियम विहित किया गया । उक्त निर्णय में आगे यह उल्लेख किया गया, “यह सुज्ञात है कि मालावार में ऐसे तंत्री हैं जो प्रदूषण के इन मामलों में विशेषज्ञ हैं ।

¹ ए. आई. आर. 1915 मद्रास 363.

जैसाकि मंदिर के पुजारियों ने विशेष शैव प्रवर्तन और दीक्षा प्राप्त की है जो उन्हें आंतरिक प्रतिमा को छूने का हकदार बनाता है और ऐसे व्यक्ति जिन्होंने कोई ऐसा प्रवर्तन प्राप्त नहीं किया है, चाहे वे ब्राह्मण ही क्यों न हों, के छूने से प्रतिमा प्रदूषित मानी जाती है, यहां तक कि मंदिर के पुजारियों से भिन्न ब्राह्मणों को भी कई मंदिरों में गर्भगृह में जाने की अनुज्ञा नहीं दी जाती ।¹ आगमों में ऐसे अन्य नियम भी हैं जो मंदिर के किस भाग से उपासना की जाए, का हकदार बनाते हैं । आगमों में से एक आगम में इस प्रकार यह कहा गया है (स्वतंत्र रूप से अनुवादित) : “शैव ब्राह्मण पुजारी अंधाला भाग में उपासना करने के हकदार हैं, वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण अर्थ मनतपा में अन्य ब्राह्मण मुख्य मनतपा में राजा और वैश्य द्वार मनतपा में, आरंभिक शूद्र बाह्य मनतपा में और इसी प्रकार उपासना करने के हकदार हैं” । यह आवश्यक नहीं कि उपरोक्त नियम का विधिक प्रभाव हमें निरुद्ध करे और यह रेखांकित भाग है जिसका विचार-विमर्श में विशिष्ट महत्व है जिसे बाद में स्पष्ट किया जाएगा ।

31. किसी विनिर्दिष्ट कलीसियाई अधिकारिता से हीन भारत में कलीसियाई विधि न्यायशास्त्र समय-समय पर यथा निर्मित अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन संवैधानिक प्रत्याभूतियों की प्रतिपादना के चारों ओर घूमता है । न्यायशास्त्र की इस शाखा का विकास प्राथमिकतः संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन संवैधानिक प्रत्याभूतियों की पृष्ठभूमि में आवश्यक धार्मिक आचरण और सिद्धांतों के और ऐसे दावों के संदर्भ में संविधान के अनुच्छेद 25(2)(ख) और 26(ख) के बीच परस्पर न्यायिक समझ पर संपूर्ण स्वायत्तता और अनन्य अवधारण के विशेषाधिकार और धार्मिक समूह और संप्रदाय के दावाकृत अधिकारों से उद्भूत होता है । **कमिश्नर, हिंदू रिलिजियस इनडाउमेंट, मद्रास बनाम श्री लक्ष्मीन्द्र तीरथ स्वामीयर ऑफ श्री शिरूर मठ¹** (शिरूर मठ) वाले मामले में यह अवधारित करने के लिए कि धार्मिक सम्प्रदाय के कौन से अधिकार और उत्सव उसके धर्म के तत्वों के अनुसार आवश्यक हैं, की स्वायत्तता के मुद्दे पर विचार करते हुए, यह अभिनिर्धारित किया गया कि :-

“अतः, अनुच्छेद 26(क) के अधीन, धार्मिक संप्रदाय या संगठन यह विनिश्चित करने के विषय में संपूर्ण स्वायत्तता का उपभोग करता है कि जो धर्म वह धारित करता है, के लक्षणों के अनुसार कौन से

¹ [1954] एस. सी. आर. 1005.

रीति-रिवाज या उत्सव आवश्यक हैं और ऐसे विषयों में के उसके विनिश्चय में किसी बाहरी प्राधिकारी को हस्तक्षेप करने की कोई अधिकारिता नहीं है ।” (पृष्ठ 1028)

32. उपरोक्त के अलावा पूर्वोक्त सिद्धांत की मान्यता इस तथ्य में भी पाई जाती है कि **शिरूर मठ** (उपरोक्त) वाले मामले में यद्यपि न्यायालय का अंतिम निष्कर्ष अधिनियम (मद्रास हिंदू धार्मिक और पूत विन्यास अधिनियम, 1951) के कतिपय विनिर्दिष्ट उपबंध अर्थात् धारा 21 की विधिमान्यता को कायम रखता है जो आयुक्त और उसके अधीनस्थों को अधिनियम के अधीन व्यादिष्ट कर्तव्यों के पालन के लिए किसी समय किसी धार्मिक संस्था के परिसर में प्रवेश करने की शक्ति प्रदान करती है, को उपरोक्त उद्धृत सिद्धांत से असंगत उपदर्शित करते हुए अभिखंडित कर दिया गया । रिपोर्ट के सुसंगत भाग (पृष्ठ 1030/31) पर विशिष्ट ध्यान देने की अपेक्षा है अतः नीचे उद्धृत किया जाता है :-

“तथापि, हम धारा 21 के बारे में उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त मत से सहमत हैं । यह धारा आयुक्त और उसके अधीनस्थ अधिकारी तथा उसके द्वारा प्राधिकृत व्यक्तियों को भी अधिनियम के अधीन या उसके द्वारा प्रदत्त किसी शक्ति का प्रयोग करने या अधिरोपित किसी कर्तव्य का पालन करने के प्रयोजन के लिए किसी धार्मिक संस्था या उपासना स्थल के परिसर में प्रवेश करने की शक्ति प्रदान करती है । यह सुज्ञात है कि ऐसे व्यक्तियों के लिए जो उसके आध्यात्मिक कृत्यों से जुड़े नहीं हैं, सार्वजनिक मंदिर या अन्य धार्मिक संस्था में प्रवेश का कोई अविनियमित और अनिर्बंधित अधिकार जैसी कोई बात नहीं हो सकती । यह सार्वभौमिक परंपरा है कि मंदिर के विशेषकर पवित्र भाग में उदाहरण के लिए ऐसा स्थान जहां मूर्ति स्थित है, में किसी बाहरी व्यक्ति को जाने की अनुज्ञा नहीं दी जाती है । मूर्ति की उपासना और विश्राम का नियत समय भी है जब आम जनता के किसी सदस्य द्वारा विघ्न डालने की अनुज्ञा नहीं दी जाती है । यह उल्लेखनीय है कि धारा 21 केवल परिसर के बाहरी भाग में प्रवेश के अधिकार तक सीमित नहीं है; यह आंतरिक गर्भगृह “पवित्रतम स्थान” तक भी अपवर्जित नहीं करता जैसाकि यह कहा गया है, जिसकी पवित्रता हर हाल में बनाई रखी जाती है । इसमें यह उल्लेख नहीं है कि प्रविष्टि संस्था के मुखिया को सम्यक् नोटिस देने के पश्चात् की जाए और ऐसे समय पर जो संस्था के रीति-रिवाज और रस्म के

सम्यक् पालन में हस्तक्षेप न करता हो । हम यह सोचते हैं कि जैसाकि धारा में उल्लेख है, यह मठाधिपति और ऐसे संप्रदाय जिसका वह संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन प्रत्याभूत मुखिया है के मूल अधिकारों में हस्तक्षेप करता है । इस संबंध में हमारा ध्यान अधिनियम की धारा 91 की ओर आकृष्ट किया गया जिसमें यह कहा गया है कि यह धारा 21 के अधीन शक्ति के किसी दुरुपयोग के विरुद्ध पर्याप्त सुरक्षोपाय का उपबंध करती है । हम इस दलील से सहमत नहीं हो सकते । धारा 91 का खंड (क) व्यावृत्ति खंड अधिनियम के सभी व्यक्त उपबंधों को अपवर्जित करता है जिसके भीतर धारा 21 के उपबंध भी सम्मिलित होते हैं । पुनः खंड (ख) किसी संस्था में होने वाले किसी प्रथा या रूढ़ि के बारे में कुछ नहीं कहता और यह उपदर्शित नहीं करता कि किसके द्वारा और किसी रीति से मठ के धार्मिक या आध्यात्मिक कृत्यों से हस्तक्षेप का प्रश्न इसके बारे में उद्भूत होने वाले किसी विवाद की दशा में विनिश्चित किया जाएगा । हमारी राय में धारा 21 को उचित ही अविधिमान्य ठहराया गया है ।” (पृष्ठ 1030/31)

33. श्री वेंकटारमण देवारु और अन्य बनाम मैसूर राज्य और अन्य¹ वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय पर अब विचार किया जाता है । उक्त मामले में इस न्यायालय से इस प्रश्न पर विचार करने के लिए कहा गया था कि क्या मद्रास मंदिर प्रवेश प्राधिकार अधिनियम की धारा 3 इस आशय का उपबंध बनाकर कि मूलकी के श्री वेंकटारमण मंदिर को हिंदुओं के सभी अपवर्जित वर्गों के लिए खोला जाए, अनुच्छेद 26(ख) के अधीन प्रत्याभूति का अतिक्रमण करती है जहां तक गौड़ सारस्वति ब्राह्मण का संबंध है । पूर्वोक्त पंथक की यह दलील थी कि प्रश्नगत मंदिर की स्थापना अनन्यतः गौड़ सारस्वति ब्राह्मणों के उपयोग और फायदे के लिए की गई थी । इस न्यायालय ने अपनी रिपोर्ट में सुस्पष्टतः मूर्ति/प्रतिमा उपासना की पद्धति ; आगमों द्वारा उसका विनियमन और ऐसे आगमों का प्रभाव और प्रवर्तनीयता पर चर्चा की । रिपोर्ट के पैरा 17 और 18 को यहां उद्धृत किया जाता है जो उपरोक्त पहलू पर विचार करता है ।

“17. भगवान के भिन्न-भिन्न रूप हैं और गृहों और मंदिरों में उनकी उपासना मोक्ष प्राप्त करने के कतिपय साधनों के रूप में की

¹ ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 255.

जाती है। ऐसे व्यादेशों के लोगों के मस्तिष्क पर ऐसी सशक्त छाप है कि मंदिर में मूर्ति की दैनिक उपासना को किसी हिंदू के बाध्यकारी कृत्यों के रूप में माना जाता है। इस अवधि के दौरान विष्णु, रुद्र, देवी, स्कंद, गणेश और इसी प्रकार को समर्पित पूरे देश में मंदिर संनिर्मित किए गए और यह कहा जा सकता है कि तब से हिंदुओं के सभी वर्गों का मंदिरों में उपासना करना व्यावहारिक धर्म हो गया। मंदिरों के महत्व और उसमें उपासना की वृद्धि को ध्यान में रखते हुए, मंदिरों के निर्माण, उसमें मूर्तियों की स्थापना और देवताओं की उपासना का संचालन संबंधी समारोह विधि पर अधिकतम ध्यान दिए जाने लगा और ऐसी कई संघियां हैं जो इनकी प्रतिपादना के लिए लिखी गई हैं। इन्हें आगम के रूप में जाना जाता है और इनमें से अधिकतम 28 आगम शैव मंदिर से संबंधित हैं और उनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण कामीकागम, कर्नागम और सुप्रवेदागम है जबकि विखानसा और पंचरात्र वैष्णवों के मुख्य आगम हैं। इन आगमों में विस्तार से नियम बताए गए हैं कि मंदिर का निर्माण कैसे किया जाए, मुख्य देवता की स्थापना कहां की जाए और कहां अन्य देवताओं को रखा जाए और कहां उपासकों के विभिन्न वर्ग खड़े हों और उपासना करें। गोपाला मूपनार **बनाम** सुब्रह्मणयम अय्यर : (1914) 27 एम. एल. जे. 253 वाले मामले में न्यायमूर्ति सदाशिव अय्यर के निर्णय से एक आगम में वर्णित नियमों के संक्षेप का उल्लेख निम्नलिखित पैरा में दिया गया है –

‘निर्वाचनापद्धति में यह कहा गया है कि शिवद्विजस को उपासना गर्भगृह में करनी चाहिए, ब्राह्मणों को चैम्बर के सामने से या सभामंडपन से करना चाहिए, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को महामंताभम से, नर्तकों और वादकों को महामंताभम के पूर्व नृत्य महामंताभम से और यह कि मानदंड में निचले जातियों को गोपुरम के बगल से उपासना करनी चाहिए।’

अन्य आगमों में भी इसी प्रकार के नियम हैं।

18. आगमों के अनुसार, कोई प्रतिमा तब दूषित हो जाती है यदि उपासना से संबंधित किसी नियम का कोई विपथन या अतिक्रमण होता है और शोधन समारोह (संप्रोक्षण के रूप में ज्ञात) मंदिर की पवित्रता कायम करने के लिए किया जाना चाहिए। गोपाला मूपनार **बनाम** सुब्रह्मणयम अय्यर (उपरोक्त) वाले मामले में

न्यायमूर्ति सदाशिव अय्यर के निर्णय द्वारा । शंकरालिंगन नादन बनाम राजा राजेश्वर दुरई वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय को पुष्ट करते हुए प्रिवी काँसिल द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि ऐसे न्यासी जो ऐसे व्यक्तियों को जो आगमों के और मंदिर की रूढ़ि के अनुसार उसमें उपासना करने के हकदार नहीं थे, मंदिर में प्रवेश करने दिया, न्यास भंग के दोषी थे । इस प्रकार मंदिरों के उत्सव संबंधी विधि के अधीन जो उपासना के लिए उसमें प्रवेश करने के हकदार हैं और जहां वे खड़े होने और उपासना करने के हकदार हैं और कैसे वे उपासना करें यह सभी धर्म का विषय है । अनुच्छेद 25 में यह निष्कर्ष भी निहित है जो यह घोषित करने के पश्चात् भी सभी व्यक्ति अबाधतः धर्म मानने, आचरण करने और प्रचार करने के हकदार हैं, यह अधिनियमित करता है कि यह हिंदुओं के सभी वर्गों या अनुभागों को लोक प्रकृति के हिंदू धार्मिक संस्थाओं को प्रवेश करने के लिए खुला छोड़ने के किसी विधि के प्रवर्तन को प्रभावी नहीं बनाएगा । हमने इस प्रश्न को विद्वान् महासालिसिटर के इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए काफी विस्तार से विचार किया कि मंदिर से व्यक्तियों के अपवर्जन को हिंदुत्व के तत्त्व के प्रतिनिर्देश से धर्म के विषय के रूप में नहीं साबित किया जाना चाहिए । तदनुसार हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि यदि अपीलार्थियों के अधिकारों का उदाहरण एकमात्र अनुच्छेद 26(ख) के प्रतिनिर्देश से किया जाता है तो 1947 के अधिनियम 5 की धारा 3 को इसे अतिलंघनकारी मानते हुए दोषपूर्ण अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए ।

अंततः इस न्यायालय ने आगे यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 26(ख) के उपबंध अनुच्छेद 25(2)(घ) में अंतर्विष्ट विषयों के भी अधीन हैं और तदनुसार गौड़ सारस्वति ब्राह्मण के वाद जिसमें यह कार्यवाही उद्भूत थी द्वारा उठाए गए अभिवाक् को खारिज किया गया ।’

34. श्री **वेंकटारमण देवारु** (उपरोक्त) वाले मामले में यह विनिश्चित करने की न्यायालय की शक्ति की सुस्पष्ट पुनरावृत्ति की आवश्यक धार्मिक रिवाज किन बातों से मिलकर गठित होता है, पुनः **दरगाह कमेटी, अजमेर और एक अन्य बनाम सैय्यद हुसैन अली और अन्य**¹ वाले मामले में सुस्पष्ट किया गया । न्यायमूर्ति गजेन्द्र गडकर (तत्कालीन न्यायमूर्ति) का यह मत था :-

¹ ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 1402.

“..... कि यह कि प्रश्नगत रिवाज को धर्म का भाग माना जाए, उसे उक्त धर्म के उसके आवश्यक और अन्य भाग के रूप में माना जाना चाहिए ; अन्यथा विशुद्ध पंथ निरपेक्ष रिवाज जो धर्म के आवश्यक या अभिन्न भाग नहीं हैं, को धार्मिक आवरण में समेटना युक्ति संगत है और अनुच्छेद 26 के अर्थान्तर्गत धार्मिक रिवाजों के रूप में माने जाने के लिए दावा किया जा सकता है । इसी प्रकार ऐसे रिवाज जो यद्यपि धार्मिक हैं, मात्र पाखंडपूर्ण आस्था से उद्भूत हो सकते हैं और उस अर्थ में वे स्वयं धर्म के बाह्य और अनावश्यक वृद्धि हैं । जब तक ऐसे रिवाजों को धर्म के आवश्यक और अभिन्न भाग के रूप में गठित होना नहीं पाया जाता तब तक अनुच्छेद 26 के अधीन संरक्षण के लिए उनके दावे की सावधानीपूर्वक संवीक्षा की जानी चाहिए ; दूसरे शब्दों में संरक्षण केवल ऐसे धार्मिक रिवाजों तक सीमित होना चाहिए जो इसके आवश्यक और अभिन्न भाग हैं न कि अन्य को ।”

35. लगभग अर्ध शतक पश्चात् **पुलिस आयुक्त और अन्य बनाम आचार्य जगदीश्वरानंद अवधूत और एक अन्य¹** वाले मामले में दिए गए बहुमत निर्णय में इसी मत को दोहराया गया, यद्यपि उक्त मामले के अल्पमत निर्णय में अन्य बातों के साथ-साथ **शिरूर मठ (उपरोक्त) और जेसी कॅटवेल बनाम स्टेट आफ कनेक्टिकट²** और **यूनाइटेड स्टेट बनाम बालार्ड³** वाले मामलों का अवलंब लेते हुए प्रतिकूल मत व्यक्त किया । प्रतिकूल टिप्पण व्यक्त करने वाले अल्पमत विचार के पैरा 57 को दोहराना उचित होगा ।

“57. धार्मिक आस्था के अनुसरण में कार्य और आचरण करने के लिए स्वतंत्रता का प्रयोग उतना ही महत्वपूर्ण है जितना धर्म में विश्वास करने की स्वतंत्रता । वस्तुतः धार्मिक आस्था में विश्वास करने वाले व्यक्तियों को बाह्य कार्यों द्वारा धर्म का आचरण करने के कुछ रूप हैं जो स्वयं आस्था के रूप में धर्म के अभिन्न भाग हैं । कार्य करने और आचरण करने की स्वतंत्रता को विनियमित किया जा सकता है । हमारे संविधान में, लोक व्यवस्था, स्वास्थ्य और सदाचार

¹ (2004) 12 एस. सी. सी. 770.

² 84 एल. ईडी. 1213 = 310 यू. एस. 296 (1939).

³ 88 एल. ईडी. 1148 = 322 यू. एस. 78 (1943).

तथा संविधान के भाग 3 में के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए शब्द का उल्लेख है। तथापि, प्रत्येक मामले में विनियमन की शक्ति का प्रयोग ऐसी सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए कि विनियमन का विषय धर्म का मूल अधिकार है और इस प्रकार संविधान द्वारा दिए गए संरक्षण का अनुचित उल्लंघन न करे। इसके अतिरिक्त विनियमित करने की शक्ति का प्रयोग करते हुए, प्राधिकारी धर्म के पालनकर्ताओं के व्यक्त विचारों पर अपना निर्णय नहीं दे सकता और यह अवधारित नहीं कर सकता है कि रिवाज धर्म के लिए अपेक्षित है या नहीं। उनका यह कृत्य नहीं है। (जेसी कैंटवेल बनाम स्टेट आफ कनेक्टिकट 84 एल. ईडी. पृष्ठ 1213-1218 और यूनाइटेड स्टेट बनाम बालार्ड 88 एल. ईडी. पृष्ठ 1153,1154)”

36. संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन धर्म की स्वतंत्रता केवल आस्था तक सीमित नहीं है बल्कि धार्मिक आचरण तक विस्तारित है जिसे बार-बार दोहराने की आवश्यकता नहीं है। आस्था और आचरण का अधिकार लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा संविधान के भाग 3 के उपबंधों के अधीन रहते हुए अनुच्छेद 25 द्वारा प्रत्याभूत है। उप अनुच्छेद (2) एक अपवाद है और उप अनुच्छेद (1) किसी विद्यमान विधि या ऐसी विधि जो अन्य बातों के साथ-साथ सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए या सार्वजनिक प्रकार की हिंदुओं की धार्मिक संस्थाओं को हिंदुओं के सभी वर्गों और अनुभागों के लिए खोलने का उपबंध करने के लिए अधिनियमित की जाए, अधिकार को गारंटीकृत बनाती है। दूसरी ओर अनुच्छेद 26(ख) जहां तक धर्म के विषय का संबंध है पुनः लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए अपने धर्म विषयक कार्यों का प्रबंध करने के लिए प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या उसके अनुभाग को गारंटी प्रदान करता है और ऐसी विधि जो अनुच्छेद 25(2)(ख) के अधीन बनाई जाए, के अधीन रहते हुए इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित की जाए। अतः अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन गारंटीकृत अधिकार सीमित हैं और संवैधानिकतः अनुज्ञेय पैरामीटर के भीतर उपभोग किए जाने योग्य हैं। प्रायः ऐसे अवसर उद्भूत होते हैं जब यह अवधारित करना आवश्यक हो जाता है कि क्या दावाकृत और प्राख्यापित आस्था या आचरण किसी समूह या संप्रदाय के धार्मिक आचरण का मूल भाग है जिसके लिए ऐसे दावे के न्यायनिर्णयन की अपेक्षा होती है। ऐसे दावे का विनिश्चय करना संविधान न्यायालय का कर्तव्य हो जाता है। यह न तो आसान और न ही वांछनीय कार्य है जिसे

न्यायालय से करने की अपेक्षा की जाती है। ऐसे कार्य का पालन उसको प्रदत्त किसी एक्लीसियाई अधिकारिता के आधार पर न्यायालय में व्यादिष्ट नहीं है बल्कि यह संवैधानिकतः मध्यस्थ के रूप में इसकी भूमिका के रूप में है। कोई आशंका कि स्वयं आवश्यक धार्मिक आचरण का न्यायालय द्वारा अवधारण अनुच्छेद 25 और 26 द्वारा गारंटीकृत अधिकारों को अस्वीकार करता है, का खंडन संवैधानिक आवश्यकता की कसौटी पर करना होगा। ऐसे अवधारण के बिना कोई प्रभावी न्यायनिर्णयन नहीं हो सकता कि क्या द्वावाकृत अधिकार लोक व्यवस्था सदाचार और स्वास्थ्य के अनुरूप है और सामाजिक कल्याण और सुधार की अविवादित और अप्रश्नगत धारणा से संगत है। यह अभिनिर्धारित करते हुए हमेशा उचित संतुलन बनाया जा सकता है कि आवश्यक धार्मिक आचरण का अवधारण करने के लिए न्यायालयिक शक्ति का प्रयोग यद्यपि अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन हमेशा गारंटीकृत अधिकारों का संरक्षण करने के लिए अंतर्निहित शक्ति के रूप में उपलब्ध है किंतु उसका उपयोग हमेशा निर्बंधित और अवरुद्ध रूप में किया जाना चाहिए।

37. अनुच्छेद 16(5) जो आज तक वस्तुतः अदृश्य रहा, पर विचार किया जाना चाहिए, जो इस प्रकार है :-

“16(5) – इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी जो यह उपबंध करती है कि किसी धार्मिक या सांप्रदायिक संस्था के कार्यकलाप से संबंधित कोई पदधारी या उसके शासी निकाय का कोई सदस्य किसी विशिष्ट धर्म का मानने वाला या विशिष्ट संप्रदाय का ही हो।”

38. हमारे अनुसार, पूर्वोक्त उपबंध अर्थात् अनुच्छेद 16(5) को पढ़ने मात्र से, जिसकी पुष्टि ऐसी बहस द्वारा होती है जो संविधान सभा में हुई थी, किसी विशिष्ट संप्रदाय से अर्चक की नियुक्ति को संरक्षण प्रदान करता है यदि इस प्रकार उस विषय के आगमों द्वारा किया जाना अपेक्षित है। निर्दिष्ट संविधान सभा के बहस से यह प्रकट होता है कि यह सुझाव कि अनुच्छेद 16(5) का प्रवर्तन धार्मिक संस्था के प्रशासन से जुड़े पदों पर नियुक्ति के लिए ही निर्बंधित किया जाए, का खंडन किया गया। अतः अनुच्छेद 16(5) का अपवाद ऐसे मंदिर के पद को भी समाहित करता है जिसमें धार्मिक कृत्यों के पालन की भी अपेक्षा होती है। वस्तुतः यद्यपि उपरोक्त व्यक्ततः नहीं कहा गया है फिर भी **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा व्यक्त मतों के लिए एक आधार हो

सकता है ।

39. पूर्ववर्ती विचार-विमर्श उद्भूत मुद्दे की महत्ता और उसका हिंदू समाज पर प्रभाव के सहज परिणाम उपदर्शित करती है । अतः, यह यदि स्वविफलकारी नहीं फिर भी पूर्व न्याय के सिद्धांत को लागूकर या गुणागुण के आधार पर न्यायनिर्णयन का वर्जन कर या आक्षेपित सरकारी आदेश को कार्यपालिक आदेश के रूप में जिसे विधायी अनुमोदन नहीं है, को अभिखंडित कर समाधान के लिए पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण अपनाना गलत होगा । इस तथ्य द्वारा स्पष्ट किया गया है कि यद्यपि जो सरकारी आदेश तारीख 23 मई, 2006 द्वारा लाया गया है, अध्यादेश द्वारा कानून में सम्मिलित किए जाने की ईप्सा की गई थी जिसे अंततः विधायिका के समक्ष पेश संशोधनकारी विधेयक में विनिर्दिष्टतः पूर्वोक्त समामेलन का लोप किया गया था । तथापि, पूर्वोक्त तथ्य के महत्व की अनदेखी नहीं की जा सकती । इस पर बल देने की ईप्सा की गई है कि स्वयं द्वारा यह सरकारी आदेश की विधिमान्यता का अवधारक तत्व नहीं हो सकता है जिसका परीक्षण किसी विनिर्दिष्ट विधि द्वारा समाहित न किए गए क्षेत्र में कार्यपालक शक्ति के प्रयोग के दृष्टांत के रूप में इसे मानते हुए कतिपय अन्य आधारों पर करना होगा ।

40. संविधान के अनुच्छेद 17 के आधार पर उठाया गया अस्पृश्यता का मुद्दा पेंडुलम के बिल्कुल विपरीत है । संविधान का अनुच्छेद 17 अंधविश्वास और ऐसी धारणा पर आधारित जाति आधारित आचरण है जिसका कोई तर्क या आधार नहीं है । **गोपाला मूपनार** (उपरोक्त) वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा शतक पूर्व बनाई गई आगमों की व्याख्या कि गर्भगृह से अपवर्जन और पूजा करने का कर्तव्य केवल ब्राह्मणों तक है, महत्वपूर्ण है । **गोपाला मूपनार** (उपरोक्त) वाले मामले में ब्राह्मणों को भी अपवर्जन के संबंध में चिरभोग को भी श्री पार्थसारथी भट्टाचार्य की राय में दोहराया गया है जैसाकि यह **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा उल्लिखित है । ऐसा अपवर्जन जाति, जन्म या वंशावली के आधार पर नहीं है । अतः अनुच्छेद 17 और सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 के उपबंध वर्तमान मामले के लिए अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं । इसी प्रकार राज्य का अपने शपथपत्र में शिव मंदिरों में अर्चक के रूप में शैवायत और वैष्णव मंदिरों में वैष्णव को नियुक्त करने का 'प्रस्ताव' किसी ऐसे संप्रदाय के समझ के संदर्भ में अकृत्रिम है जिसे

शैवायत और वैष्णव दोनों अनुयायियों की दशा में उप-समूह की पहचान करना बहुत दुष्कर है। तथापि, इस बात की उपेक्षा नहीं की जा सकती जो उक्त प्रस्ताव में निहित 'स्वीकृति' है जिसका परिणाम आक्षेपित सरकारी आदेश में कुछ नमनीयता है जिसे स्वयं राज्य ने स्वीकार किया है।

41. **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाला मामला ऐसे किसी प्रतिपादना के लिए नजीर नहीं है कि क्या उस प्रश्न के बारे में मंदिरों के विशिष्ट या समूह को लागू आगम या आगमों के समूह में अधिकथित है जिस पर न्यायालय विचार कर रहा है कि क्या उपासकों या आस्तिकों के किसी विशिष्ट संप्रदाय के पास पूजा करने के लिए अर्चक की नियुक्ति करने का अनन्य अधिकार है। यही नहीं, क्या निर्णय में किसी विशिष्ट वर्ग या जाति पर ध्यान दिया है जिसमें से मंदिर के अर्चकों की नियुक्ति की जाए जैसा आगमों द्वारा विहित है। कुल मिलाकर इसका यह कहना है कि कुछ आगम किसी विशिष्ट और भिन्न पंथ/समूह/संप्रदाय के अर्चकों द्वारा पूजा करने की आवश्यकता की मूलभूत धार्मिक आस्था शामिल कर सकते हैं जिसके न हो सकने पर मूर्ति दूषित हो जाएगी जिसे शोधन समारोह द्वारा शुद्ध करने की अपेक्षा होगी। विशुद्धतः, यदि प्रश्नगत आगम में जाति या वर्ग के आधार पर नागरिकों के किसी समूह से अर्चक के रूप में नियुक्त किया जाना विहित नहीं है तो संविधान के अनुच्छेद 17 या भाग 3 के किसी अन्य उपबंध की पवित्रता या सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 का अतिक्रमण नहीं होगा। **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में जो कहा गया है वह यह है कि यदि अर्चकों की नियुक्ति के बारे में आगमों द्वारा कोई चिरभोग किया गया है तो तमिलनाडु अधिनियम की धारा 28 न्यासी बोर्ड मंदिर के कार्यों का संचालन ऐसी रूढ़ि या प्रथा के अनुसार करने का अधिदेश देती है। संवैधानिक संगतता की अपेक्षा अंतर्निहित है और यदि प्रथा या रूढ़ि अनुच्छेद 25 और 26 द्वारा दिए गए या परिकल्पित संरक्षणात्मक आवरण के बाहर है तो निश्चित रूप से विधि अपना अनुक्रम अपनाएगी। स्वभावतः, संवैधानिक विधिसम्मतता सभी धार्मिक आस्था या आचरणों का अतिक्रमण करती है।

42. दुरुहता संवैधानिक मूल्यों को समझने या पुनः उल्लिखित करने में नहीं है। तनिक भी संदेह नहीं है कि वे क्या हैं? किंतु यह अवधारित करने के लिए कि क्या उसके अग्रसरण में राज्य कार्रवाई का दावा अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन संवैधानिक प्रत्याभूतियों पर अभिभावी है, में प्रायः

यह अंतर्वलित हो सकता है कि क्या आवश्यक धार्मिक आस्था और आचरण की पहचान करने के संतुलित और दुरुह कार्य के रूप में जैसाकि यह पहले निर्दिष्ट है, जिसके बिना स्वयं धर्म अस्तित्व में नहीं रह सकता । यह इस कार्य के अनुपालन में है कि इस न्यायालय की किसी अनन्य कलीसियाई अधिकारिता का अभाव, यदि कोई अन्य खामी और अपर्याप्तता है जिसे महसूस किया जा सकता है । तथापि, आगमों में अंतर्विष्ट चिरभोग के बारे में कुछ हद तक अनिश्चितता है । उपरोक्त के साथ-साथ विषय पर सुस्थिर कार्य और स्वीकृत तथा अविवादित विद्वानों की संख्या की बिल्कुल अनुपलब्धता है । ऐसी स्थिति में उस मताभिव्यक्ति की याद आती है जो **शिरूर मठ** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायमूर्ति मुखर्जी द्वारा चेतावनी टिप्पण दिया गया है कि यह विनिश्चित करने के लिए संप्रदाय की संपूर्ण स्वायत्तता नहीं है कि कौन सी बात आवश्यक धार्मिक आचरण गठित करता है, यह विचार जो यद्यपि 'अल्पमत' के रूप में इस न्यायालय द्वारा बाद में उजागर किया गया है । किंतु शीघ्र ही हमें यह स्पष्ट करना चाहिए कि न्यायालय का ऐसे किसी मत को विवाद के न्यायिक अवधारण के किसी वर्जन के संकेत के रूप में नहीं समझा जा सकता जब कभी यह मुद्दा उद्भूत हो । कोई प्रतिकूल मत ऐसे दावों और रूढ़ियों के भारी पैमाने पर विरोध पैदा करेगा कि कौन-कौन सी बात धार्मिक आचरण का अभिन्न भाग है जिसके समाधान के लिए कोई स्वीकार्य या पर्याप्त मठ नहीं है । इसके अलावा **शिरूर मठ** (उपरोक्त) वाले मामले में अनुध्यात "संपूर्ण स्वायत्तता" और "बाहरी प्राधिकारी" के अर्थ को उस संदर्भ द्वंद्व ग्रस्त नहीं ठहराना चाहिए जिसमें विचार को पहले ही उद्धृत, अभिलिखित किया गया है (पृष्ठ 1028) । यह विनिश्चित करने के लिए कि आवश्यक धार्मिक आचरण क्या है, सभी "बाहरी प्राधिकारी" के अपवर्जन को स्वयं अनुच्छेद 25 और 26 द्वारा यथा परिकल्पित धार्मिक स्वतंत्रता से संबंधित मामलों में राज्य की सीमित भूमिका के संदर्भ में देखा जाना चाहिए न कि न्यायालयों को जो संवैधानिक अधिकारों और सिद्धांतों के निर्णायक हैं ।

43. तब अंतिम परिणाम क्या है ? उत्तर स्पष्ट समाधान का विरोध करता है और न्यायालय का यह विचारित मत है कि आक्षेपित सरकारी आदेश की विधिमान्यता या अन्यथा नियुक्ति के प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर होगा । यथावश्यक, किसी एकल या मंदिर समूह के लिए एक विशिष्ट या आगमों के समूह द्वारा विहित किया गया पाया जाना विवाद्यक

का निर्णायक तत्व होगा। इस संबंध में इस बात पर बल देना आवश्यक होगा जो पहले ही संविधान के अनुच्छेद 16(5) के प्रयोजन और आशय के संबंध में कहा गया है अर्थात् अर्चक के रूप में नियुक्ति के लिए किसी विशिष्ट वर्ग या संप्रदाय का कुछ अपवर्जन या समामेलन अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं करेगा जहां तक ऐसा समामेलन/अपवर्जन जाति, जन्म या किसी अन्य संवैधानिक अस्वीकार्य पैरामीटर के मापमान पर आधारित नहीं है। जहां तक किसी विशिष्ट आगम या आगमों के अधीन चिरभोग यथा उपरोक्त विमर्शित किसी संवैधानिक अधिदेश के प्रतिकूल नहीं है, इस आशय के खुल्लमखुल्ला आदेश द्वारा तारीख 23 मई, 2006 का आक्षेपित सरकारी आदेश कि 'ऐसा कोई व्यक्ति जो हिंदू है और अपेक्षित अर्हता और प्रशिक्षण रखता है की नियुक्ति हिंदू मंदिरों में अर्चक के रूप में की जा सकती है', **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिकथित उक्ति के विरुद्ध होना संभाव्य है। दावाकृत रूढ़ि और प्रथा का अवधारण अनिवार्य है और उस आलोक में यह है कि तारीख 23 मई, 2006 के आक्षेपित सरकारी आदेश की विधिमान्यता का विनिश्चय अर्चकों के नियुक्ति के प्रत्येक मामले में किया जाएगा जब कभी यह मुद्दा उठता है। भविष्य में विनिर्दिष्ट न्यायिक अधिनिर्णय की आवश्यकता अनिवार्य और अवांछनीय है; वर्तमान मामले की रूपरेखा और उद्भूत मुद्दों की यहां चर्चा की गई है।

44. परिणामतः और पूर्वोक्त विचार-विमर्श के आलोक में, हम यह दोहराते हुए अपने पूर्वोक्त निष्कर्ष, मताभिव्यक्ति और निदेशों के निबंधनानुसार सभी रिट याचिकाओं का निपटान करते हैं कि जैसा **शेषाम्मल** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, अर्चकों की नियुक्तियां उपरोक्त विमर्शित सिद्धांतों और संवैधानिक अधिदेशों के अनुरूप तथा उनके सम्यक् पहचान के अधीन रहते हुए आगमों के अनुसार की जाएं।

रिट याचिकाओं का निपटान किया गया।

पा.

दामोदर लाल

बनाम

सोहन देवी और अन्य

5 जनवरी, 2016

न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर और न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 – द्वितीय अपील – परिसर में किराएदार द्वारा संरचनात्मक परिवर्तन – स्वामी द्वारा बेदखली के लिए वाद – संरचनात्मक परिवर्तन के तथ्य संबंधी साक्ष्य के आधार पर विचारण न्यायालय द्वारा स्वामी के पक्ष में डिक्री – प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिपुष्टि – उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील में निचले न्यायालयों के तथ्य संबंधी समवर्ती निष्कर्षों को अनुचित ठहराते हुए अपील मंजूर किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील में विशुद्ध तथ्य के प्रश्न को उलटकर न्यायोचित नहीं किया गया है और इसे अपास्त करना उचित है ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 – द्वितीय अपील – विधि का सारवान् प्रश्न – उच्च न्यायालय द्वारा विरचित प्रश्न कि क्या निचले न्यायालयों द्वारा सारभूत संरचनात्मक परिवर्तन के आधार पर बेदखली की डिक्री प्रदान करके गलती की है या वादी के साक्षी कठघरे में हाजिर न होने पर प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए था, ये विधि के सारवान् प्रश्न नहीं हैं और चाहे तथ्य संबंधी निष्कर्ष गलत भी हों तो भी इस बात से स्वयमेव विधि के प्रश्न का गठन नहीं हो जाता, अतः उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण अनुचित न सही किंतु पूर्णतः गलत है ।

वादी-अपीलार्थी द्वारा परिवादी-प्रत्यर्थियों को किराए पर दिए परिसर में उनके द्वारा वादी की सहमति के बिना संरचनात्मक परिवर्तन किए गए, जिसके आधार पर वादी ने बेदखली के लिए वाद फाइल किया । विचारण न्यायालय ने दस्तावेजी साक्षी और साक्षियों के कथनों के आधार पर स्वामी के पक्ष में वाद डिक्री किया । प्रथम अपील न्यायालय में अपील किए जाने पर उसकी अभिपुष्टि की गई । प्रतिवादियों ने व्यथित होकर उच्च न्यायालय में अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते

हुए कि न्यायालय में साक्षी कठघरे में स्वयं वादी द्वारा कथन न करने के आधार पर निचले न्यायालयों द्वारा प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए था और इस परिस्थिति में सारभूत संरचनात्मक परिवर्तन का निष्कर्ष पूर्णतः अनुचित है और उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील को मंजूर करते हुए डिक्रीत वाद को खारिज कर दिया। वादी-अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की। उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय के समक्ष मामले में, वादी-अपीलार्थी की ओर से यह स्पष्ट और सटीक साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्यर्थियों को किराए पर दिए गए परिसरों में उसकी सहमति के बिना संरचनात्मक परिवर्तन किया गया है। प्रतिवादियों-प्रत्यर्थियों द्वारा अन्यथा सिद्ध करने के लिए किया गया प्रयत्न विचारण न्यायालय तथा प्रथम अपील न्यायालय ने पूर्ण रूप से अस्वीकार्य पाया है। किसी संपत्ति में सारभूत परिवर्तन ऐसा तथ्य नहीं है जो स्वामी के अनन्य/और व्यक्तिगत ज्ञान तक सीमित हो। यह साक्ष्य का विषय है, चाहे यह स्वयं स्वामी द्वारा दिया जाए या वादी की ओर से ऐसे किसी अन्य साक्षी द्वारा दिया जाए जो तथ्यों और स्थिति से परिचित हो। अभि. सा. 1 वादी का विक्रेता है, जो उसका मुख्तारनामा धारक भी है। उसने असंदिग्ध शब्दों में यह कथन किया है कि संपत्ति में किराया-करार का अतिक्रमण करते हुए संरचनात्मक परिवर्तन किया गया है। अभि. सा. 2 ने भी वादी के पक्षकथन का समर्थन किया है। यहां तक कि प्रतिवादियों की ओर से साक्षियों ने भी आंशिक रूप से यह स्वीकार किया है कि प्रतिवादियों ने कुछ संरचनात्मक परिवर्तन किए हैं। जो भी हो, यह प्रश्न कि क्या किराए पर दिए गए किसी परिसर में संरचनात्मक परिवर्तन किया गया है, ऐसा तथ्य नहीं है जो स्वामी के व्यक्तिगत ज्ञान तक सीमित हो। इसे किसी ग्राह्य और विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है। वादी द्वारा अभि. सा. 1 और 2 की परीक्षा कराकर इस भार का सफलतापूर्वक निर्वहन किया गया है। परिवादी इस साक्ष्य को उगमगा नहीं सके। वास्तव में, यह तथ्य आंशिक रूप से, एक स्वीकृत तथ्य के रूप में, स्वयं परिवादियों के साक्ष्य से साबित होता है। इसलिए, न केवल विचारण न्यायालय संरचनात्मक परिवर्तन किए जाने के निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचा, अपितु प्रथम अपील न्यायालय द्वारा भी साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने पर उस निष्कर्ष का समर्थन किया गया है और इसलिए उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील में उस निष्कर्ष को उलटकर न्यायोचित नहीं किया है जो विशुद्ध तथ्य का प्रश्न है। इस न्यायालय को यह उल्लेख करने में कोई

संकोच नहीं है कि उच्च न्यायालय द्वारा विरचित दोनों प्रश्न विधि के सारवान प्रश्न नहीं हैं। चाहे तथ्य का निष्कर्ष गलत हो, इस बात से ही विधि के प्रश्न का गठन नहीं किया जाएगा। गलत निष्कर्ष पूर्ण रूप से साक्ष्य के गलत वाचन के आधार पर निकाला गया होना चाहिए या यह कल्पना और अटकलबाजी पर आधारित होना चाहिए। अनुचितता पर सबसे सुरक्षित दृष्टिकोण तथ्यों पर युक्तिमान मनुष्य के निष्कर्ष का दृष्टिकोण श्रेष्ठ है। उसके दृष्टिकोण से, यदि साक्ष्य में आए तथ्यों के आधार पर निचले न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष संभव है, तो वहां कोई अनुचितता नहीं है। यदि संभव नहीं है, तो निष्कर्ष अनुचित है। साक्ष्य की अपर्याप्तता या साक्ष्य का भिन्न रूप से वाचन अनुचितता नहीं है। (पैरा 12 और 13)

यह कहना पर्याप्त होगा कि उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण अनुचित न भी हो, तो भी पूर्ण रूप से गलत है। उसे विशुद्ध तथ्य के प्रश्न पर विचारण न्यायालय और प्रथम अपील न्यायालय के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था। उनका तथ्यों पर निकाला गया निष्कर्ष निश्चित रूप से युक्तियुक्त है। उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील में एक भिन्न निष्कर्ष निकालने के लिए किया गया अस्वाभाविक प्रयास विधि के अधीन अननुज्ञेय होने के अतिरिक्त पूर्णतः अनावश्यक है। अतः, न्यायालय को इस अपील को मंजूर करने और उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को अपास्त करने तथा विचारण न्यायालय के निर्णय को जिसकी अपील न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है को प्रत्यावर्तित करने में कोई संकोच नहीं है। (पैरा 16)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2013]	(2013) 6 एस. सी. सी. 602 : एस. आर. तिवारी बनाम भारत संघ ;	15
[2010]	(2010) 15 एस. सी. सी. 530 : गुरवचन कौर और अन्य बनाम सालिकराम (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत ;	11
[2007]	(2007) 12 एस. सी. सी. 190 : कृष्ण बनाम बकियम और एक अन्य ;	10

- [2001] (2001) 4 एस. सी. सी. 262 :
कुलवंत कौर और अन्य बनाम गुरदयाल सिंह
मान (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत ; 14
- [1984] (1984) 4 एस. सी. सी. 635 :
राजिन्द्र कुमार किंद्रा बनाम सचिव (श्रमिक)
की मार्फत दिल्ली प्रशासन और अन्य । 15

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 की सिविल अपील सं. 231.

2000 की सिविल द्वितीय अपील सं. 109 में राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर की एकल न्यायपीठ के तारीख 27 सितम्बर, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

- अपीलार्थी की ओर से** सर्वश्री पल्लव शिशोदिया, ज्येष्ठ
अधिवक्ता, ऋषभ संचेती, (सुश्री)
पदमा प्रिया और टी. महीपाल
- प्रत्यर्थियों की ओर से** सर्वश्री सुब्रत बिरला और एस. सी.
बिरला

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ ने दिया ।

न्या. जोसेफ – तथ्यों से एक गरीब भू-स्वामी की दुर्दशा प्रकट होती है जो 24 वर्षों से अधिक समय से न्यायालयों में भटक रहा है । मामला और भी दुःखद हो जाता है जब हमने यह पाया कि अपीलार्थी विचारण न्यायालय और प्रथम अपील न्यायालय दोनों में सफल रहा है और सर्वाधिक दुःखद भाग यह है कि उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील में विशुद्ध तथ्य के प्रश्न पर उसके विरुद्ध निर्णय दिया है ।

2. अप्राधिकृत निर्माण/सारभूत परिवर्तन के आधार पर बेदखली के लिए 1974 के नियमित सिविल वाद सं. 191 में विरचित विवाद्यक सं. 3 का मुंसिफ न्यायालय, भीलवाड़ा, राजस्थान में तारीख 21 दिसम्बर, 1989 को विनिश्चय किया गया, जो निम्नलिखित प्रकार से है :-

“क्या किराएदार ने किराया करार के निबंधनों के विरुद्ध भूखंड की पहचान में स्थायी परिवर्तन करते हुए तद्द्वारा भूखंड पर स्थायी निर्माण किया है ?”

3. विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 1 और 2 तथा प्रति. सा. 1 से 4

के साक्ष्य का विश्लेषण और मूल्यांकन करने के पश्चात् विवादक पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला :-

“इस प्रकार दोनों पक्षों के सभी साक्षियों ने यह कथन किया है कि जब भूखंड किराए पर लिया गया था, उस समय भूखंड खाली था । विवादित भूखंड किराए पर लिया गया था । बाद में दिवारें विनिर्मित की गईं, चादरें डाली गईं और दुकान तथा गोदाम के रूप में उपयोग किया जाने लगा । आज तक भी भूखंड का उपयोग दुकान और गोदाम के रूप में किया जा रहा है ।”

4. इससे असंतुष्ट होकर किराएदार मामले को 1999 की सिविल अपील सं. 20 में अपर जिला न्यायाधीश-1, भीलवाड़ा, राजस्थान के न्यायालय में ले गए (अपील मूलतः तारीख 19 जनवरी, 1990 को जिला न्यायाधीश, भीलवाड़ा, राजस्थान के न्यायालय में प्रस्तुत की गई थी और उसके उपरांत अपर जिला न्यायाधीश को अंतरित की गई) । प्रथम अपील न्यायालय संपूर्ण साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने के पश्चात् तारीख 22 सितम्बर, 2000 के निर्णय में निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचा :-

“मेरी राय में, अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष जो साक्ष्य प्रस्तुत किया गया, विचारण न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई गलती नहीं की है कि किराएदार ने किराए पर ली गई जगह में संरचनात्मक परिवर्तन किया है । अपीलार्थी किराएदार यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सका कि संरचनात्मक परिवर्तन करने से पूर्व भू-स्वामी की सहमति ली गई थी।”

5. इन निष्कर्षों के आधार पर अपील खारिज कर दी गई । इस प्रकार, किराएदारों/प्रत्यर्थियों के विरुद्ध तथ्यों संबंधी दो निष्कर्ष हैं ।

6. किराएदार मामले को 2000 की द्वितीय अपील सं. 109 में राजस्थान उच्च न्यायालय के समक्ष ले गए और अपील तारीख 29 सितम्बर, 2012 के आक्षेपित निर्णय द्वारा मंजूर की गई । द्वितीय अपील में विरचित विधि के सारवान प्रश्न निम्नलिखित थे :-

“(1) इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में क्या विद्वान् निचले न्यायालयों ने सुसंगत बातों की अनदेखी करते हुए सारभूत परिवर्तन के आधार पर बेदखली की डिक्री प्रदान करने में गलती की है और असंगत बातों के आधार पर कार्यवाही की है ?

(2) इस मामले के तथ्यों के आधार पर क्या विद्वान् निचले न्यायालयों ने वादी दामोदर लाल की साक्षी कठघरे में गैर-हाजिरी के लिए प्रतिकूल निष्कर्ष न निकालने में गलती की है ?”

7. उच्च न्यायालय द्वितीय अपील में इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि न्यायालय के समक्ष वादी के कथन के अभाव में संरचनात्मक परिवर्तन के आधार पर समवर्ती निष्कर्ष को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है। उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि साक्षी कठघरे में वादी की गैर-हाजिरी के लिए प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए था और ऐसी परिस्थितियों में सारभूत परिवर्तन के आधार पर निकाला गया निष्कर्ष पूर्णतः अनुचित है। हम यह आवश्यक समझते हैं कि आक्षेपित निर्णय के सुसंगत भाग को उद्धृत किया जाए :-

“इस न्यायालय की सुविचारित राय में, वादी के कथन के अभाव में ऐसा निष्कर्ष विश्वसनीय या विधि के अनुरूप नहीं माना जा सकता है। विचारण न्यायालय साक्षी कठघरे में वादी की गैर-हाजिरी के लिए प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने के लिए आबद्ध था। इसके विपरीत, उसने अभि. सा. 1 रामेश्वर लाल, जो संपत्ति का पूर्ववर्ती स्वामी था और जिससे वादी ने उक्त संपत्ति खरीदी थी, के कथन का अवलंब लिया है।

अतः, सारभूत परिवर्तन के विवाद्यक पर विचारण न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष पूर्णतः अनुचित है और तर्कसंगत तथा विश्वसनीय साक्ष्य पर आधारित नहीं है। विचारण न्यायालय ने वादी दामोदर लाल के गैर-हाजिर रहने के लिए प्रतिकूल निष्कर्ष न निकालकर गंभीर गलती की है क्योंकि वह दस्तावेजी साक्ष्य को प्रस्तुत करके, जो रामेश्वर लाल द्वारा उसके पक्ष में निष्पादित विक्रय-विलेख है, और साथ ही अपने मौखिक कथन के आधार पर सारभूत परिवर्तन के तथ्य को साबित करने के लिए एकमात्र साक्षी था।”

8. और इस प्रकार उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील मंजूर की और बेदखली के लिए वाद खारिज कर दिया। भू-स्वामी व्यथित होकर सिविल अपील में हमारे समक्ष आया है।

9. ‘अनुचितता’ इस न्यायालय के बहुत सारे विनिश्चयों में विषयवस्तु रहा है। इस न्यायालय के कई विनिश्चयों द्वारा यह भी स्थिर किया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन प्रथम अपील

न्यायालय तथ्यों के संबंध में अंतिम न्यायालय है, जब तक कि साक्ष्य पर आधारित निष्कर्ष अनुचित न हों ।

10. **कृष्ण बनाम बकियम और एक अन्य¹** वाले मामले (पैरा 11) में यह अभिनिर्धारित किया गया है :-

“11. यह उल्लेखनीय है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के अधीन प्रथम अपील न्यायालय तथ्यों के संबंध में अंतिम न्यायालय है । उच्च न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के अधीन प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए तथ्य संबंधी निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है । निस्संदेह, प्रथम अपील न्यायालय के तथ्य संबंधी निष्कर्षों को द्वितीय अपील में इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि उक्त निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है या अनुचित हैं, किंतु उस मामले में भी उच्च न्यायालय द्वारा उस आशय का विधि का प्रश्न बनाया और विरचित किया जाना चाहिए।”

11. **गुरवचन कौर और अन्य बनाम सालिकराम (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत²** वाले मामले (पैरा 10) में इस सिद्धांत को दोहराया गया है :-

“10. यह स्थिर विधि है कि उच्च न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रथम अपील न्यायालय, जो तथ्य के संबंध में अंतिम न्यायालय है, द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्ष में तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकता है, जब तक कि वह निष्कर्ष अनुचित न पाया जाए । यह स्थिति होते हुए, यह अभिनिर्धारित करना होगा कि उच्च न्यायालय ने वादी और प्रतिवादी के बीच भू-स्वामी-किराएदार के संबंध की विद्यमानता और किराएदार द्वारा भाड़े के संदाय में किए गए व्यतिक्रम के विवादकों पर प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए तथ्य संबंधी निष्कर्ष को उलटकर न्यायोचित नहीं किया है ।”

12. हमारे समक्ष मामले में, वादी/अपीलार्थी की ओर से यह स्पष्ट

¹ (2007) 12 एस. सी. सी. 190.

² (2010) 15 एस. सी. सी. 530.

और सटीक साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्यर्थियों को किराए पर दिए गए परिसरों में उसकी सहमति के बिना संरचनात्मक परिवर्तन किया गया है। प्रतिवादियों/प्रत्यर्थियों द्वारा अन्यथा सिद्ध करने के लिए किया गया प्रयत्न विचारण न्यायालय तथा प्रथम अपील न्यायालय ने पूर्ण रूप से अस्वीकार्य पाया है। किसी संपत्ति में सारभूत परिवर्तन ऐसा तथ्य नहीं है जो स्वामी के अनन्य/और व्यक्तिगत ज्ञान तक सीमित हो। यह साक्ष्य का विषय है, चाहे यह स्वयं स्वामी द्वारा दिया जाए या वादी की ओर से ऐसे किसी अन्य साक्षी द्वारा दिया जाए जो तथ्यों और स्थिति से परिचित हो। अभि. सा. 1 वादी का विक्रेता है, जो उसका मुख्तारनामा धारक भी है। उसने असंदिग्ध शब्दों में यह कथन किया है कि संपत्ति में किराया-करार का अतिक्रमण करते हुए संरचनात्मक परिवर्तन किया गया है। अभि. सा. 2 ने भी वादी के पक्षकथन का समर्थन किया है। यहां तक कि प्रतिवादियों की ओर से साक्षियों ने भी आंशिक रूप से यह स्वीकार किया है कि प्रतिवादियों ने कुछ संरचनात्मक परिवर्तन किए हैं।

13. जो भी हो, यह प्रश्न कि क्या किराए पर दिए गए किसी परिसर में संरचनात्मक परिवर्तन किया गया है, ऐसा तथ्य नहीं है जो स्वामी के व्यक्तिगत ज्ञान तक सीमित हो। इसे किसी ग्राह्य और विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है। वादी द्वारा अभि. सा. 1 और 2 की परीक्षा कराकर इस भार का सफलतापूर्वक निर्वहन किया गया है। परिवादी इस साक्ष्य को डगमगा नहीं सके। वास्तव में, यह तथ्य आंशिक रूप से, एक स्वीकृत तथ्य के रूप में, स्वयं परिवादियों के साक्ष्य से साबित होता है। इसलिए, न केवल विचारण न्यायालय संरचनात्मक परिवर्तन किए जाने के निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचा, अपितु प्रथम अपील न्यायालय द्वारा भी साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने पर उस निष्कर्ष का समर्थन किया गया है और इसलिए उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील में उस निष्कर्ष को उलटकर न्यायोचित नहीं किया है जो विशुद्ध तथ्य का प्रश्न है। हमें यह उल्लेख करने में कोई संकोच नहीं है कि उच्च न्यायालय द्वारा विरचित दोनों विधि के प्रश्न विधि के सारवान् प्रश्न नहीं हैं। चाहे तथ्य का निष्कर्ष गलत हो, इस बात से ही विधि के प्रश्न का गठन नहीं किया जाएगा। गलत निष्कर्ष पूर्ण रूप से साक्ष्य के गलत वाचन के आधार पर निकाला गया होना चाहिए या यह कल्पना और अटकलबाजी पर आधारित होना चाहिए। अनुचितता पर सबसे सुरक्षित दृष्टिकोण तथ्यों पर युक्तिमान मनुष्य के निष्कर्ष का दृष्टिकोण श्रेष्ठ है। उसके दृष्टिकोण से, यदि साक्ष्य में आए तथ्यों के

आधार पर निचले न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष संभव है, तो वहां कोई अनुचितता नहीं है। यदि संभव नहीं है, तो निष्कर्ष अनुचित है। साक्ष्य की अपर्याप्तता या साक्ष्य का भिन्न रूप से वाचन अनुचितता नहीं है।

14. कुलवंत कौर और अन्य बनाम गुरदयाल सिंह मान (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत¹ वाले मामले में इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय की द्वितीय अपील में हस्तक्षेप की सीमित गुंजाइश पर विचार किया था। पैरा 34 उद्धृत करना होगा :-

“34. स्वीकृततः, धारा 100 में उच्च न्यायालय की द्वितीय अपील में अधिकारिता के प्रयोग पर निश्चित निर्बंधन पुरःस्थापित किया गया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा ऐसे निश्चित उद्देश्यों के लिए ऐसी रोक पुरःस्थापित की गई है और चूंकि हमें इस संबंध में और आगे जांच करने की आवश्यकता नहीं है इसलिए हम इसके विस्तार में नहीं जाते हैं, किंतु वास्तविकता यह है कि यह सत्य है कि तथ्य के किसी निष्कर्ष में द्वितीय अपील में साधारणतया विघ्न नहीं डाला जाएगा चाहे यह त्रुटिपूर्ण हो, किंतु जहां यह पाया जाता है कि ऐसे निष्कर्ष गलत परीक्षण के आधार पर और धारणाओं तथा अटकलबाजी के आधार पर दूषित हो जाते हैं और परिणामस्वरूप उसमें अनुचितता का तत्व अंतर्वलित है, वहां हमारे मत में उच्च न्यायालय को ऐसे विवाद्यक पर विचार करने की अधिकारिता होगी। तथापि, यह केवल उस स्थिति में होगा जब उच्च न्यायालय द्वारा ऐसे तथ्य को स्पष्ट रूप से उजागर किया जाए और न्याय की धारणा के संदर्भ में अनुचितता के विवाद्यक के बारे में निर्णय भी स्पष्ट होना चाहिए। तथापि, यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अनुचितता न्यायनिर्णयन किए जाने योग्य स्वयमेव एक सारवान् प्रश्न है— आवश्यक यह है कि अनुचितता के बारे में उच्च न्यायालय का निष्कर्ष स्पष्ट होना चाहिए। इस संदर्भ में संहिता की धारा 103 के प्रतिनिर्देश किया जाना होगा, जो निम्नलिखित प्रकार से है —

‘103. यदि अभिलेख में का साक्ष्य पर्याप्त हो तो किसी भी द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय ऐसी अपील के निपटारे के लिए आवश्यक कोई विवाद्यक अवधारित कर सकेगा, जो —

¹ (2001) 4 एस. सी. सी. 262.

(क) निचले अपील न्यायालय द्वारा या प्रथम बार के न्यायालय और निचले अपील न्यायालय दोनों द्वारा अवधारित नहीं किया गया है, अथवा

(ख) धारा 100 में यथा निर्दिष्ट विधि के ऐसे प्रश्न के विनिश्चय के कारण ऐसे न्यायालय या न्यायालयों द्वारा गलत तौर पर अवधारित किया गया है ।¹

अपेक्षाओं को धारा 100 में विनिर्दिष्ट किया गया है और इनमें किसी कमी के न होने पर यह धारा 100 की परिधि के अंतर्गत आ जाएगी चूंकि अनुचितता का विवाद्यक भी ऊपर यथा उल्लिखित विधि के सारवान् प्रश्न की परिधि के अंतर्गत आएगा । तथ्य के निष्कर्ष की वैधता सिवाय विधि के प्रश्न के नहीं मानी जा सकती है ।

तथापि, हम यह दोहराते हैं कि उच्च न्यायालय के निर्णय में इस आशय का एक निश्चित निष्कर्ष का होना आवश्यक है ताकि यह स्पष्ट हो सके कि संहिता की धारा 100 का अनुपालन किया गया है ।²

15. **एस. आर. तिवारी बनाम भारत संघ¹** वाले मामले में **राजिन्द्र कुमार किंद्रा बनाम सचिव (श्रमिक) की मार्फत दिल्ली प्रशासन और अन्य²** वाले मामले के विनिश्चय से आरंभ करते हुए इस न्यायालय में विनिश्चयों को निर्दिष्ट करने के पश्चात् पैरा 30 में यह अभिनिर्धारित किया गया :-

“30. किसी न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्षों को अनुचित ठहराया जा सकता है यदि ऐसे निष्कर्ष सुसंगत सामग्री को अनदेखा या अपवर्जित करके या असंगत/अग्राह्य सामग्री पर विचार करते हुए निकाले गए हैं । निष्कर्ष तब भी अनुचित कहा जा सकता है यदि यह ‘साक्ष्य के बल’ के विरुद्ध है, या यदि निष्कर्ष इतने अन्यायपूर्ण रूप से अतार्किक हो कि यह तर्कहीनता के दोष से ग्रसित हो । यदि कोई विनिश्चय कोई साक्ष्य न होने या पूरी तरह से अविश्वसनीय साक्ष्य के आधार पर किया जाता है और कोई युक्तियुक्त व्यक्ति उस पर कार्रवाई नहीं करेगा, तो ऐसा आदेश अनुचित होगा । किंतु यदि अभिलेख पर कुछ ऐसा साक्ष्य है जो

¹ (2013) 6 एस. सी. सी. 602.

² (1984) 4 एस. सी. सी. 635.

स्वीकार्य है और जिस पर विश्वास किया जा सकता है, तब निष्कर्षों को अनुचित नहीं कहलाएंगे और निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा। (राजिन्द्र कुमार किंद्रा **बनाम** दिल्ली प्रशासन [(1984) 4 एस. सी. सी. 635 = 1985 एस. सी. सी. (एल एंड एस) 131 = ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1805], कुलदीप सिंह **बनाम** पुलिस आयुक्त [(1999) 2 एस. सी. सी. 10 = 1999 एस. सी. सी. (एल एंड एस) 429 = ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 677], जामिनी बाला कोटेश्वर राव **बनाम** आंध्र प्रदेश राज्य [(2009) 10 एस. सी. सी. 636 = (2010) 1 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 372 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 589] और बाबू **बनाम** केरल राज्य [(2010) 9 एस. सी. सी. 189 = (2010) 3 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 1179]।”

इस न्यायालय ने अनुचितता के अन्य पहलुओं पर भी विचार किया है।

16. हम अन्य निर्णयों की चर्चा करना नहीं चाहते, हालांकि इस विवादात्मक पर प्रचुर मात्रा में स्थिर निर्णयज विधि है। यह कहना पर्याप्त होगा कि उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण अनुचित न भी हो, तो भी पूर्ण रूप से गलत है। उसे विशुद्ध तथ्य के प्रश्न पर विचारण न्यायालय और प्रथम अपील न्यायालय के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था। उनका तथ्यों पर निकाला गया निष्कर्ष निश्चित रूप से युक्तियुक्त है। उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील में एक भिन्न निष्कर्ष निकालने के लिए किया गया अस्वाभाविक प्रयास विधि के अधीन अननुज्ञेय होने के अतिरिक्त पूर्णतः अनावश्यक है। अतः, हमें इस अपील को मंजूर करने और उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को अपास्त करने तथा विचारण न्यायालय के निर्णय को जिसकी अपील न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है को प्रत्यावर्तित करने में कोई संकोच नहीं है।

17. इस प्रक्रम पर, प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसिल ने परिसर खाली करने के लिए कुछ युक्तियुक्त समय देने की प्रार्थना करते हुए यह निवेदन किया कि परिसर में चलाए जा रहे काष्ठ और फर्नीचर के कारबार की प्रकृति को देखते हुए उन्हें आनुकल्पिक अवस्थान/आवास ढूंढने के लिए कुछ समय चाहिए। इस मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह मत है कि प्रत्यर्थियों को 31 मार्च, 2017 तक का समय दिया जाए, जो अपीलार्थी को भी स्वीकार है, हालांकि आधे-अधूरे मन से। प्रत्यर्थियों को निदेश दिया

जाता है कि वे इस न्यायालय में सामान्य वचनबंध फाइल करें और 10,000/- रुपए प्रतिमाह की दर से उपयोग तथा अधिभोग प्रभार का संदाय भी जारी रखें। वचनबंध के निबंधनों के किसी प्रकार के व्यतिक्रम या अतिक्रमण की दशा में न्यायालय अवमान के दायित्व के अतिरिक्त डिक्री तुरंत निष्पादनीय होगी।

18. यह अपील 25,000/- रुपए के खर्चे सहित उपरोक्त अनुसार मंजूर की जाती है।

अपील मंजूर की गई।

जस.

[2016] 2 उम. नि. प. 115

कृष्ण चन्दर

बनाम

दिल्ली राज्य

6 जनवरी, 2016

मुख्य न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर और न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) – धारा 7 और 13(1)(घ) [सपटित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 145 और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 161 और 162] – रिश्वत – अभियुक्त-पुलिस कांस्टेबल द्वारा अभिकथित रूप से शिकायतकर्ता से रिश्वत की मांग किया जाना – शिकायतकर्ता का अपनी प्रतिपरीक्षा में अभियुक्त द्वारा रिश्वत की मांग और स्वीकृति के पहलू पर पक्षद्रोही हो जाना – धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन अपराध का गठन करने के लिए अभियुक्त द्वारा रिश्वत की मांग और स्वीकृति के पहलू को साबित करना अनिवार्य है और चूंकि साक्षियों के विरोधाभासी साक्ष्यों से रिश्वत की मांग और स्वीकृति की बात साबित नहीं होती, इसलिए निचले न्यायालयों द्वारा की गई अभियुक्त की दोषसिद्धि को अपास्त करना उचित होगा।

शिकायतकर्ता-जय भगवान के भाई कृष्ण कुमार के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की कतिपय धाराओं के अधीन पुलिस थाना, नागलोई में प्रथम

इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई थी । कृष्ण कुमार को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में निर्दिष्ट अभिकथित अपराधों के संबंध में गिरफ्तार किया गया । शिकायतकर्ता-जय भगवान अपने भाई को जमानत पर छोड़ने के लिए उक्त मामले के अन्वेषक अधिकारी के पास गया । अन्वेषक अधिकारी ने कथित रूप से कृष्ण कुमार को जमानत पर छोड़ने के लिए जमानत बंधपत्र स्वीकार किया और अपीलार्थी-अभियुक्त उक्त पुलिस थाने के कांस्टेबल को उसे जमानत पर छोड़ने का निदेश दिया । अपीलार्थी-अभियुक्त ने शिकायतकर्ता-जय भगवान से उसके भाई कृष्ण कुमार को जमानत पर छोड़ने के लिए अभिकथित रूप से 5,000/- रुपए की रिश्वत की मांग की । शिकायतकर्ता-जय भगवान ने विबाध्यता अधीन अपीलार्थी को अभिकथित रूप से 4,000/- रुपए रिश्वत के रूप में संदत्त कर दिए । उसके पश्चात् कृष्ण कुमार को जमानत पर छोड़ दिया गया और अपीलार्थी-अभियुक्त ने शिकायतकर्ता-जय भगवान से कहा कि वह 1,000/- रुपए की बकाया रकम उसे तारीख 30 जुलाई, 2004 को ढिचाऊ कलां बस अड्डा, नजफगढ़ पर अपराहन में 6.00 और 7.00 बजे के बीच संदाय कर दे । शिकायतकर्ता-जय भगवान तारीख 30 जुलाई, 2004 को भ्रष्टाचार निरोध शाखा के कार्यालय में गया और अपीलार्थी द्वारा उससे रिश्वत की मांग करने के संबंध में एक लिखित शिकायत दी । एक छापामार दल का गठन किया गया । अनूप कुमार वर्मा को पंच साक्षी बनाया गया । शिकायतकर्ता-जय भगवान, पंच साक्षी अनूप कुमार वर्मा और छापामार दल के अन्य सदस्यों के साथ एक सरकारी यान में ढिचाऊ कलां बस अड्डे के लिए रवाना हुए और अपराहन में 5.45 बजे घटनास्थल पर पहुंचे । अपराहन में लगभग 7.00 बजे अपीलार्थी-अभियुक्त घटनास्थल पर आया और शिकायतकर्ता-जय भगवान के साथ बातचीत की । शिकायतकर्ता और अपीलार्थी दोनों एक पानी की ट्रॉली की ओर गए, पानी पिया और फिर बातचीत करने लगे । पंच साक्षी अनूप कुमार वर्मा उनके पीछे-पीछे गया । कुछ समय के पश्चात् शिकायतकर्ता-जय भगवान ने अपनी कमीज की बाईं जेब से दूषित सरकारी करंसी नोट निकाले और अपीलार्थी को दिए, जो उसने अपने दाएं हाथ से लिए और उनको अपनी कमीज की दाईं जेब में रखा । उक्त संव्यवहार के ठीक पश्चात् पंच साक्षी अनूप कुमार वर्मा ने छापामार दल को पूर्व-निर्धारित संकेत किया और संकेत मिलने पर दल घटनास्थल की ओर दौड़ा और अपीलार्थी-अभियुक्त से दूषित करंसी नोट बरामद करने के और अन्य कार्यवाहियां पूरी करने के पश्चात् अपीलार्थी को गिरफ्तार किया गया और उसके विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के साथ

पठित धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई। विद्वान् विशेष न्यायाधीश ने अभिलेख पर के साक्ष्य की परीक्षा करने के पश्चात् अपीलार्थी-अभियुक्त को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया। अपीलार्थी-अभियुक्त ने विद्वान् विशेष न्यायाधीश के विनिश्चय से व्यथित होकर दिल्ली उच्च न्यायालय, नई दिल्ली के समक्ष विभिन्न आधारों पर जोर देते हुए दांडिक अपील फाइल की। उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा विद्वान् विशेष न्यायाधीश के विनिश्चय को कायम रखा। अपीलार्थी-अभियुक्त ने व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की। उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रस्तुत मामले में, अभिलेख की सामग्री से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि शिकायतकर्ता-जय भगवान दो महत्वपूर्ण पहलुओं अर्थात् अपीलार्थी द्वारा रिश्वत की मांग करने और स्वीकार करने की बात पर पक्षद्रोही हो गया, जो कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन अभिकथित अपराध गठित करने और अपीलार्थी को दोषसिद्ध ठहराने तथा उसे ऊपर उल्लिखित अनुसार दंडादिष्ट करने के लिए अनिवार्य पहलू हैं। अनूप कुमार वर्मा ने अपनी मुख्य परीक्षा में हू-ब-हू उस बातचीत के बारे में अभिसाक्ष्य नहीं दिया जो अपीलार्थी और शिकायतकर्ता-जय भगवान के बीच तब हुई थी जब वह अपीलार्थी के पास रिश्वत का धन देने के लिए गया था। इस साक्षी ने उनके बीच 'कुछ बातचीत' होने के बारे में तो उल्लेख किया है, किंतु अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता-जय भगवान से रिश्वत की मांग करने के तथ्य को उजागर करने में असफल रहा है। इस प्रकार, यह पूर्णतः स्पष्ट है कि पंच साक्षी-अनूप कुमार वर्मा ने अपीलार्थी और शिकायतकर्ता-जय भगवान के बीच हुई बातचीत नहीं सुनी थी। अतः, दोनों निचले न्यायालयों के पास यह निष्कर्ष निकालने का कोई कारण नहीं था कि अपीलार्थी ने शिकायतकर्ता-जय भगवान से किसी रिश्वत की मांग की थी। अन्वेषक अधिकारी ने अपने साक्ष्य में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन उसके द्वारा अभिलिखित किए गए शिकायतकर्ता-जय भगवान के कथन की अंतर्वस्तुओं के बारे में कुछ भी नहीं कहा है। इसके अतिरिक्त, लोक अभियोजक द्वारा अभि. सा. 2 की धारा 161 के अधीन किए गए कथन के संबंध में की गई प्रतिपरीक्षा में दिए गए उत्तरों, जिनके सुसंगत भागों को उसकी प्रतिपरीक्षा में चिह्नित किया गया है और उक्त कथन करने की बात से उसके द्वारा इनकार किया गया है, को ध्यान में रखते हुए अभियोजन पक्ष को अभि.

सा. 2 के कथनों को अन्वेषक अधिकारी के माध्यम से इस तथ्य को दर्शित करने के लिए साबित करना चाहिए था कि अभि. सा. 2, जय भगवान ने अपने साक्ष्य में अन्वेषक अधिकारी को अन्वेषण के समय उसके विपरीत कथन किया था और इसलिए मुख्य परीक्षा में उसके साक्ष्य का कोई साक्ष्यिक महत्व नहीं है। अभियोजन पक्ष द्वारा इसका उपयोग भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 145 का पूर्णतः पालन करते हुए किया जा सकता था। इसलिए अन्वेषक अधिकारी को अपने साक्ष्य में अभि. सा. 2 के उपरोक्त कथनों पर यह साबित करने के लिए बताना चाहिए था कि उसने धारा 161 के अधीन किए गए अपने पूर्ववर्ती कथनों में विरोधाभासी कथन किए हैं और इसलिए उसके साक्ष्य को अभियोजन के पक्षकथन को साबित करने के लिए त्यक्त नहीं किया जा सकता है। अभि. सा. 10, मामले में के अन्वेषक अधिकारी के साक्ष्य के परिशीलन से यह बात पूरी तरह से स्पष्ट हो जाती है कि अभियोजन पक्ष द्वारा इस बात को साबित नहीं किया गया है। इस प्रकार, अभि. सा. 2 की प्रतिपरीक्षा में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन किए गए कथन से चिह्नित उसके कथनों को मामले में साबित किया गया नहीं कहा जा सकता है जिससे कि आरोप पर निष्कर्ष अभिलिखित करने के लिए उसके साक्ष्य का अवलंब लिया जा सके। शिकायतकर्ता-जय भगवान के साक्ष्य, अपीलार्थी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपनी परीक्षा में किए गए कथनों तथा अनूप कुमार वर्मा और निरीक्षक-सुंदर देव के साक्ष्य का सावधानीपूर्वक वाचन करने के पश्चात् यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता-जय भगवान से रिश्वत के धन की कोई मांग नहीं की गई थी। विधि की यह सुस्थिर स्थिति है कि अभियुक्त को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्धि करने के लिए रिश्वत के धन की मांग करना अनिवार्य है। (पैरा 28, 29, 30, 31 और 34)

उपर्युक्त कारणों को ध्यान में रखते हुए, इस मामले में विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों का दृष्टिकोण गलत है क्योंकि दोनों न्यायालयों ने अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता-जय भगवान से अवैध परितोषण की मांग के पहलू पर अभियोजन पक्ष के साक्ष्य का अवलंब लिया है, यद्यपि इस संबंध में कोई सारभूत साक्ष्य नहीं है और अपीलार्थी को उसके विरुद्ध विरचित आरोपों के लिए गलत रूप से दोषसिद्ध किया गया है। अभियोजन पक्ष अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता-जय भगवान से की गई रिश्वत के धन की मांग के तथ्य को साबित करने में असफल रहा है, जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 और 13(1)(घ)

के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए उसे दोषसिद्ध करने के लिए अनिवार्य है। इस प्रकार, उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय और आदेश न केवल गलत है अपितु विधि की दृष्टि से भी त्रुटियुक्त है और इसलिए यह अपास्त किए जाने योग्य है। (पैरा 36)

अवलंबित निर्णय

	पैरा
[2015] (2015) 9 एस. सी. सी. 588 : वी. के. मिश्रा बनाम उत्तराखंड राज्य ;	31
[2014] (2014) 13 एस. सी. सी. 143 : सतवीर सिंह बनाम दिल्ली राज्य ।	35

निर्दिष्ट निर्णय

[2015] (2015) 10 एस. सी. सी. 152 : पी. सत्यनारायण मूर्ति बनाम जिला पुलिस निरीक्षक, आंध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य ;	15, 34
[2014] (2014) 13 एस. सी. सी. 55 : बी. जयराज बनाम आंध्र प्रदेश राज्य ;	15, 34
[2011] (2011) 6 एस. सी. सी. 450 : केरल राज्य और एक अन्य बनाम सी. पी. राव ;	15
[2009] (2009) 6 एस. सी. सी. 587 : ए. सुबैर बनाम केरल राज्य ;	15, 34
[1977] [1977] 3 उम. नि. प. 814 = (1976) 4 एस. सी. सी. 233 : रबिन्द्र कुमार डे बनाम उड़ीसा राज्य ;	28
[1976] [1976] 2 उम. नि. प. 1233 = ए. आई. आर. 1976 एस. सी. 294 : सतपाल बनाम दिल्ली प्रशासन ।	21, 22

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2016 की दांडिक अपील सं. 14.

2008 की दांडिक अपील सं. 634 में दिल्ली उच्च न्यायालय, नई दिल्ली द्वारा तारीख 7 नवम्बर, 2014 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से

श्री सिद्धार्थ लूथरा, ज्येष्ठ अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से

श्री पी. एस. पटवालिया, अपर महा
सालीसिटर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा ने दिया ।

न्या. गौड़ा – इजाजत दी गई ।

2. यह दांडिक अपील दिल्ली उच्च न्यायालय, नई दिल्ली द्वारा 2008 की दांडिक अपील सं. 634 में तारीख 7 नवम्बर, 2014 को पारित उस आक्षेपित निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई है, जिसमें उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील खारिज कर दी और विशेष न्यायाधीश, दिल्ली के न्यायालय (जिसे संक्षेप में आगे विचारण न्यायालय कहा गया है) द्वारा 2005 के भ्रष्टाचार मामला सं. 21 में अपीलार्थी के विरुद्ध पारित किए गए दोषसिद्धि और दंडादेश के आदेश को कायम रखा । विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को अपने तारीख 14 जुलाई, 2008 के निर्णय द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया और तारीख 15 जुलाई, 2008 के आदेश द्वारा उसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए 5,000/- रुपए के जुर्माने सहित दो वर्ष का कठोर कारावास भोगने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर दो माह का अतिरिक्त साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया । उसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन दंडनीय अपराध के लिए भी 5,000/- रुपए के जुर्माने सहित दो वर्ष का कठोर कारावास भोगने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर दो माह का अतिरिक्त साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया । उपर्युक्त अपराधों के लिए उस पर अधिरोपित दोनों दंडादेश साथ-साथ चलने थे ।

3. पक्षकारों की ओर से दी गई विरोधी विधिक दलीलों का मूल्यांकन करने के लिए मामले के तथ्यों का संक्षेप में नीचे उल्लेख किया जाता है ।

4. विचारण न्यायालय के समक्ष अभियोजन का पक्षकथन यह था कि तारीख 29 जुलाई, 2004 को पुलिस थाना, नागलोई में शिकायतकर्ता-जय भगवान (अभि. सा. 2) के भाई कृष्ण कुमार (अभि. सा. 9) के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 279 और 337 के अधीन 2004 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 662 दर्ज की गई । कृष्ण कुमार को उपर्युक्त प्रथम

इत्तिला रिपोर्ट में निर्दिष्ट अभिकथित अपराधों के संबंध में तारीख 29 जुलाई, 2004 को गिरफ्तार किया गया ।

5. शिकायतकर्ता-जय भगवान (अभि. सा. 2) कृष्ण कुमार को जमानत पर छोड़ने के लिए उक्त मामले के अन्वेषक अधिकारी सहायक उप निरीक्षक, रणबीर सिंह (अभि. सा. 11) के पास गया । अन्वेषक अधिकारी ने कथित रूप से कृष्ण कुमार को जमानत पर छोड़ने के लिए जमानत बंधपत्र स्वीकार किया और अपीलार्थी (उक्त पुलिस थाने का एक कांस्टेबल) को उसे ऊपर निर्दिष्ट अभिकथित अपराधों के संबंध में जमानत पर छोड़ने का निदेश दिया ।

6. अपीलार्थी ने शिकायतकर्ता-जय भगवान से उसके भाई कृष्ण कुमार को जमानत पर छोड़ने के लिए अभिकथित रूप से 5,000/- रुपए की रिश्वत की मांग की । यह अभिकथित है कि शिकायतकर्ता-जय भगवान (अभि. सा. 2) ने विबाध्यता अधीन अपीलार्थी को 4,000/- रुपए रिश्वत के रूप में संदत्त किए । उसके पश्चात् कृष्ण कुमार (अभि. सा. 9) को जमानत पर छोड़ दिया गया और अपीलार्थी ने शिकायतकर्ता-जय भगवान से कहा कि वह 1,000/- रुपए की बकाया रकम उसे तारीख 30 जुलाई, 2004 को ढिचाऊ कलां बस अड्डा, नजफगढ़ पर अपराहन में 6.00 और 7.00 बजे के बीच संदाय कर दे ।

7. शिकायतकर्ता-जय भगवान (अभि. सा. 2) तारीख 30 जुलाई, 2004 को भ्रष्टाचार निरोध शाखा के कार्यालय में गया और अपीलार्थी द्वारा उससे रिश्वत की मांग करने के संबंध में एक लिखित शिकायत दी । उक्त लिखित शिकायत को सुंदर देव (अभि. सा. 12) द्वारा अनूप कुमार वर्मा (अभि. सा. 6) की मौजूदगी में अभिलिखित किया गया ।

8. शिकायतकर्ता-जय भगवान ने 500/- रुपए के दो सरकारी करंसी नोट अपने साथ लिए और उन्हें निरीक्षक सुंदर देव (अभि. सा. 12) को सौंप दिया और उसने उक्त सरकारी करंसी नोटों के संख्यांक लिख लिए । उसके पश्चात् उक्त सरकारी करंसी नोटों पर फेनोलफेथालियन पाउडर लगाया गया और छापा-पूर्व कार्यवाहियों में अभिलिखित किया गया तथा इसके आशय को प्रदर्शित किया गया । दूषित सरकारी करंसी नोट शिकायतकर्ता-जय भगवान को दिए गए और उसने ये नोट अपनी कमीज की बाईं जेब में रख लिए ।

9. पंच साक्षी अनूप कुमार वर्मा (अभि. सा. 6) को अनुदेशानुसार शिकायतकर्ता-जय भगवान और अपीलार्थी के बीच होने वाली बातचीत

सुनने के लिए शिकायतकर्ता-जय भगवान के समीप रहने का निदेश दिया गया । उसे यह भी अनुदेश दिया गया कि जब शिकायतकर्ता-जय भगवान द्वारा वस्तुतः रिश्वत की रकम दी जाए तब वह अपने सिर के ऊपर से अपना हाथ हिलाकर छापामार दल को संकेत कर दे ।

10. शिकायतकर्ता-जय भगवान, पक्ष साक्षी अनूप कुमार वर्मा, निरीक्षक सुंदर देव (अभि. सा. 12), उप निरीक्षक बी. एस. यादव (अभि. सा. 10) और कांस्टेबल राजीव कुमार (अभि. सा. 5) छापामार दल के अन्य सदस्यों के साथ एक सरकारी यान में ढिंवाऊ कलां बस अड्डे के लिए रवाना हुए और अपराह्न में 5.45 बजे घटनास्थल पर पहुंचे । अपराह्न में लगभग 7.00 बजे अपीलार्थी घटनास्थल पर आया और शिकायतकर्ता-जय भगवान के साथ बातचीत की । शिकायतकर्ता और अपीलार्थी दोनों एक पानी की ट्रॉली की ओर गए, पानी पिया और फिर बातचीत करने लगे । पंच साक्षी अनूप कुमार वर्मा उनके पीछे-पीछे गया । कुछ समय के पश्चात् शिकायतकर्ता-जय भगवान ने अपनी कमीज की बाईं जेब से दूषित सरकारी करंसी नोट निकाले और अपीलार्थी को दिए, जो उसने अपने दाएं हाथ से लिए और उनको अपनी कमीज की दाईं जेब में रखा । उक्त संव्यवहार के ठीक पश्चात् पंच साक्षी अनूप कुमार वर्मा ने छापामार दल को पूर्व-निर्धारित संकेत किया और संकेत मिलने पर दल घटनास्थल की ओर दौड़ा ।

11. अनूप कुमार वर्मा ने छापामार दल को सूचित किया कि अपीलार्थी ने शिकायतकर्ता-जय भगवान से 1,000/- रुपए रिश्वत के धन की मांग की थी और इसे स्वीकार किया था । निरीक्षक सुंदर देव ने अपीलार्थी को भ्रष्टाचार निरोध शाखा के निरीक्षक के रूप में अपना परिचय कराया, इस पर अपीलार्थी ने तुरंत अपनी कमीज की जेब से दाएं हाथ से दूषित सरकारी करंसी नोट निकाले और उन्हें जमीन पर फेंक दिया । निरीक्षक सुंदर देव के अनुदेश पर उक्त करंसी नोटों को पंच साक्षी अनूप कुमार वर्मा द्वारा जमीन से उठाया गया । इन बरामद करंसी नोटों के संख्यांक का मिलान छापा-पूर्व कार्यवाहियों में नोट किए गए संख्यांक से किया गया । अपीलार्थी के दाएं और बाएं हाथ को तथा उसकी कमीज की बाएं जेब को सोडियम कार्बोनेट के बदरंग घोल में धोया गया, जो धोने पर गुलाबी हो गया । घोल को साफ शीशे की बोतलों में डाला गया और उन्हें मुद्राबंद किया गया और लेबल लगाया गया । उसके पश्चात् अपीलार्थी को गिरफ्तार किया गया और उसके विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन दंडनीय

अपराधों के लिए 2004 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 36 रजिस्ट्रीकृत की गई ।

12. विद्वान् विशेष न्यायाधीश ने अभिलेख पर के साक्ष्य की परीक्षा करने के पश्चात् तारीख 14 जुलाई, 2008 के अपने निर्णय द्वारा अपीलार्थी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया और तारीख 15 जुलाई, 2008 के आदेश द्वारा उसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए 5,000/- रुपए के जुर्माने सहित दो वर्ष का कठोर कारावास भोगने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर दो माह का अतिरिक्त साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया । उसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन दंडनीय अपराध के लिए भी 5,000/- रुपए के जुर्माने सहित दो वर्ष का कठोर कारावास भोगने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर दो माह का अतिरिक्त साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया । उपर्युक्त अपराधों के लिए उस पर अधिरोपित दोनों दंडादेश साथ-साथ चलने थे ।

13. अपीलार्थी ने विद्वान् विशेष न्यायाधीश के विनिश्चय से व्यथित होकर दिल्ली उच्च न्यायालय, नई दिल्ली के समक्ष विभिन्न आधारों पर जोर देते हुए 2008 की दांडिक अपील सं. 634 फाइल की । उच्च न्यायालय ने तारीख 7 नवम्बर, 2014 के अपने निर्णय और आदेश द्वारा विद्वान् विशेष न्यायाधीश के विनिश्चय को कायम रखा । इस अपील में उच्च न्यायालय के निर्णय की शुद्धता को विभिन्न आधारों पर जोर देते हुए प्रश्नगत किया गया है ।

14. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल श्री सिद्धार्थ लूथरा ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय इस तथ्य का मूल्यांकन करने में असफल रहा कि घटना के समय कृष्ण कुमार (अभि. सा. 9) को 2004 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 662 में रजिस्ट्रीकृत मामले के संबंध में अपीलार्थी द्वारा रणबीर सिंह, सहायक उप निरीक्षक (अभि. सा. 11) के निदेशानुसार पहले ही जमानत पर छोड़ दिया गया था । इस प्रकार, अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता-जय भगवान से 1,000/- रुपए रिश्वत के धन की मांग करना अत्यधिक अनधिसंभाव्य है ।

15. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल द्वारा यह भी दलील दी गई कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन अपराध का गठन करने के लिए अवैध परितोषण की मांग करना

अनिवार्य है। रिश्वत की मांग के सबूत के बिना अपीलार्थी से बरामद दूषित धन के साथ-साथ फिनोलफेथालियन परीक्षण का सकारात्मक परिणाम प्रस्तुत करना ही अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए आरोप की दोषिता को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है। उपरोक्त विधिक दलील के समर्थन में विद्वान् काउंसिल ने **बी. जयराज बनाम आंध्र प्रदेश राज्य¹, ए. सुबैर बनाम केरल राज्य² और केरल राज्य और एक अन्य बनाम सी. पी. राव³** वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों का अवलंब लिया, जिनमें इस न्यायालय ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 और 13(1)(घ) का निर्वचन करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि भ्रष्टाचार के मामले में अभियुक्त को उपर्युक्त अपराधों के लिए दंडित करने के लिए उसके द्वारा रिश्वत के धन की मांग करना अनिवार्य है। विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल ने **पी. सत्यनारायण मूर्ति बनाम जिला पुलिस निरीक्षक, आंध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य⁴** वाले मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ, जिसमें मैं भी सम्मिलित था, के विनिश्चय का भी अवलंब लिया, जिसमें इस न्यायालय ने अभियुक्त द्वारा रिश्वत के धन की मांग करने की आवश्यकता के प्रश्न पर पूर्वोक्त दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के निर्णयों को निर्दिष्ट करने के पश्चात् ऊपर उल्लिखित मत को दोहराया है।

16. विद्वान् काउंसिल द्वारा यह भी दलील दी गई कि उच्च न्यायालय इस तथ्य का मूल्यांकन करने में असफल रहा कि शिकायतकर्ता-जय भगवान विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी परीक्षा के दौरान पक्षद्रोही हो गया और अभियोजन के इस पक्षकथन का समर्थन नहीं किया कि अपीलार्थी द्वारा कृष्ण कुमार (अभि. सा. 9) को जमानत पर छोड़ने के लिए उसके द्वारा उससे अवैध परितोषण के रूप में 1,000/- रुपए की मांग की गई थी।

17. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल द्वारा यह भी दलील दी गई कि उच्च न्यायालय अभिलेख के इस साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने में असफल रहा कि भ्रष्टाचार निरोध शाखा के पदधारियों द्वारा पंच साक्षी-अनूप कुमार वर्मा को अपीलार्थी और शिकायतकर्ता-जय भगवान के बीच बातचीत को सुनने और उनके बीच संव्यवहार को देखने के लिए शिकायतकर्ता-जय भगवान

¹ (2014) 13 एस. सी. सी. 55.

² (2009) 6 एस. सी. सी. 587.

³ (2011) 6 एस. सी. सी. 450.

⁴ (2015) 10 एस. सी. सी. 152.

के साथ-साथ रहने का निदेश दिया गया था । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने आगे यह दलील दी कि विद्वान् विशेष न्यायाधीश तथा उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार किए बिना गलत निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी घटनास्थल पर पहुंचने के पश्चात् शिकायतकर्ता-जय भगवान के साथ लगभग 15 से 20 कदम परस्पर बातचीत करते हुए चला था । उसके पश्चात् दोनों पानी की ट्रॉली की ओर गए और पानी पीने के पश्चात् आगे गए । इस समय के दौरान शिकायतकर्ता-जय भगवान ने अपनी जेब से दूषित करंसी नोट निकाले और अपीलार्थी को दिए । उक्त साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि पंच साक्षी-अनूप कुमार वर्मा ने अपीलार्थी और शिकायतकर्ता-जय भगवान के बीच हुई बातचीत नहीं सुनी थी । इसलिए इस निष्कर्ष पर पहुंचने का कोई कारण नहीं था कि अपीलार्थी ने शिकायतकर्ता-जय भगवान से किसी रिश्वत की मांग की थी ।

18. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने आगे यह दलील दी कि मामला, जिसमें कृष्ण कुमार की गिरफ्तारी हुई थी, उसमें रणबीर सिंह, सहायक उप निरीक्षक अन्वेषक अधिकारी था और उसने जमानत बंधपत्र स्वीकार किया था और अपीलार्थी को उसे छोड़ने का निदेश दिया था । यह एक स्वीकृत तथ्य है कि कृष्ण कुमार को रणबीर सिंह, सहायक उप निरीक्षक की मौजूदगी में और उसके निदेशानुसार जमानत पर छोड़ा गया था । इसलिए अपीलार्थी के पास शिकायतकर्ता-जय भगवान से रिश्वत के धन की मांग करने का कोई अवसर नहीं था ।

19. आगे यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय इस तथ्य का मूल्यांकन करने में असफल रहा कि 1,000/- रुपए की अभिकथित मांग और स्वीकृति की किसी स्वतंत्र साक्षी द्वारा इस तथ्य के बावजूद संपुष्टि नहीं होती है कि संव्यवहार अभिकथित रूप से सार्वजनिक स्थान पर हुआ था ।

20. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् अपर महा सालीसिटर श्री पी. एस. पटवालिया ने यह ईप्सा की कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आक्षेपित निर्णय और आदेश न्यायोचित है जो कि अभिलेख के साक्ष्य का उचित मूल्यांकन करके पारित किया गया है और यह पूरी तरह से सकारण है, इसलिए विधि की दृष्टि से दूषित नहीं है । अतः, उसने यह दलील दी कि इस न्यायालय द्वारा अपीलार्थी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

21. विद्वान् अपर महा-सालीसिटर ने यह दलील दी कि उच्च

न्यायालय ने शिकायतकर्ता-जय भगवान और अन्य अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य का ठीक प्रकार से पुनर्मूल्यांकन किया है और आरोपों के आधार पर अभिलिखित निष्कर्षों से सहमति व्यक्त की है। उसके द्वारा आगे यह दलील दी गई कि विचारण न्यायालय ने शिकायतकर्ता-जय भगवान के साक्ष्य का मूल्यांकन करते हुए **सतपाल** बनाम **दिल्ली प्रशासन**¹ वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया। अपीलार्थी के विरुद्ध आरोपों के आधार पर निष्कर्ष अभिलिखित करते हुए उक्त विनिश्चय का पैरा 41 और 51 यहां नीचे उद्धृत किए जाते हैं :-

“इस विचार में जो गलती अंतर्निहित है, वह इस उपधारणा से उत्पन्न होती है कि किसी साक्षी की प्रतिपरीक्षा करने का एकमात्र प्रयोजन उसे अविश्वसनीय ठहराना होता है ; वह इस स्पष्ट सच्चाई की उपेक्षा करती है कि प्रतिपरीक्षा का समान रूप से एक दूसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य उन तथ्यों की स्वीकृति कराना होता है जो कि प्रतिपरीक्षा करने वाले के पक्षकथन को मजबूत बनाने में सहायक होंगे। जब कोई पक्षकार न्यायालय की इजाजत से अपने ही साक्षी की उसके पूर्ववर्ती असंगत कथन को उसके समक्ष पेश करता है, तो वह इस आशा से ऐसा करता है कि वह साक्षी अपनी उस बात पर आ जाए जो कुछ उसने पहले कहा था। यदि पहले वाले कथन से विचलन हुआ है, वह जानबूझकर नहीं है, बल्कि त्रुटिपूर्ण स्मरण शक्ति या उसी प्रकार के किसी अन्य कारण हैं, तो ऐसी संभावना होती है कि ऐसा साक्षी अपने पहले वाले कथन के आस-पास पहुंच जाए। इस प्रकार से ऐसी साक्षी की दशा में, स्मरण शक्ति की त्रुटि दर्शित करना साक्षी बुलाने वाले पक्षकार द्वारा उसकी प्रतिपरीक्षा करने और उसका प्रतिविरोध करने का एक दूसरा उद्देश्य होगा। संक्षेप में, किसी पक्षकार को अपने ही साक्षी की प्रतिपरीक्षा करने और उससे सूचक रूप में प्रश्न करने के लिए प्रतिषिद्ध करने वाला नियम इसलिए शिथिल नहीं हो जाता, क्योंकि ऐसे साक्षी ने पहले ही अपने को विश्वसनीय साबित करने वाला अधिकार त्याग दिया है, बल्कि इसलिए क्योंकि उसके विरोधी रुख के कारण या अन्यथा न्यायालय यह महसूस करता है कि न्याय करने के लिए अधिक तीखे, चुभते और खोजपूर्ण ढंग से प्रश्न प्रस्तुत करके उसके साक्ष्य से अधिक प्रभावशाली ढंग से सच्चाई का पता लगाया जा सकता है तथा

¹ [1976] 2 उम. नि. प. 1233 = ए. आई. आर. 1976 एस. सी. 294.

उसकी विश्वसनीयता को यथायोग्य कसौटी पर कसा जा सकता है ।

* * * * *

51. उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो गई है कि दांडिक अभियोजन में भी जहां कि न्यायालय की इजाजत से साक्षी को बुलाने वाला पक्षकार उसकी प्रतिपरीक्षा करता है और उसका प्रतिविरोध करता है, वहां विधि के तौर पर उसके साक्ष्य के बारे में यह नहीं माना जा सकता है कि वह अभिलेख पर से पूर्णतः समाप्त हो गया है । प्रत्येक मामले में तथ्यों पर विचार करने वाले न्यायाधीश पर यह निर्भर है कि क्या ऐसी प्रतिपरीक्षा और प्रतिविरोध के परिणामस्वरूप साक्षी पूरी तरह से अविश्वसनीय हो गया है या उसके साक्ष्य के किसी भाग के संबंध में उस पर अभी भी विश्वास किया जा सकता है । यदि न्यायाधीश यह निष्कर्ष निकालता है कि प्रक्रिया के दौरान साक्षी का साक्ष्य पूरी तरह से समाप्त नहीं हुआ है, तो वह साक्षी के साक्ष्य को समझने और उस पर विचार करने के बाद, संपूर्णतः, सम्यक् सावधानी के साथ, अभिलेख पर के अन्य साक्ष्य के संदर्भ में, उसके परिसाक्ष्य के उस भाग को स्वीकार कर सकेगा जिसके बारे में वह यह निष्कर्ष निकालता है कि वह विश्वसनीय है और उसके अनुसार कार्रवाई कर सकेगा । यदि किसी विशिष्ट मामले में किसी साक्षी के संपूर्ण परिसाक्ष्य पर आक्षेप किया गया है और प्रक्रिया के दौरान वह साक्षी उचित रूप से और पूरी तरह से अविश्वसनीय ठहराया गया है, तो न्यायाधीश को चाहिए कि वह प्रज्ञा के तौर पर उसके साक्ष्य को पूरी तरह से त्याग दे ।”

22. आगे यह दलील दी गई कि विचारण न्यायालय ने **सतपाल** (उपरोक्त) वाले मामले का अवलंब लेकर शिकायतकर्ता-जय भगवान के परिसाक्ष्य के एक भाग को विश्वसनीय पाया और यह अभिनिर्धारित किया कि यह कहा जा सकता है कि अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता-जय भगवान से उसके भाई कृष्ण कुमार (अभि. सा. 9) को जमानत पर छोड़ने के लिए रिश्वत के धन की मांग साबित होती है । विद्वान् अपर महा-सालीसिटर ने विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निम्नलिखित निष्कर्ष और कारणों का अवलंब लिया, जिसके पैरा 16 का सुसंगत भाग इस प्रकार है :-

“16.यह सत्य है कि शिकायतकर्ता ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन अभिलिखित अपने कथन के बारे में पूर्ण रूप से इसके निबंधनों के अनुसार साक्ष्य नहीं दिया और उसे

पक्षद्रोही घोषित किया गया तथा न्यायालय की इजाजत से उसकी प्रतिपरीक्षा की गई । किंतु केवल इस कारण से कि उसने पूर्णतः अभियोजन के पक्षकथन के अनुसार साक्ष्य नहीं दिया, इसका यह अर्थ नहीं है कि अभिलेख से उसके कथन पूरी तरह से समाप्त हो गया है ।”

अतः, उसने यह दलील दी कि अपीलार्थी के विरुद्ध विरचित आरोपों पर विचारण न्यायालय का विनिश्चय अभिलेख पर के साक्ष्य के उचित मूल्यांकन पर आधारित है और जिसे उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही स्वीकार किया गया । इसलिए इस विनिश्चय को विधि की दृष्टि से गलत नहीं कहा जा सकता है और इस न्यायालय को अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

23. विद्वान् अपर महा-सालीसिटर द्वारा यह भी दलील दी गई कि यद्यपि शिकायतकर्ता-जय भगवान पक्षद्रोही साक्षी हो गया और उसने विचारण न्यायालय के समक्ष यह कथन करते हुए अभिसाक्ष्य दिया कि उसने दूषित करंसी नोटों को अपीलार्थी की कमीज की बाईं जेब में डाल दिया था । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनूप कुमार वर्मा और निरीक्षक सुंदर देव के साक्ष्य से अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन होता है, जिन्होंने शिकायतकर्ता-जय भगवान (अभि. सा. 2) द्वारा अपनी मुख्य परीक्षा में दिए गए बयान को समाप्त कर दिया है ।

24. विद्वान् अपर महा-सालीसिटर ने यह भी दलील दी कि जहां तक अपीलार्थी द्वारा अवैध परितोषण के रूप में की गई 1,000/- रुपए की मांग के सबूत का संबंध है, विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए ठीक ही यह तथ्य का निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि अपीलार्थी को ढिंढाऊ कलां, नजफगढ़ बस अड्डे पर रिश्वत का धन स्वीकार करते हुए रंगे हाथ पकड़ा गया था और यह साक्ष्य यह दर्शित करने के लिए पर्याप्त है कि शिकायतकर्ता-जय भगवान (अभि. सा. 2) को अपीलार्थी द्वारा कृष्ण कुमार (अभि. सा. 9) को जमानत पर छोड़ने के लिए अवैध परितोषण के रूप में उक्त रकम लाने के लिए कहा गया था ।

25. हमने अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल श्री सिद्धार्थ लूथरा और प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् अपर महा-सालीसिटर को सावधानीपूर्वक सुना । मामले के तथ्यात्मक और विधिक पहलुओं तथा मामले में प्रस्तुत अभिलेख पर साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश में अपीलार्थी के विरुद्ध विरचित आरोपों पर समवर्ती निष्कर्ष अभिलिखित किया है । वह अभिलेख पर साक्ष्य का उचित

रूप से पुनर्मूल्यांकन करने और मामले के सुसंगत पहलू संबंधी विधि पर भी विचार करने में असफल रहा है। इसलिए उक्त निष्कर्ष विधि की दृष्टि से केवल गलत ही नहीं अपितु त्रुटियुक्त भी है। अतः, ये अपास्त किए जाने योग्य है।

26. हमारा यह मत है कि क्योंकि शिकायतकर्ता-जय भगवान ने विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी मुख्य परीक्षा में स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि उसके भाई कृष्ण कुमार (अभि. सा. 9) को 2004 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 662 में उसके विरुद्ध रजिस्ट्रीकृत अपराधों के संबंध में जमानत पर छोड़ने के लिए 5,000/- रुपए की मांग रणबीर सिंह, सहायक उप निरीक्षक (अभि. सा. 11) ने की थी, इसलिए विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को दोषसिद्ध करने के लिए आरोपों के आधार पर ऐसे निष्कर्ष अभिलिखित करते समय शिकायतकर्ता-जय भगवान के परिसाक्ष्य के एक भाग को गलत रूप से स्वीकार किया है, जब कि अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि अपीलार्थी ही वह व्यक्ति था जिसने शिकायतकर्ता-जय भगवान से रिश्वत के धन की मांग की थी। उसने विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी मुख्य परीक्षा में स्पष्ट तौर पर यह कथन किया है :-

“.....एक पुलिस अधिकारी जो सादी वर्दी में था, जो इस मामले का अन्वेषक अधिकारी था, पुलिस थाने में मुझे मिला और मुझे कहा कि मुझे अपनी भाई की जमानत के लिए 5,000/- रुपए खर्च करने होंगे।.....उस अन्वेषक अधिकारी के निदेश पर मैंने अभियुक्त कृष्ण कुमार को विबाध्य होकर 4,000/- रुपए दिए। उस अन्वेषक अधिकारी ने मुझे कहा कि वह शेष 1,000/- रुपए की रकम लेने के लिए अभियुक्त कृष्ण को नजफगढ़ भेजेगा।”

विचारण के दौरान उक्त साक्षी ने अभियोजन के वृत्तांत का समर्थन नहीं किया और इसलिए उसे पक्षद्रोही साक्षी घोषित किया गया और उसके पश्चात् विद्वान् अपर लोक अभियोजक, श्री आलोक सक्सेना द्वारा उसकी निम्नलिखित आशय की प्रतिपरीक्षा की गई :-

“मैंने अपनी शिकायत में यह उल्लेख नहीं किया था कि सहायक उप निरीक्षक रणबीर सिंह ने कांस्टेबल कृष्ण कुमार से मेरे भाई को छोड़ने के लिए कहा था और वह स्वयं ही किसी अन्य काम से गया था और मैंने कांस्टेबल कृष्ण कुमार से मेरे भाई को छोड़ने के

लिए अनुरोध किया और उसने मुझसे मेरे भाई को छोड़ने के लिए 5,000/- रुपए की मांग की (उसकी शिकायत प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए के भाग ए से ए का सामना कराया गया) । यह कहना असत्य है कि अभियुक्त कृष्ण कुमार ने मुझसे 5,000/- रुपए की मांग की थी और आज मैं एक मिथ्या अभिवाक् कर रहा हूँ कि एक अन्वेषक अधिकारी ने मुझसे अभियुक्त को बचाने के लिए 5,000/- रुपए की मांग की थीमैंने पुलिस को यह नहीं बताया था कि पंच साक्षियों से संकेत मिलने पर छापा मारने वाला अधिकारी मेरे निकट आया और अभियुक्त को ललकारा कि उसने मुझसे रिश्वत के रूप में 1,000/- रुपए लिए हैं और इस पर अभियुक्त घबरा गया और उसने उन उपचारित करंसी नोटों को अपनी जेब से निकाला और उन्हें जमीन पर फेंक दिया (उसके अभिलिखित कथन प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/एच के भाग बी से बी के साथ सामना कराया गया) ।”

उसने यह भी कथन किया है कि :-

“यह कहना असत्य है कि अभियुक्त कृष्ण ने अपने दाएं हाथ से मुझसे रिश्वत स्वीकार की थी और उसे अपनी जेब में रख लिया था । यह कहना भी असत्य है कि मैं मिथ्या अभिसाक्ष्य दे रहा हूँ ।”

उच्च न्यायालय ने इस साक्ष्य का भी गलत रूप से मूल्यांकन किया और यह अभिनिर्धारित किया :-

“23.जहां तक 1,000/- रुपए की रिश्वत की मांग का संबंध है, अपीलार्थी द्वारा इसकी भानपूर्वक स्वीकृति को, जैसा कि पहले उल्लेख किया है, अभि. सा. 6 द्वारा साबित किया गया है और अभि. सा. 12 द्वारा पूरी तरह से उसकी संपुष्टि की गई है ।”

27. रणबीर सिंह, सहायक उप निरीक्षक (अभि. सा. 11), जो कृष्ण कुमार के विरुद्ध रजिस्ट्रीकृत उपरोक्त मामले का अन्वेषक अधिकारी है, के साक्ष्य पर विचार करते हैं । उसने विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी मुख्य परीक्षा में निम्नलिखित कथन किया :-

“श्री कृष्ण का चिकित्सीय परीक्षण कराने के पश्चात् अभियुक्त उसे पुलिस थाना, नागलोई लाया । उस समय पुलिस थाने में श्री कृष्ण की कोई प्रतिभू प्रस्तुत नहीं की गई थी । लगभग एक घंटे के पश्चात् श्री कृष्ण का भाई जय भगवान पुलिस थाना, नागलोई आया और अपने भाई श्री कृष्ण का जमानत बंधपत्र प्रस्तुत किया ।

मैंने अपराह्न में 10.00 बजे श्री कृष्ण का जमानत बंधपत्र स्वीकार किया और श्री कृष्ण को छोड़ने के लिए अभियुक्त को निदेश दिया । मैंने पुलिस थाना, नागलोई में अपराह्न 11.55 बजे दोबारा रिपोर्ट की और डीडी सं. 29/ए, तारीख 29.7.2004 द्वारा प्रविष्टि की । मैंने इसी डीडी में श्री कृष्ण की गिरफ्तारी और छोड़े जाने के बारे में भी अभिलिखित किया, हालांकि मैंने श्री कृष्ण के प्रतिभू बंधपत्र इसी डीडी में स्वीकार किया था, हालांकि मैंने श्री कृष्ण का प्रतिभू बंधपत्र तारीख 29 जुलाई, 2004 को अपराह्न में 10.00 बजे स्वीकार किया था ।”

इस साक्षी के साक्ष्य के कथन में उल्लिखित उपर्युक्त स्वीकृत तथ्यों से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि रणबीर सिंह, सहायक उप निरीक्षक वह व्यक्ति था जिसने कृष्ण कुमार को छोड़ने के लिए अपीलार्थी को निदेश दिया था । इसलिए उसे जमानत पर छोड़ने के समय अपीलार्थी के पास शिकायतकर्ता-जय भगवान से रिश्वत के धन की मांग करने का कोई अवसर नहीं था क्योंकि कृष्ण कुमार को उपरोक्त आपराधिक मामले में रणबीर सिंह, सहायक उप निरीक्षक (अभि. सा. 11) द्वारा पहले ही छोड़ा जा चुका था ।

28. हम विद्वान् अपर महा-सालीसिटर द्वारा दी गई उपरोक्त इन दलीलों से सहमत नहीं हैं कि शिकायतकर्ता-जय भगवान विचारण न्यायालय के समक्ष मामले में पक्षद्रोही हो गया था, तथापि, अनूप कुमार वर्मा (अभि. सा. 6) और निरीक्षक सुंदर देव (अभि. सा. 12) के साक्ष्य का विवरण अपीलार्थी द्वारा जय भगवान (अभि. सा. 2) से रिश्वत की रकम स्वीकार करने के संबंध में अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन करने के लिए पर्याप्त है । इस न्यायालय का यह मत है कि जब कभी कोई अभियोजन साक्षी पक्षद्रोही हो जाता है, तो उसके परिसाक्ष्य को पूरी तरह से त्यक्त नहीं किया जा सकता है । इस संबंध में, अपर महा-सालीसिटर द्वारा **रबिन्द्र कुमार डे बनाम उड़ीसा राज्य¹** वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया गया है । पूर्वोक्त मामले का सुसंगत पैरा 12 इस प्रकार है :-

“12. यह भी स्पष्ट रूप से सुस्थिर है कि मात्र यह तथ्य कि

¹ [1977] 3 उम. नि. प. 814 = (1976) 4 एस. सी. सी. 233.

साक्षी को उसे बुलाने वाले पक्षकार द्वारा पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है और उसकी प्रतिपरीक्षा करने के लिए अनुज्ञात कर दिया गया है, उसे अविश्वसनीय साक्षी नहीं बना देता, जिससे कि उसके साक्ष्य पर विचार करने से उसे पूर्ण रूप से अपवर्जित कर दिया जाए । भगवान सिंह बनाम हरियाणा राज्य [(1976) 4 उम. नि. प. 395] वाले मामले में इस न्यायालय की ओर से बोलते हुए न्यायाधिपति भगवती ने यह मत व्यक्त किया था,—

‘अभियोजन पक्ष को साक्ष्य अधिनियम की धारा 154 के अधीन साक्षी की प्रतिपरीक्षा करने की अनुज्ञा के लिए अनुरोध करने से बचाया जाना चाहिए था । किंतु यह तथ्य कि न्यायालय ने अभियोजन पक्ष को उसके अपने साक्षी की प्रतिपरीक्षा करने की अनुज्ञा दे दी थी, इस प्रकार से उसे इस नाम से पुकारा गया जिसे पक्षद्रोही साक्षी के रूप में परिभाषित किया गया है । वह पूर्ण रूप से उसके साक्ष्य को समाप्त नहीं कर देता । वह साक्ष्य विचारण में ग्राह्य रहता है और उसके परिसाक्ष्य पर यदि वह अन्य विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा संपुष्ट हो जाता है, तो दोषसिद्धि को आधारित करने का कोई विधिक वर्जन नहीं है ।’

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया ।)

तथापि, प्रस्तुत मामले में, अभिलेख की सामग्री से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि शिकायतकर्ता-जय भगवान दो महत्वपूर्ण पहलुओं अर्थात् अपीलार्थी द्वारा रिश्वत की मांग करने और स्वीकार करने की बात पर पक्षद्रोही हो गया, जो कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन अभिकथित अपराध गठित करने और अपीलार्थी को दोषसिद्ध ठहराने तथा उसे ऊपर उल्लिखित अनुसार दंडादिष्ट करने के लिए अनिवार्य पहलू हैं ।

29. जहां तक पंच साक्षी-अनूप कुमार वर्मा (अभि. सा. 6) के साक्ष्य का संबंध है, उसने अपनी मुख्य परीक्षा में निम्नलिखित कथन किया है :-

“.....उसके पश्चात् शिकायतकर्ता और अभियुक्त 15-20 कदम चले और शिकायतकर्ता के साथ कुछ बातचीत की तथा शिकायतकर्ता ने वह सरकारी करंसी नोट अपनी जेब से निकाले और अभियुक्त के दाएं हाथ में दिए, जो उसने अपनी कमीज की बाईं जेब में रख लिए.....।”

अनूप कुमार वर्मा (अभि. सा. 6) ने अपनी मुख्य परीक्षा में उस हू-ब-हू बातचीत के बारे में अभिसाक्ष्य नहीं दिया जो अपीलार्थी और शिकायतकर्ता-जय भगवान के बीच तब हुई थी जब वह अपीलार्थी के पास रिश्वत का धन देने के लिए गया था। इस साक्षी ने उनके बीच “कुछ बातचीत” होने के बारे में तो उल्लेख किया है, किंतु अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता-जय भगवान से रिश्वत की मांग करने के तथ्य को उजागर करने में असफल रहा है। इस प्रकार, यह पूर्णतः स्पष्ट है कि पंच साक्षी-अनूप कुमार वर्मा ने अपीलार्थी और शिकायतकर्ता-जय भगवान के बीच हुई बातचीत नहीं सुनी थी। अतः, दोनों निचले न्यायालयों के पास यह निष्कर्ष निकालने का कोई कारण नहीं था कि अपीलार्थी ने शिकायतकर्ता-जय भगवान से किसी रिश्वत की मांग की थी।

30. अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 10) ने अपने साक्ष्य में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन उसके द्वारा अभिलिखित किए गए शिकायतकर्ता-जय भगवान (अभि. सा. 2) के कथन की अंतर्वस्तुओं के बारे में कुछ भी नहीं कहा है। इसके अतिरिक्त, लोक अभियोजक द्वारा अभि. सा. 2 की धारा 161 के अधीन किए गए कथन के संबंध में की गई प्रतिपरीक्षा में दिए गए उत्तरों, जिनके सुसंगत भागों को उसकी प्रतिपरीक्षा में चिह्नित किया गया है और उक्त कथन करने की बात से उसके द्वारा इनकार किया गया है, को ध्यान में रखते हुए अभियोजन पक्ष को अभि. सा. 2 के कथनों को अन्वेषक अधिकारी के माध्यम से इस तथ्य को दर्शित करने के लिए साबित करना चाहिए था कि अभि. सा. 2 जय भगवान ने अपने साक्ष्य में अन्वेषक अधिकारी को अन्वेषण के समय प्रतिकूल कथन किया था और इसलिए मुख्य परीक्षा में उसके साक्ष्य का कोई साक्ष्यिक महत्व नहीं है। अभियोजन पक्ष द्वारा इसका उपयोग भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 145 का पूर्णतः पालन करते हुए किया जा सकता था। इसलिए अन्वेषक अधिकारी को अपने साक्ष्य में अभि. सा. 2 के उपरोक्त कथनों पर यह साबित करने के लिए बताना चाहिए था कि उसने धारा 161 के अधीन किए अपने पूर्ववर्ती कथनों में विरोधाभासी कथन किए हैं और इसलिए उसके साक्ष्य को अभियोजन के पक्षकथन को साबित करने के लिए त्यक्त नहीं किया जा सकता है।

31. अभि. सा. 10, मामले में के अन्वेषक अधिकारी के साक्ष्य के परिशीलन से यह बात पूरी तरह से स्पष्ट हो जाती है कि अभियोजन पक्ष द्वारा इसे साबित नहीं किया गया है। इस प्रकार, अभि. सा. 2 की

प्रतिपरीक्षा में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन किए गए कथन से चिह्नित उसके कथनों को मामले में साबित किया गया नहीं कहा जा सकता है जिससे कि आरोप पर निष्कर्ष अभिलिखित करने के लिए उसके साक्ष्य का अवलंब लिया जा सके। **वी. के. मिश्रा बनाम उत्तराखंड राज्य**¹ वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा इस संबंध में स्थिति को भली-भांति स्थिर किया गया है। सुसंगत पैराओं को इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है :-

“16. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 में पुलिस द्वारा लेखबद्ध साक्षियों के कथन का उपयोग इस धारा में उपदर्शित अनुसार ऐसे साक्षियों का खंडन करने के सीमित प्रयोजन के सिवाय वर्जित किया गया है। किसी साक्षी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161(1) के अधीन पुलिस के समक्ष किए गए कथन का उपयोग दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162(1) के परंतुक में अधिकथित अनुसार केवल ऐसे साक्षी का उस बात के लिए, जो उसने विचारण में कही थी, खंडन करने के प्रयोजन के लिए किया जा सकता है। अन्वेषण के दौरान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन लेखबद्ध कथन सारभूत साक्ष्य नहीं हैं किंतु प्राथमिक तौर पर इनका उपयोग सीमित प्रयोजन, अर्थात् – (i) अभियुक्त द्वारा साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के अधीन ऐसे साक्षी का खंडन करने के लिए ; (ii) अभियोजन द्वारा भी ऐसे साक्षी का खंडन करने के लिए किंतु न्यायालय की इजाजत से ; और (iii) यदि आवश्यक हो, तो साक्षी की पुनः परीक्षा करने के लिए, किया जा सकता है।

17. न्यायालय पुलिस के समक्ष किए गए नासाबित कथनों का स्वप्रेरणा से उपयोग नहीं कर सकता है और उन कथनों के प्रति निर्देश करके प्रश्न नहीं पूछ सकता है, जो न्यायालय में दिए गए साक्षी के परिसाक्ष्य से असंगत हैं। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 में ‘यदि सम्यक् रूप से साबित कर दिया गया है’ शब्दों से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि साक्षियों के कथन के अभिलेख को सीधे तौर पर साक्ष्य में ग्रहण नहीं किया जा सकता है और न ही उस पर विचार किया जा सकता है अपितु उन्हें साक्षी की प्रतिपरीक्षा के साथ-साथ अन्वेषक अधिकारी की प्रतिपरीक्षा के दौरान भी, साक्षी द्वारा की गई स्वीकृति को प्रकट करते हुए, सम्यक् रूप से साबित किया जाना

¹ (2015) 9 एस. सी. सी. 588.

आवश्यक है। अन्वेषक अधिकारी के समक्ष किए कथन का उपयोग खंडन करने के प्रयोजन के लिए केवल साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 का पूरी तरह से पालन करने के पश्चात् अर्थात् खंडन करने के लिए आशयित भागों की ओर ध्यान आकर्षित करके ही किया जा सकता है।

18. साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 निम्नलिखित है :-

‘145. पूर्वतन लेखबद्ध कथनों के बारे में प्रतिपरीक्षा – किसी साक्षी की उन पूर्वतन कथनों के बारे में, जो उसने लिखित रूप में किए हैं, या जो लेखबद्ध किए गए हैं, और प्रश्नगत बातों से सुसंगत हैं, ऐसा लेख उसे दिखाए बिना, या ऐसे लेख के साबित हुए बिना, प्रतिपरीक्षा की जा सकेगी, किंतु यदि उस लेख द्वारा उसका खंडन करने का आशय है तो उस लेख को साबित किए जा सकने के पूर्व उसका ध्यान उस लेख के उन भागों की ओर आकर्षित करना होगा जिनका उपयोग उसका खंडन करने के प्रयोजन के लिए किया जाना है।’

19. साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के अधीन जब किसी साक्षी का उसके लेखबद्ध किए गए पूर्वतन कथन द्वारा खंडन करना आशयित है, तो उस लेख का उपयोग करने से पूर्व साक्षी का ध्यान उस पूर्वतन कथन के उन भागों की ओर आकर्षित करना आवश्यक है, जिनका उपयोग उसका खंडन करने के प्रयोजन के लिए किया जाना है। किसी साक्षी का अभिसाक्ष्य अभिलिखित करते समय विचारण न्यायालय का यह कर्तव्य हो जाता है कि यह सुनिश्चित करे कि पुलिस के समक्ष किए गए कथन का वह भाग, जिससे साक्षी का खंडन किया जाना आशयित है, उसे प्रतिपरीक्षा के दौरान साक्षी के ध्यान में लाया जाए। साक्षी का ध्यान उस भाग की ओर आकर्षित किया जाए और उसे उद्धृत करते हुए उसकी प्रतिपरीक्षा में प्रतिबिम्बित किया जाए। यदि साक्षी खंडन करने के लिए आशयित भाग को स्वीकार करता है, तो यह साबित हो जाता है और खंडन के लिए अतिरिक्त सबूत की आवश्यकता नहीं है और इसे साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय पढ़ा जाएगा। यदि साक्षी यह इनकार करता है कि उसने कथन का वह भाग नहीं किया है, तब उसका ध्यान उस कथन की ओर आकर्षित करना आवश्यक है और उसके अभिसाक्ष्य में अवश्य उसका उल्लेख किया जाना चाहिए। इस प्रक्रिया द्वारा खंडन

की बात को केवल अभिलेख पर लाया जाता है, किंतु इसे अभी भी साबित किया जाना शेष रहता है। उसके पश्चात् जब अन्वेषक अधिकारी की न्यायालय में परीक्षा की जाती है, तब खंडन करने के प्रयोजन के लिए चिह्नित लेखांश की ओर उसका ध्यान आकर्षित किया जाए और इसके पश्चात् इसे अन्वेषक अधिकारी के अभिसाक्ष्य में साबित किया जाएगा जो पुनः पुलिस को किए गए कथन को निर्दिष्ट करते हुए साक्षी द्वारा वह कथन किए जाने के बारे में अभिसाक्ष्य देगा। इस प्रक्रिया में पुलिस को किए गए उस कथन को पुनः निर्दिष्ट और अलग करना होता है जिससे कथन करने वाले साक्षी का खंडन करना आशयित है। यदि साक्षी का कथन के उस भाग से सामना नहीं कराया जाता है जिससे प्रतिरक्षा पक्ष उसका खंडन करना चाहता है, तो न्यायालय साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के अनुपालन में अर्थात् खंडन करने के लिए आशयित भागों की ओर ध्यान आकर्षित किए बिना, पुलिस को किए गए नासाबित कथनों का उपयोग स्वप्रेरणा से नहीं कर सकता है।”

(बल देने के लिए इस न्यायालय द्वारा रेखांकित किया गया है)

अतः, शिकायतकर्ता-जय भगवान (अभि. सा. 2) के साक्ष्य के खंडन से अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता-जय भगवान से रिश्वत की मांग करने का तथ्य साबित नहीं होता है क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन लेखबद्ध उसके कथन को उसकी प्रतिपरीक्षा में उसे दिखाए जाने पर बी. एस. यादव (अभि. सा. 10) द्वारा अपने साक्ष्य में उन कथनों के बारे में साक्ष्य देकर साबित नहीं किया गया है और इसलिए अभि. सा. 2 के साक्ष्य का खंडन नहीं होता है और इस मामले में धारा 161 के अधीन लेखबद्ध किया गया कथन साबित नहीं होता है।

32. इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अपनी परीक्षा में, अन्य बातों के साथ-साथ, यह कथन किया है :-

“प्रश्न सं. 4 : आपके विरुद्ध यह साक्ष्य है कि तारीख 28 जुलाई, 2004 को आपने शिकायतकर्ता-जय भगवान से रिश्वत के रूप में 5,000/- रुपए की मांग की और आपने उससे रिश्वत के रूप में 4,000/- रुपए स्वीकार किए और शिकायतकर्ता से 1,000/- रुपए तारीख 30 जुलाई, 2004 को ढिचाऊ कलां बस अड्डा, नजफगढ़ के निकट लेकर आने के लिए कहा। आपको क्या कहना है ?

उत्तर : यह असत्य है ।

* * * * *

प्रश्न सं. 14 : आपके विरुद्ध यह साक्ष्य है कि अपराहन में लगभग 7.00 बजे आप आए और शिकायतकर्ता से मिले और एक पानी की रेहड़ी की ओर गए और आपने शिकायतकर्ता से पंच साक्षी मौजूदगी में रिश्वत के रूप में 1,000/- रुपए की मांग की और अपने दाएं हाथ से स्वीकार किए तथा उन्हें अपनी कमीज की बाईं जेब में रख लिए । आपको क्या कहना है ?

उत्तर : यह असत्य है ।

प्रश्न सं. 15 : आपके विरुद्ध यह भी साक्ष्य है कि उसी दौरान पंच साक्षी ने पूर्व-निर्धारित संकेत दिया और उसके पश्चात् छापामार दल के सदस्य आए और आपको गिरफ्तार कर लिया गया और पंच साक्षी ने छापामार दल के अधिकारी को बताया कि आपने शिकायतकर्ता-जय भगवान (अभि. सा. 2) से 1,000/- रुपए की रिश्वत की मांग की और अपने दाएं हाथ से रुपए स्वीकार किए और उन्हें अपनी कमीज की बाईं जेब में रख लिया । आपको क्या कहना है ?

उत्तर : यह असत्य है ।”

33. शिकायतकर्ता-जय भगवान (अभि. सा. 2) के साक्ष्य, अपीलार्थी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपनी परीक्षा में किए गए कथनों तथा अनूप कुमार वर्मा (अभि. सा. 6) और निरीक्षक-सुंदर देव (अभि. सा. 12) के साक्ष्य का सावधानीपूर्वक वाचन करने के पश्चात् यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता-जय भगवान से रिश्वत के धन की कोई मांग नहीं की गई थी ।

34. विधि की यह सुस्थिर स्थिति है कि अभियुक्त को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्धि करने के लिए रिश्वत के धन की मांग करना अनिवार्य है । इस विधिक सिद्धांत को **बी. जयराज** (उपरोक्त), **ए. सुबैर** (उपरोक्त) और **पी. सत्यनारायण मूर्ति** (उपरोक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है और जिनका अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल ने ठीक ही अवलंब लिया है । **बी. जयराज** (उपरोक्त) वाले मामले का सुसंगत पैरा 7 इस प्रकार है :-

“7. जहां तक धारा 7 के अधीन अपराध का संबंध है, विधि में यह स्थिर स्थिति है कि उक्त अपराध का गठन करने के लिए अवैध परितोषण की मांग की जानी अनिवार्य है और करंसी नोटों की मात्र बरामदगी से धारा 7 के अधीन अपराध तब तक गठित नहीं हो सकता जब तक कि सभी युक्तियुक्त संदेह के परे यह साबित नहीं किया जाता है कि अभियुक्त ने धन स्वेच्छया यह जानते हुए स्वीकार किया था कि यह रिश्वत है। उपरोक्त स्थिति को इस न्यायालय द्वारा संक्षिप्त और स्पष्ट रूप से कई निर्णयों में अधिकथित किया गया है। दृष्टांत के रूप में सी. एम. शर्मा बनाम आंध्र प्रदेश राज्य तथा सी. एम. गिरिश बाबू बनाम केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो वाले मामलों के विनिश्चयों के प्रति निर्देश किया जा सकता है।”

(बल देने के लिए हमारे द्वारा रेखांकित किया गया है)

पी. सत्यनारायण मूर्ति (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :-

“21. केरल राज्य और एक अन्य **बनाम** सी. पी. राव वाले मामले में इस न्यायालय ने इन्हीं अपराधों के संबंध में अपने पूर्ववर्ती निर्णय को दोहराते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि मात्र बरामदगी से ही अभियुक्त के विरुद्ध अपराध साबित नहीं हो जाता है और रिश्वत के संदाय को साबित करने के लिए या यह दर्शित करने के लिए किसी साक्ष्य के अभाव में कि अभियुक्त ने धन स्वेच्छया से यह जानते हुए स्वीकार किया था कि यह रिश्वत है, दोषसिद्धि कायम नहीं रखी जा सकती है।

22. इस न्यायालय द्वारा अधिनियम की धारा 7 और 13 की अनिवार्य पूर्व-शर्तों को दृष्टिगोचर करते हुए **बी. जयराज** वाले मामले में सुनाए गए हाल ही के एक निर्णय में असंदिग्ध शब्दों में यह रेखांकित किया गया है कि किसी अभियुक्त के कब्जे में करंसी नोट होने और उनकी बरामदगी मात्र से मांग के सबूत के बिना अधिनियम की धारा 7 तथा धारा 13(1)(घ) (i) और (ii) के अधीन अपराध सिद्ध नहीं हो जाता है। यह प्रतिपादित किया गया कि अवैध परितोषण की मांग के किसी सबूत के अभाव में, यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि लोक सेवक के नाते मूल्यवान वस्तु या धनीय लाभ अभिप्राप्त करने के लिए भ्रष्ट या अवैध साधनों का प्रयोग या हैसियत

का दुरुपयोग साबित होता है। इस प्रकार, यह अभिनिर्धारित किया गया कि अधिनियम की धारा 7 और 13 के अधीन अपराध साबित करने के लिए मांग का सबूत होना अपरिहार्य आवश्यकता है। अधिनियम की धारा 20, जिसमें उपधारणा को, इसमें परिकल्पित अनुसार, अनुज्ञात किया गया है, के संबंध में यह अभिनिर्धारित किया गया कि इस उपधारणा का विस्तार केवल अधिनियम की धारा 7 के अधीन आने वाले अपराध तक है न कि धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अधीन आने वाले अपराध तक, फिर भी यह उपधारणा कोई पदीय कार्य करने या करने से प्रविरत रहने के लिए अवैध परितोषण की स्वीकृति के सबूत पर निर्भर करती है। इस बात पर बल दिया गया कि अवैध परितोषण की स्वीकृति का ऐसा सबूत तभी स्वीकार्य होगा यदि मांग करने का सबूत हो। स्वयंसिद्ध तथ्य मानते हुए, यह अभिनिर्धारित किया गया कि मांग के सबूत के अभाव में, अधिनियम की धारा 20 के अधीन उपधारणा भी उद्भूत नहीं होगी।

23. इस प्रकार, अवैध परितोषण की मांग का सबूत अधिनियम की धारा 7 और 13(1)(घ)(i)(ii) के अधीन अपराध का मूल सार है और इसके अभाव में, अवैध परितोषण का आरोप असंदिग्ध रूप से असफल हो जाएगा। इस प्रकार, मांग के सबूत के बिना अभिकथित रूप से अवैध परितोषण के रूप में किसी रकम की केवल स्वीकृति या बरामदगी स्वयमेव अधिनियम की इन दोनों धाराओं के अधीन आरोप को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। परिणामतः, अभियोजन पक्ष द्वारा अवैध परितोषण की मांग को साबित करने में असफल रहना घातक होगा और अधिनियम की धारा 7 या 13 के अधीन अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से रकम की बरामदगी मात्र से इन धाराओं के अधीन उसकी दोषसिद्धि नहीं की जा सकती है।¹

(बल देने के लिए हमारे द्वारा रेखांकित किया गया है)

35. इसके अतिरिक्त, **सतवीर सिंह** बनाम **दिल्ली राज्य**¹ वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है :-

“34. **के. एस. पांडुरंग** वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभियुक्त द्वारा अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति अपराध का गठन के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त है। इस संबंध में

¹ (2014) 13 एस. सी. सी. 143.

उपर्युक्त विनिश्चय का सुसंगत पैरा इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है –

“39. इस बात को ध्यान में रखते हुए कि अधिनियम के अधीन अपराध का गठन करने के लिए मांग और स्वीकृति एक पूर्ववर्ती शर्त है, इसलिए यह उल्लेखनीय है कि अधिनियम की धारा 20 के अधीन जिस कानूनी उपधारणा का उपबंध है, उसे अभियुक्त द्वारा अभिलेख पर ऐसा कोई या तो प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक साक्ष्य लाकर निरस्त किया जा सकता है कि जो धन स्वीकार किया गया था वह अधिनियम की धारा 7 के अधीन यथा परिकल्पित हेतु या इनाम से भिन्न था। जब कोई स्पष्टीकरण दिया जाता है, तो न्यायालय अधिनियम की धारा 20 के अधीन स्पष्टीकरण पर विचार के लिए आबद्ध है और स्पष्टीकरण पर विचार अधिसंभाव्यता की प्रबलता की कसौटी के आधार पर किया जाना चाहिए। इसे सभी युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किए जाने की आवश्यकता नहीं है। प्रस्तुत मामले में, हमारा यह विचार है कि अभियुक्त द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण किसी प्रकार से स्वीकार करने योग्य नहीं है और तदनुसार हमारा यह निष्कर्ष है कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा इस निमित्त अभिलिखित निष्कर्ष और उच्च न्यायालय द्वारा किए गए इसके अनुमोदन को अनुचित नहीं कहा जा सकता है।”

35. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल ने **बनारसी दास** वाले मामले का भी अवलंब लिया है, जिसे ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि :-

“24. एम. के. हरशन **बनाम** केरल राज्य वाले मामले में इस न्यायालय ने कुछ इसी प्रकार की परिस्थितियों में, जहां दूषित धन अभियुक्त की दराज में रखा था और उसने इससे इनकार किया और कहा कि यह धन उसकी जानकारी के बिना दराज में रखा गया था, निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :-

‘8.इसी संदर्भ में ही न्यायालयों को सचेत किया गया है कि प्रज्ञा के नियम के रूप में कुछ संपुष्टि आवश्यक है। रिश्वत के ऐसे सभी प्रकार के मामलों में दो पहलू महत्वपूर्ण हैं। प्रथमतः, कोई मांग की जानी आवश्यक है और द्वितीयतः, इसकी इस अर्थ में स्वीकृति होना आवश्यक है कि अभियुक्त ने अवैध परितोषण

अभिप्राप्त किया था । केवल मांग ही अपराध को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है । इसलिए दूसरा पहलू अर्थात् स्वीकृति अति महत्वपूर्ण है और जब अभियुक्त का यह अभिवाक् है कि दराज में करंसी नोट उसकी जानकारी के बिना रखे गए थे, तब यह दर्शित करने के लिए ठोस साक्ष्य का होना आवश्यक है कि अभियुक्त की मौन सहमति से ही अवैध परितोषण के रूप में धन दराज में रखा गया था ।' ...”

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया ।)

36. उपर्युक्त कारणों को ध्यान में रखते हुए, इस मामले में विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों का दृष्टिकोण गलत है क्योंकि दोनों न्यायालयों ने अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता-जय भगवान (अभि. सा. 2) से अवैध परितोषण की मांग के पहलू पर अभियोजन पक्ष के साक्ष्य का अवलंब लिया है, यद्यपि इस संबंध में कोई सारभूत साक्ष्य नहीं है और अपीलार्थी को उसके विरुद्ध विरचित आरोपों के लिए गलत रूप से दोषसिद्ध किया गया है । अभियोजन पक्ष अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता-जय भगवान (अभि. सा. 2) से की गई रिश्वत के धन की मांग के तथ्य को साबित करने में असफल रहा है, जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए उसे दोषसिद्ध करने के लिए अनिवार्य है । इस प्रकार, उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय और आदेश न केवल गलत है अपितु विधि की दृष्टि से भी त्रुटियुक्त है और इसलिए यह अपास्त किए जाने योग्य है ।

37. ऊपर उल्लिखित कारणों से, उच्च न्यायालय तथा विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश अपास्त किए जाते हैं । यह अपील मंजूर की जाती है । कारागार अधीक्षक को निदेश दिया जाता है कि अपीलार्थी को, यदि उसकी किसी अन्य मामले के संबंध में आवश्यकता न हो, तुरंत कारागार से रिहा कर दिया जाए । रजिस्ट्री को निदेश दिया जाता है कि इस आदेश का उपरोक्त भाग संबंधित कारागार अधीक्षक को उसे जारी किए गए निदेशों को पालन करने के लिए संसूचित किया जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2016] 2 उम. नि. प. 142

सुदीप कुमार सेन उर्फ बिलटु

बनाम

पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य

तथा

गौतम घोष

बनाम

पश्चिमी बंगाल राज्य

तथा

अप्पू चटर्जी उर्फ सौमित्रा

बनाम

पश्चिमी बंगाल राज्य

तथा

शंकर दास उर्फ भाई

बनाम

पश्चिमी बंगाल राज्य

तथा

तपस दास उर्फ भाम्बल

बनाम

पश्चिमी बंगाल राज्य

7 जनवरी, 2016

मुख्य न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर और न्यायमूर्ति (श्रीमती) आर. भानुमति

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 300 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 134] – हत्या – घटना के एकमात्र साक्षी का परिसाक्ष्य – विश्वसनीयता – साक्षी द्वारा अभियुक्तों को मृतक

पर गोली चलाते हुए देखा जाना – चिकित्सीय साक्ष्य से समर्थन होना – गहन प्रतिपरीक्षा में उसका साक्ष्य अडिग रहना – यदि एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य विश्वसनीय पाया जाता है और भले ही यह असंपुष्ट हो, तो भी न्यायालय ऐसे परिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि या दोषमुक्ति अभिलिखित कर सकता है, अतः निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित अपीलार्थियों की दोषसिद्धि और दंडादेश उचित हैं ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 34 और 300 – हत्या करने का सामान्य आशय – अभियुक्त-अपीलार्थियों का धन उद्घापन के अवैध कार्य में लिप्त होना, घटना के दिन एक साथ घटनास्थल पर आना, दो अभियुक्तों द्वारा मृतक को पकड़े जाने और अन्य द्वारा उस पर गोलियां चलाए जाने जैसे तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने पर स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि उनका सामान्य आशय मृतक की हत्या करना था, इसलिए धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन उनकी दोषसिद्धि उचित है ।

अपील के तथ्यों के अनुसार, शिकायतकर्ता तारीख 13 जनवरी, 2002 को शाखेरबाजार में चाय की दुकान पर अपने कुछ मित्रों के साथ चाय पी रहा था । संदीप मजूमदार भी अपनी मोटरसाइकिल पर बैठकर चाय की दुकान के सामने चाय पी रहा था । उस समय अपीलार्थी एक साथ घटनास्थल पर आए । अपीलार्थी-सुदीप कुमार सेन ने पहले तो मृतक-सैकत साहा को गाली दी और उससे पूछा कि वह न्यायालय में जिशू दा से क्यों नहीं मिला जबकि उसे कई बार उससे मिलने के लिए कहा गया था । अपीलार्थी-अप्पू चटर्जी ने कहा कि जब तक खोका के आदमियों को मारा नहीं जाता शांति नहीं होगी । इस उकसावे पर अपीलार्थी तपस दास और शंकर दास ने सैकत साहा-मृतक को पकड़ा और अपीलार्थी गौतम घोष और शेख कोची ने उस पर गोली चला दी और सैकत साहा को छाती पर दाईं ओर गोली की दो क्षतियां पहुंचीं । गोरा दास-शिकायतकर्ता और संदीपन मजूमदार क्षतिग्रस्त सैकत साहा को तुरंत कलकत्ता चिकित्सा अनुसंधान संस्थान ले गए । जहां उसे मृत घोषित कर दिया गया । गोरा दास ने ठाकुरपुकुर पुलिस थाने में शिकायत दर्ज की, जिसके आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और आयुध अधिनियम की धारा 25 और 27 के अधीन अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध 2002 के मामला सं. 12 के रूप में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई । अन्वेषक अधिकारी ने अन्वेषण का कार्य संभाला और घटनास्थल का दौरा किया तथा उपलब्ध साक्षियों की परीक्षा की जिनमें संदीपन मजूमदार

भी सम्मिलित था जिसने पुलिस को सूचित किया कि उसने घटना देखी थी और इस साक्षी ने अभियुक्तों के नाम भी बताए । उसके कथन के आधार पर अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया । अन्वेषण के पश्चात् अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया । अपर सेशन न्यायाधीश, अलीपुर ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् और यह मत व्यक्त करते हुए कि संदीप मजूमदार एक विश्वसनीय साक्षी है, अपीलार्थियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया । अपीलार्थियों ने दोषसिद्धि के अधिमत से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा अपील खारिज कर दी । अभियुक्तों ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह भली भांति स्थिर है कि न्यायालय किसी एकल साक्षी के परिसाक्ष्य के आधार पर कार्यवाही कर सकता है चाहे वह असंपुष्ट हो, बशर्ते एकल साक्षी का परिसाक्ष्य विश्वसनीय पाया जाए । विचारण न्यायालय ने, जिसके पास अभियोजन साक्षी को देखने और सुनने का अवसर था, उसे पूरी तरह से विश्वसनीय और भरोसेमंद पाया और यह अभिनिर्धारित किया कि जिशू जैन के सिवाय जहां तक अभियुक्तों पर अभ्यारोपित भूमिका का संबंध है, संदीपन मजूमदार के साक्ष्य पर संदेह नहीं किया जा सकता है और जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा अभिपुष्टि की गई है । यह न्यायालय अभियोजन साक्षी की विश्वसनीयता के बारे में निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित एक जैसे निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाता है और दोषसिद्धि अभिलिखित करता है । (पैरा 11)

भारतीय दंड संहिता की धारा 34 में कोई आपराधिक कृत्य करने पर संयुक्त दायित्व का सिद्धांत अंगीभूत है और इस दायित्व का सार सामान्य आशय की विद्यमानता है । सामान्य आशय से विवक्षित सामान्य मति से कार्य करना और पूर्व-निर्धारित योजना का विद्यमान होना है जिसे या तो अभियुक्तों के आचरण से या विद्यमान परिस्थितियों से साबित किया जाना चाहिए/निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए । भारतीय दंड संहिता की धारा 34 का अवलंब लेने के लिए अवश्य यह सिद्ध किया जाना चाहिए कि आपराधिक कृत्य एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा सभी के सामान्य आशय को अग्रसर करते हुए किया गया था । इसलिए यह साबित किया जाना आवश्यक है कि :- (i) कोई विशिष्ट अपराध कारित करने के लिए कई व्यक्तियों का सामान्य आशय था, और (ii) उनके द्वारा अपराध वस्तुतः उस

सामान्य आशय को अग्रसर करते हुए कारित किया गया था । सामान्य आशय से पूर्व-निर्धारित योजना विवक्षित है । भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के अधीन, एक सुभिन्न पूर्व-योजना के अर्थ में पूर्व-मिलन साबित किया जाना आवश्यक नहीं है । भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के अधीन दायित्व का सार आपराधिक कृत्य में भाग लेने वाले व्यक्तियों को किसी विशिष्ट परिणाम को घटित करने के लिए उसकी जानकारी होना है । यह प्रश्न कि क्या कोई सामान्य आशय था या नहीं, यह प्रत्येक मामले के साबित तथ्यों और परिस्थितियों से निकाले गए निष्कर्ष पर निर्भर करता है । इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या अपराध कारित करने के लिए अभियुक्तों का कोई सामान्य आशय था जिसके लिए उन्हें दोषसिद्ध किया जा सके, संपूर्ण परिस्थितियों पर विचार किया जाना आवश्यक है । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि अपराध कारित करने के लिए अपीलार्थियों की पूर्व-मति थी और उन्होंने सामान्य आशय को अग्रसर करते हुए कृत्य किया था । जैसा कि अभि. सा. 6 के साक्ष्य से दर्शित होता है, सभी अपीलार्थी और एक अन्य अभियुक्त शेख कोची फ्लैट मालिको से धन ऐंठने का अवैध कारबार कर रहे थे । घटना की तारीख को सभी अपीलार्थी और एक अन्य अभियुक्त शेख कोची एक साथ आए और सुदीप कुमार सेन उर्फ बिलटु मृतक को गाली देने लगा और अप्पू चटर्जी ने अन्य अभियुक्तों को यह कहकर उकसाया कि यदि खोका के आदमियों को मार नहीं दिया जाता, तो शांति नहीं होगी । इस उकसावे पर तपस दास और शंकर दास ने मृतक को पकड़ा और गौतम घोष और शेष कोची ने मृतक पर गोली चला दी । तथ्यों और परिस्थितियों से सैकत साहा की हत्या करने में अपीलार्थियों के मस्तिष्कों के मिलन और उनका सामान्य आशय स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है और अपीलार्थियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन ठीक ही दोषसिद्ध किया गया है । भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं बनता है । (पैरा 14 और 15)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[2012] (2012) 1 एस. सी. सी. 10 :
**पृथीपाल सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और
 एक अन्य ।**

12

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2016 की दांडिक अपील सं. 17 और इसके साथ 2016 की दांडिक अपील सं. 19, 21, 23 और 25.

2004 की दांडिक अपील सं. 544 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के तारीख 29 दिसम्बर, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री मेहुल एम. गुप्ता, आर. पी. गुप्ता, राउफ रहीम, (सुश्री) सुनीता शर्मा, (सुश्री) सुमीता हजारिका, (सुश्री) रुखशाना चौधरी, शशि किरण, सुकेश घोष और रामेश्वर प्रसाद गोयल

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री जॉयदीप मजूमदार, परिजात सिन्हा, रोहित दत्ता और (सुश्री) स्वीटी चट्टोपाध्याय

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (श्रीमती) आर. भानुमति ने दिया ।

न्या. (श्रीमती) भानुमति – विलंब के लिए माफी दी गई । इजाजत दी गई ।

2. ये अपीलें कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई 2004 की दांडिक अपील सं. 544 को खारिज करते हुए और तद्वारा अपीलार्थियों की भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि और उनमें से प्रत्येक पर अधिरोपित आजीवन कारावास के दंडादेश तथा पांच हजार रुपए के जुर्माने के दंडादेश की अभिपुष्टि करते हुए तारीख 24 सितम्बर, 2012 के सामान्य निर्णय से उद्भूत हुई हैं ।

3. संक्षेप में अभियोजन का पक्षकथन यह है कि शिकायतकर्ता-अभि. सा. 1-गोरा दास तारीख 13 जनवरी, 2002 को अपराह्न में लगभग 8.30 बजे शाखेरबाजार में बबलू पाल-अभि. सा. 5 की दुकान पर अपने कुछ मित्रों के साथ चाय पी रहा था । संदीप मजूमदार-अभि. सा. 6 भी अपनी मोटरसाइकिल पर बैठकर अभि. सा. 5 की चाय की दुकान के सामने चाय पी रहा था । उस समय अपीलार्थी एक साथ घटनास्थल पर आए । अपीलार्थी-सुदीप कुमार सेन उर्फ बिलटु (अभि. 3) ने पहले तो मृतक-

सैकत साहा को गाली दी और उससे पूछा कि वह न्यायालय में जिशू दा से क्यों नहीं मिला जबकि उसे कई बार उससे मिलने के लिए कहा गया था। अपीलार्थी-अप्पू चटर्जी उर्फ सौमित्रा (अभि. 6) ने कहा कि जब तक खोका के आदमियों को मारा नहीं जाता शांति नहीं होगी। इस उकसावे पर अपीलार्थी तपस दास उर्फ भाम्बल (अभि. 2) और शंकर दास उर्फ भाई (अभि. 4) ने सैकत साहा-मृतक को पकड़ा और अपीलार्थी गौतम घोष (अभि. 1) और शेख कोची उर्फ शेख मुबारक (अभि. 5) ने उस पर गोली चला दी और सैकत साहा को छाती पर दाईं ओर गोली की दो क्षतियां पहुंचीं। गोरा दास-अभि. सा. 1 और संदीपन मजूमदार-अभि. सा. 6 क्षतिग्रस्त सैकत साहा को तुरंत कलकत्ता चिकित्सा अनुसंधान संस्थान ले गए। डा. देवाशिश पाल-अभि. सा. 9 ने सैकत साहा का परीक्षण किया और उसे मृत लाया गया घोषित किया तथा क्षति रिपोर्ट (प्रदर्श 4) और मृत्यु प्रमाणपत्र (प्रदर्श पी 4/1) जारी किए।

4. गोरा दास-अभि. सा. 1 ने तारीख 14 जनवरी, 2002 को पूर्वाहन में 1.45 बजे ठाकुरपुकुर पुलिस थाने में शिकायत दर्ज की, जिसके आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और आयुध अधिनियम की धारा 25 और 27 के अधीन अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध 2002 के मामला सं. 12 के रूप में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई। श्री ए. के. घोष-अन्वेषक अधिकारी-अभि. सा. 13 ने अन्वेषण का कार्य संभाला और घटनास्थल का दौरा किया तथा उपलब्ध साक्षियों की परीक्षा की जिनमें अभि. सा. 6-संदीपन मजूमदार भी सम्मिलित था जिसने पुलिस को सूचित किया कि उसने घटना देखी थी और इस साक्षी ने अभियुक्तों के नाम भी बताए। उसके कथन के आधार पर अपीलार्थी और अभियुक्त शेख कोची उर्फ शेख मुबारक और जीशू जैन नामक व्यक्ति को गिरफ्तार किया गया। अन्वेषण के पश्चात् अपीलार्थियों और अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और धारा 120-ख तथा आयुध अधिनियम की धारा 25 और 27 के अधीन आरोप पत्र फाइल किया गया।

5. अभियोजन पक्ष ने अभियुक्तों के विरुद्ध आरोपों को साबित करने के लिए 13 साक्षियों की परीक्षा कराई और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया। अपर सेशन न्यायाधीश, अलीपुर ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् और यह मत व्यक्त करते हुए कि अभि. सा. 6 एक विश्वसनीय साक्षी है, अपीलार्थियों और शेख कोची को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ

पठित धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया और उनमें से प्रत्येक को आजीवन कारावास का दंडादेश दिया तथा उनमें से प्रत्येक पर 5,000/- रुपए का जुर्माना भी अधिरोपित किया । विचारण न्यायालय ने सह-अभियुक्त जीशू को उसके विरुद्ध लगाए गए सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया । अपीलार्थियों ने दोषसिद्धि के अधिमत से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने तारीख 24 सितम्बर, 2012 के आक्षेपित निर्णय द्वारा अपील खारिज कर दी और तद्द्वारा अपीलार्थियों पर अधिरोपित यथा उपर्युक्त दोषसिद्धि और दंडादेश की अभिपुष्टि की । अपीलार्थी-गौतम घोष (अभि. 1), तपस दास उर्फ भाम्बल (अभि. 2), सुदीप कुमार सेन उर्फ बिलटु (अभि. 3), शंकर दास उर्फ भाई (अभि. 4) और अप्पू चटर्जी उर्फ सौमित्रा (अभि. 6) ने व्यथित होकर हमारे समक्ष अपील की है । अभियुक्त शेख कोची उर्फ शेख मुबारक (अभि. 5) ने आक्षेपित निर्णय को चुनौती नहीं दी है ।

6. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि दोनों निचले न्यायालय अभियोजन साक्षियों के कथनों की उन गंभीर कमियों, विसंगतियों और विरोधाभासों पर विचार करने में असफल रहे जिनसे, अपीलार्थियों के अनुसार, अभि. सा. 6 के परिसाक्ष्य द्वारा यथा प्रतिपादित अभियोजन का वृत्तांत व्यवहारिक रूप से ध्वस्त हो जाता है । यह दलील दी गई कि अभि. सा. 1 ने प्रतिपरीक्षा में स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि घटना के समय वह और उसके मित्र घटनास्थल की ओर दौड़े जो कि चाय की दुकान से कुछ गज की दूरी पर है और इसलिए अभि. सा. 6 ने अपनी मोटरसाइकिल पर बैठे हुए और अभि. सा. 1 के साथ चाय पीते हुए घटना नहीं देखी थी तथा अभि. सा. 6 का बयान पूरी तरह से विरोधाभासी है । अभि. सा. 6 के परिसाक्ष्य की विश्वसनीयता के बारे में संदेह करते हुए यह दलील दी गई कि मृतक को अस्पताल ले जाने में अभि. सा. 6 कथित रूप से अभि. सा. 1 के साथ गया था, फिर भी उसने अभि. सा. 1 को हमलावरों के बारे में नहीं बताया और इतना ही नहीं प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करते समय भी हमलावरों की पहचान प्रकट नहीं की जो कि अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध रजिस्ट्रीकृत की गई थी ।

7. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अभि. सा. 6 के साक्ष्य द्वारा अपीलार्थियों की आपराधिकता पूरी तरह से साबित की गई है जो कि घटना का स्वाभाविक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है और वह चाय की दुकान के बाहर खड़ा हुआ था और हमलावरों

को देखने की सुविधाजनक स्थिति में था और उसने घटना देखी थी। आगे यह दलील दी गई कि निचले न्यायालयों ने अभि. सा. 6 की विश्वसनीयता को लेकर एक जैसे निष्कर्ष अभिलिखित किए हैं और ऐसा कोई आधार नहीं है जिससे अपीलार्थियों की दोषसिद्धि में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता हो।

8. हमने विरोधी दलीलों पर विचार किया और आक्षेपित निर्णय तथा अभिलेख की सामग्री का परिशीलन किया।

9. संदीपन मजूमदार-अभि. सा. 6 ने यह कथन किया कि घटना की तारीख अर्थात् 13 जनवरी, 2002 को अपराह्न में लगभग 8.30 बजे जब वह शाखेरबाजार में चाय की दुकान पर चाय पी रहा था, तब सैकत साहा, अभि. सा. 1-गोरा दास और अन्य भी वहां चाय पी रहे थे। अभि. सा. 6 ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि हमलावर अग्न्यायुधों से लैस होकर एक साथ आए और सुदीप कुमार सेन (अभि. 3) सैकत साहा को गाली देने लगा और उससे पूछा कि वह बार-बार कहने के बावजूद जीशू दा से न्यायालय में क्यों नहीं मिला। अप्पू चटर्जी (अभि. 6) ने चिल्लाकर कहा कि तब तक शांति नहीं होगी जब तक कि खोका के आदमियों को मार नहीं दिया जाता। इस उकसावे पर तपस दास (अभि. 2), शंकर दास (अभि. 4) ने मृतक को पकड़ा और गौतम घोष (अभि. 1) और शेख कोची (अभि. 5) ने सैकत साहा पर गोली चला दी। अभि. सा. 6 ने यह कथन किया कि अपीलार्थी परिक्षेत्र में फ्लैट मालिकों से धन उगाही का अवैध कारबार कर रहे थे और उक्त मामले को लेकर झगड़ा हुआ था। अभि. सा. 6 ने यह भी कथन किया कि अपीलार्थी मृतक के पास आते रहते थे और वह उन सभी को जानता था। अभि. सा. 6 की अगले ही दिन अर्थात् तारीख 14 जनवरी, 2002 को परीक्षा की गई थी और अभि. सा. 6 ने पुलिस के समक्ष अपने कथन में जीशू जैन के सिवाय अपीलार्थी-अभियुक्तों का हमलावरों के रूप में नाम लिया था। अभि. सा. 6 घटना का स्वाभाविक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी था। अभि. सा. 6 गहन प्रतिपरीक्षा के दौरान अविचल रहा और उसका साक्ष्य अडिग रहा। अभि. सा. 6 एक स्वाभाविक साक्षी है, यह बात इस तथ्य से भी प्रकट होती है कि मृतक को तुरंत अस्पताल ले जाने में वह अभि. सा. 1-गोरा दास के साथ गया था और यह तथ्य अभि. सा. 9-डा. देवाशिश पाल द्वारा जारी की गई क्षति रिपोर्ट (प्रदर्श 4) और मृत्यु प्रमाणपत्र (प्रदर्श 4/1) से स्पष्ट होती है जिसमें यह स्पष्ट उल्लेख है कि मृतक को अस्पताल अभि. सा. 1 और अभि. सा. 6 द्वारा

लाया गया था ।

10. शिकायतकर्ता गोरा दास (अभि. सा. 1) ने यद्यपि हमलावरों का नाम नहीं लिया, तो भी उसने अपने साक्ष्य में यह कथन किया कि जब वह शाखेरबाजार बेहला में स्थित बबलू पाल (अभि. सा. 5) की चाय की दुकान पर अपराह्न में लगभग 8.30 बजे चाय पी रहा था, तब उसने गोली चलने की आवाज सुनी और जब वह घटनास्थल की ओर दौड़कर गया तो उसने मृतक सैकत साहा को रक्तरंजित क्षतियों के साथ पड़े हुए पाया और वह अभि. सा. 6 के साथ उसे कलकत्ता चिकित्सा अनुसंधान संस्थान लेकर गया । पिंकू बिस्वास-अभि. सा. 2 का साक्ष्य भी इसी प्रकार का है कि उसने दो गोलियां चलने की आवाज सुनी थी और गली में शोर-शराबा मचा हुआ था और दुकानदारों द्वारा अपने शटर बंद कर लिए गए थे और कुछ समय पश्चात् जब लोग बाहर आए तो उन्होंने देखा कि सैकत साहा को बंदूक की गोलियों की क्षतियां पहुंची थीं । परितोष पाल-अभि. सा. 3 और गोरा दास-अभि. सा. 1, जो कि निकटवर्ती दुकानदार हैं, का साक्ष्य भी इस प्रकार का है । यद्यपि अभि. सा. 1 से 4 ने हमलावरों का नाम नहीं लिया, तो भी उनके साक्ष्य से यह दर्शित होता है कि एक घटना घटी थी जिसमें हमलावरों द्वारा सैकत साहा पर गोली चलाई गई थी और इस बात से अभि. सा. 6 का साक्ष्य विश्वसनीय हो जाता है । अभि. सा. 6 का यह साक्ष्य कि मृतक को बंदूक की दो गोलियों की क्षतियां पहुंची थीं, इसका समर्थन चिकित्सा साक्ष्य अर्थात् डा. देवाशिश पाल (अभि. सा. 9) द्वारा जारी क्षति रिपोर्ट (प्रदर्श 4) और मृत्यु प्रमाणपत्र (प्रदर्श 4/1) से भी होता है ।

11. यह भलीभांति स्थिर है कि न्यायालय किसी एकल साक्षी के परिसाक्ष्य के आधार पर कार्यवाही कर सकता है चाहे वह असंपुष्ट हो, बशर्ते एकल साक्षी का परिसाक्ष्य विश्वसनीय पाया जाए । विचारण न्यायालय ने, जिसके पास अभि. सा. 6 को देखने और सुनने का अवसर था, उसे पूरी तरह से विश्वसनीय और भरोसेमंद पाया और यह अभिनिर्धारित किया कि जिशू जैन के सिवाय जहां तक अभियुक्त-2 से अभियुक्त-6 पर अभ्यारोपित भूमिका का संबंध है, संदीपन मजूमदार-अभि. सा. 6 के साक्ष्य पर संदेह नहीं किया जा सकता है और जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा अभिपुष्टि की गई है । हम अभि. सा. 6 की विश्वसनीयता के बारे में निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित एक जैसे निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते हैं और दोषसिद्धि अभिलिखित करते हैं ।

12. पृथीपाल सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और एक अन्य¹ वाले मामले में यह मत व्यक्त करते हुए कि एकल साक्षी के परिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि अभिलिखित करने में कोई अड़चन नहीं है, बशर्ते यह विश्वसनीय हो, निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया है :-

“49. इस न्यायालय ने सतत रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि साधारणतया न्यायालय किसी एकल साक्षी के परिसाक्ष्य के आधार पर कार्यवाही कर सकता है और कर सकेगा, बशर्ते वह परिसाक्ष्य पूर्णतः विश्वसनीय हो । किसी एकल साक्षी के एकमात्र परिसाक्ष्य के आधार पर किसी व्यक्ति को दोषसिद्ध करने में कोई अड़चन नहीं है । यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 134 की तर्कसंगति है । किंतु यदि ऐसे परिसाक्ष्य के बारे में संदेह हो तो न्यायालय इसकी संपुष्टि पर जोर दे सकता है । वास्तव में, जो तात्त्विक बात है वह संख्या या मात्रा नहीं अपितु गुणवत्ता है । चिरप्रचलित सिद्धांत यह है कि साक्ष्य के महत्व पर विचार किया जाना चाहिए न कि गणना पर । कसौटी यह है कि क्या साक्ष्य में सच्चाई है, तर्कपूर्ण है, विश्वसनीय और भरोसेमंद या अन्यथा है या नहीं । विधिक व्यवस्था ने साक्षियों की मात्रा, बहुलता या अनेकता की बजाय साक्ष्य के मूल्य, महत्व और गुणवत्ता पर जोर दिया है । अतः, कोई सक्षम न्यायालय किसी एकमात्र साक्षी पर विश्वास करने और दोषसिद्धि अभिलिखित करने के लिए पूर्णतः स्वतंत्र है । इसके विपरीत, यदि न्यायालय का साक्ष्य की गुणवत्ता के बारे में समाधान नहीं होता है तो वह कई साक्षियों के परिसाक्ष्य के बावजूद अभियुक्त को दोषमुक्त कर सकता है । [वडीवेलू थेवर बनाम मद्रास राज्य, ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 614, सुनील कुमार बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार) (2003) 11 एस. सी. सी. 367, नामदेव बनाम महाराष्ट्र राज्य (2007) 14 एस. सी. सी. 150 और बिपिन कुमार मंडल बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य (2010) 12 एस. सी. सी. 91 वाले मामले देखें] ।”

13. अपीलार्थियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है । अपीलार्थी-अभियुक्तों (अभि. 2 से अभि. 4 और अभि. 6) की ओर से विद्वान्

¹ (2012) 1 एस. सी. सी. 10.

काउंसेल ने यह दलील दी कि अभियुक्त सुदीप कुमार सेन (अभि. 3) और अप्पू चटर्जी (अभि. 6) ने कथित रूप से मृतक को गाली दी थी और तपस दास (अभि. 2) और शंकर दास (अभि. 4) ने अभिकथित रूप से मृतक को पकड़ा था और ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि अभि. 2 से अभि. 4 और अभि. 6 ने मृतक पर गोली चलाने में अन्य सह-अभियुक्तों के साथ सामान्य आशय में भाग लिया था और इसलिए इन अभियुक्तों की भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि संघार्य नहीं है ।

14. भारतीय दंड संहिता की धारा 34 में कोई आपराधिक कृत्य करने पर संयुक्त दायित्व का सिद्धांत अंगीभूत है और इस दायित्व का सार सामान्य आशय की विद्यमानता है । सामान्य आशय से विवक्षित सामान्य मति से कार्य करना और पूर्व-निर्धारित योजना का विद्यमान होना है जिसे या तो अभियुक्तों के आचरण से या विद्यमान परिस्थितियों से साबित किया जाना चाहिए/निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए । भारतीय दंड संहिता की धारा 34 का अवलंब लेने के लिए अवश्य यह सिद्ध किया जाना चाहिए कि आपराधिक कृत्य एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा सभी के सामान्य आशय को अग्रसर करते हुए किया गया था । इसलिए यह साबित किया जाना आवश्यक है कि – (i) कोई विशिष्ट अपराध कारित करने के लिए कई व्यक्तियों का सामान्य आशय था, और (ii) उनके द्वारा अपराध वस्तुतः उस सामान्य आशय को अग्रसर करते हुए कारित किया गया था । सामान्य आशय से पूर्व-निर्धारित योजना विवक्षित है । भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के अधीन, एक सुभिन्न पूर्व-योजना के अर्थ में पूर्व-मिलन साबित किया जाना आवश्यक नहीं है । भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के अधीन दायित्व का सार आपराधिक कृत्य में भाग लेने वाले व्यक्तियों को किसी विशिष्ट परिणाम को घटित करने के लिए उसकी जानकारी होना है । यह प्रश्न कि क्या कोई सामान्य आशय था या नहीं, यह प्रत्येक मामले के साबित तथ्यों और परिस्थितियों से निकाले गए निष्कर्ष पर निर्भर करता है । इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या अपराध कारित करने के लिए अभियुक्तों का कोई सामान्य आशय था जिसके लिए उन्हें दोषसिद्ध किया जा सके, संपूर्ण परिस्थितियों पर विचार किया जाना आवश्यक है ।

15. इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि अपराध कारित करने के लिए अपीलार्थियों की पूर्व-मति थी और उन्होंने सामान्य आशय को अग्रसर करते हुए कृत्य किया था । जैसाकि

अभि. सा. 6 के साक्ष्य से दर्शित होता है, सभी अपीलार्थी और एक अन्य अभियुक्त शेख कोची फ्लैट मालिकों से धन ऐंठने का अवैध कारबार कर रहे थे । घटना की तारीख को सभी अपीलार्थी और एक अन्य अभियुक्त शेख कोची एक साथ आए और सुदीप कुमार सेन उर्फ बिलटु (अभि. 3) मृतक को गाली देने लगा और अप्पू चटर्जी (अभि. 6) ने अन्य अभियुक्तों को यह कहकर उकसाया कि यदि खोका के आदमियों को मार नहीं दिया जाता, तो शांति नहीं होगी । इस उकसावे पर तपस दास और शंकर दास (अभि. 2 और अभि. 4) ने मृतक को पकड़ा और गौतम घोष और शेष कोची (अभि. 1 और अभि. 5) ने मृतक पर गोली चला दी । तथ्यों और परिस्थितियों से सैकत साहा की हत्या करने में अपीलार्थियों के मस्तिष्कों के मिलन और उनका सामान्य आशय स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है और अपीलार्थियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन ठीक ही दोषसिद्ध किया गया है । भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं बनता है ।

16. परिणामतः, सभी अपीलें असफल होती हैं और तदनुसार खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

जस.

[2016] 2 उम. नि. प. 153

असम राज्य

बनाम

रमन डोवराह

11 जनवरी, 2016

न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ और न्यायमूर्ति अरुण मिश्रा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 376 – बलात्संग – अभियुक्त द्वारा एक अन्य अभियुक्त के साथ विपदग्रस्त के घर में घुसकर जबरदस्ती उसके साथ बलात्संग किया जाना – विपदग्रस्त द्वारा शोर मचाया जाना और घटना के बारे में अपनी माता को बताने की धमकी देने

पर अभियुक्त द्वारा उस पर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगाया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा बलात्संग के लिए दोषसिद्ध किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा सहमति-जन्य मैथुन का मामला होने के आधार पर अभियुक्त को दोषमुक्त किया जाना – मामले की परिस्थितियों, मृत्युकालिक कथनों आदि के आधार पर इसे सहमति-जन्य मैथुन का मामला नहीं कहा जा सकता है और उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को धारा 376 के अधीन अपराध के लिए दोषमुक्त करने का आदेश गलत है और इसे अपास्त करना उचित होगा ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 300 और धारा 304 भाग 2 – मृतका के साथ बलात्संग और उसके द्वारा अभियुक्त को तुरंत यह धमकी देने पर कि वह घटना के बारे में अपनी माता को बताएगी, उस पर मिट्टी का तेल छिड़क कर और आग लगाकर मृत्यु कारित किया जाना – अभियुक्त के आचरण से यह उपदर्शित होता है कि उसका आशय मृतका के साथ बलात्संग करने के पश्चात् उसकी हत्या करने का था ताकि उसका अपराध उजागर न हो सके, इसलिए यह हत्या का मामला है और अभियुक्त धारा 304 भाग 2 के बजाय धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किए जाने का दायी है ।

अभियुक्त-प्रत्यर्थी और एक अन्य अभियुक्त ने विपदग्रस्त के घर में घुसकर उसके साथ बलात्संग किया । उसने शोर मचाया और तुरंत उन्हें धमकी दी कि वह घटना के बारे में अपनी माता को बताएगी । इस पर अभियुक्तों ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगा दी । विपदग्रस्त को सिविल अस्पताल ले जाया गया । उपचार के दौरान दो माह के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई । मामले की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई । अभियुक्तों को आरोप-पत्रित किया गया । सुपुर्दगी के पश्चात् भारतीय दंड संहिता की धारा 454/376(छ)/302/34 के अधीन उनका विचारण किया गया । विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-प्रत्यर्थी रमन को भारतीय दंड संहिता की धारा 454/376/302 के अधीन अपराध कारित करने के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया । अन्य अभियुक्त को संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त कर दिया गया । विचारण न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर अभियुक्त रमन ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने यह पाया कि यह मामला सहमति-जन्य मैथुन का है और जब विपदग्रस्त ने उसे यह धमकी दी कि वह इस घटना को अपनी माता को बताएगी तो उसने तत्क्षण उस पर मिट्टी का तेल छिड़क दिया ताकि उसे दाह क्षतियां कारित कर सके । इसे भारतीय दंड संहिता की धारा 300

के अधीन आने वाला स्वेच्छया मृत्यु कारित करने का मामला नहीं कहा जा सकता है, इसलिए भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन दोषसिद्धि को अपास्त कर दिया और धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को अपास्त करते हुए धारा 304 भाग 2 के अधीन दोषसिद्धि अभिलिखित की गई। राज्य ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की। उच्च न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् यह प्रकट होता है कि इसे सहमति-जन्य मैथुन का मामला नहीं कहा जा सकता है। साक्ष्य और परिस्थितियां इस मामले के सहमति-जन्य मैथुन का होने के प्रतिकूल हैं। प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में विपदग्रस्त की आयु 14 वर्ष उल्लिखित थी। चिकित्सीय रिपोर्ट में डाक्टर ने विपदग्रस्त की आयु 14 वर्ष अभिलिखित की है। मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में भी आयु 15 वर्ष उल्लिखित है। तथापि, विकिरण विज्ञानी का साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है जिससे कि मृतका की आयु का अभिनिश्चय हो सके। इसलिए यह न्यायालय उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष को उलटना नहीं चाहता है कि अभियोजन पक्ष मृतका की आयु को सिद्ध करने में सफल नहीं रहा है। तथापि, यह वास्तविकता है कि वह अल्पवय थी और हृष्ट-पुष्ट नहीं थी तथा उसे बहुत आसानी से वश में किया जा सकता था। मानस हजारिका, जो विपदग्रस्त का भाई है, के साक्ष्य में यह आया है कि जब विपदग्रस्त ने शोर मचाया था, तब इस साक्षी को अभियुक्त रमन द्वारा धमकी दी गई थी और उसके पश्चात् अभियुक्त रमन ने विपदग्रस्त पर मिट्टी का तेल छिड़क दिया था और आग लगा दी थी। डा. अलका देवी के कथन में भी यह बात आई है कि जब विपदग्रस्त ने अपना वृत्तांत दिया था, जिसे मृत्युकालिक कथन समझा गया है, तब उसने इस संबंध में कथन किया कि जब “उसने शोर मचाया तो अभियुक्त ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़क दिया और उसे आग लगा दी।” चिकित्सीय रिपोर्ट में अभिलिखित कथन की सत्यता के बारे में संदेह करने के लिए कुछ नहीं है जो कि विपदग्रस्त द्वारा किए गए कथन पर आधारित है और जिसे डा. अलका देवी द्वारा साबित किया गया है। इस प्रकार, यह पूर्णतः स्पष्ट है कि यह सहमति-जन्य मैथुन का मामला नहीं है, अपितु विपदग्रस्त ने उसके साथ बलात्संग करने पर शोर मचाया था और यह भी कि उसके द्वारा यह धमकी देने पर कि वह घटना के बारे में अपनी माता को बताएगी, अभियुक्त रमन ने उसके शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़कने के पश्चात् उसे आग लगा दी थी। इस प्रकार उच्च न्यायालय ने विचारण

न्यायालय के निष्कर्ष को उलटकर गलती की है जो कि पूर्वोक्त परिस्थितियों और अभिलेख पर के साक्ष्य पर आधारित है, जिससे स्पष्ट रूप से यह प्रकट होता है कि यह सहमति-जन्य मैथुन का मामला नहीं है। सहमति-जन्य मैथुन के मामले में विपदग्रस्त ने शोर नहीं मचाया होता और तुरंत घटना के बारे में अपनी माता को बताने की अपराधियों को धमकी नहीं दी गई होती। जैसा कि मृतका के भाई द्वारा कथन किया गया है, जब उस पर मिट्टी का तेल छिड़का गया, उस समय वह निर्वस्त्र थी। वास्तव में अभियुक्त रमन ने बलात्संग के साक्ष्य को मिटाने के लिए उस पर मिट्टी का तेल छिड़का और उसे आग लगा दी, जिससे कि वह शांत हो जाए और उसका (रमन) पाप उजागर न हो सके। तथापि, मृतका के अप्राप्तवय भाई ने दरवाजे की लकीर से झांककर घटना को देखा था और घटना का वर्णन करने के लिए विपदग्रस्त भी कुछ समय जीवित रही थी। इस न्यायालय की राय में, उच्च न्यायालय ने अभियुक्त रमन को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन कारित अपराध के लिए दोषमुक्त करके विधि की दृष्टि से गलती की है। व्यक्ति झूठ बोल सकता है किंतु परिस्थितियां झूठ नहीं बोलती, यह साक्ष्य का मूल्यांकन करने का मूलभूत सिद्धांत है। परिस्थितियां, मौखिक साक्ष्य और मृतका के मृत्युकालिक कथन से अचूक यह इंगित होता है कि यह सहमति-जन्य मैथुन का मामला नहीं है। मृत्युकालिक कथनों को विपदग्रस्त के तत्काल आचरण के साथ पढ़ा जाना चाहिए, जिनसे यह सहमति-जन्य मैथुन का मामला होने से बाहर हो जाता है। अभियुक्त ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभिलिखित कथन में अपराध कारित करने से पूरी तरह से इनकार किया है। इस प्रकार, पूर्वोक्त साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय को उच्च न्यायालय के इस आशय के निष्कर्ष को अपास्त करने में कोई संकोच नहीं है कि यह सहमति-जन्य मैथुन का मामला था। (पैरा 9)

यह प्रश्न कि यह मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत आता है या धारा 304 भाग 2 के अंतर्गत, पूर्वोक्त निष्कर्ष अभिलिखित करने के लिए उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि विपदग्रस्त द्वारा यह धमकी देने पर कि इस सहमति-जन्य मैथुन के बारे में वह अपनी माता को बताएगी, अभियुक्त ने तत्क्षण उसे आग लगा दी। इस न्यायालय के इस निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए कि यह सहमति-जन्य मैथुन का मामला नहीं है और जिस शर्मनाक तरीके और रीति में घटना घटित हुई, उससे संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है कि अभियुक्त

सदैव-सदैव के लिए मृतका को समाप्त कर देना चाहता था । उसका आशय मृतका को आग लगाकर मृत्यु कारित करने का था जिससे कि बलात्संग का अपराध कारित करने की बात उजागर न हो सके । ऐसी कोई परिस्थिति अभिलेख पर नहीं लाई गई है जिससे यह उपदर्शित होता हो कि यह ऐसे किसी अपवाद के अंतर्गत आने वाला मामला है जो इसे भारतीय दंड संहिता की धारा 300 की परिधि से बाहर ले जाता है । अतः इस न्यायालय की राय में, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके गलती की है कि अभियुक्त का आशय मृत्यु कारित करने का नहीं था । जो तथ्य और परिस्थितियां साबित की गई हैं उनसे यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्त विपदग्रस्त की मृत्यु कारित करके उससे पीछा छुड़ाना चाहता था । डाक्टर ने भी यह राय व्यक्त की है कि क्षतियां जीवन के लिए खतरनाक थीं और विपदग्रस्त को डाक्टर के पास अनिश्चित दशा में ले जाया गया था । वह दो माह जीवित रही, यह कसौटी नहीं है । यह ऐसा मामला है जहां स्पष्ट रूप से अभियुक्त का आशय अपराध कारित करने के पश्चात् मृतका की हत्या करना था ताकि उसे मौन किया जा सके । संपूर्ण परिस्थितियों से पूर्ण रूप से यह सिद्ध होता है कि अभियुक्त का आशय मृतका के साथ जबरदस्ती मैथुन करने के पश्चात् उसे आग लगाकर हत्या कारित करने का था । अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेल की यह दलील कि अभियुक्त ने मृतका पर मिट्टी का तेल उसके द्वारा घटना के बारे में अपनी माता को बताने की धमकी देने के कारण छिड़का और उसे आग लगाई थी । पूर्वोक्त आचरण अभियुक्त को निरापराध घोषित नहीं करता अपितु इससे अभियुक्त का मृत्यु कारित करने का आशय उपदर्शित होता है और उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंड के लिए दायी बनाता है । यह कृत्य मृत्यु कारित करने के आशय से किया गया था । मृत्यु कारित करने का आशय मामले में मौजूद है । यह कृत्य हत्या की कोटि में आता है । (पैरा 10)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[1996]	(1996) 2 एस. सी. सी. 384 :
पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह और अन्य ;	9
[1975]	(1975) 3 एस. सी. सी. 492 :
बंडारुपल्ली वेंकटेश्वरलु बनाम आंध्र प्रदेश राज्य ।	10

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक अपील सं. 668.

2005 की दांडिक अपील सं. 215 में गुवाहाटी उच्च न्यायालय के तारीख 12 मार्च, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री अविजित राय और सुश्री वाटिका सहाय, मैसर्स कारपोरेट ला ग्रुप

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री संजय कुमार दूबे, राकेश कुमार तिवारी, कृष्ण कांत दूबे और एस. एस. नेहरा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अरुण मिश्रा ने दिया ।

न्या. मिश्रा – राज्य द्वारा यह अपील उच्च न्यायालय के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा अभियुक्त की भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन दोषसिद्धि को अपास्त करते हुए और भारतीय दंड संहिता की धारा 302 से धारा 304 भाग 2 के अधीन दोषसिद्धि को परिवर्तित किया गया और अभियुक्त को सात वर्ष के कारावास का दंडादेश दिया गया जबकि विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त की भारतीय दंड संहिता की धारा 454 के अधीन अभिलिखित दोषसिद्धि और तद्द्वारा एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने के दंडादेश को कायम रखा गया ।

2. अभियोजन पक्षकथन के अनुसार घटना तारीख 5 जनवरी, 2003 को अपराह्न में 5.00 बजे तब घटी जब अभियुक्त रमन डोवराह और जनमेजोए गोगोई **उर्फ** संजू विपदग्रस्त के घर में घुसे और उसके साथ बलात्संग किया तथा उस पर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगा दी । विपदग्रस्त के शोर मचाने पर लोग एकत्रित हो गए और विपदग्रस्त को सिविल अस्पताल ले जाया गया । उसे 55 प्रतिशत दाह क्षतियां पहुंची थीं और क्योंकि उसकी हालत गंभीर थी इसलिए उसे ए. एम. सी. एच. डिबरुगढ़ रेफर किया गया, जहां उपचार के दौरान दो माह के पश्चात् तारीख 11 जुलाई, 2003 को उसकी मृत्यु हो गई । घटना की तारीख को विपदग्रस्त का मामा श्री खिरोडे हजारिका, अभि. सा. 1 ने पुलिस थाना, तिनसुखिया में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की ।

3. अभियुक्तों को आरोप-पत्रित किया गया । सुपुर्दगी के पश्चात् भारतीय दंड संहिता की धारा 454/376(छ)/302/34 के अधीन उनका

विचारण किया गया। अभियोजन पक्ष ने 11 साक्षियों की परीक्षा कराई। अभियुक्तों ने दोषी होने से इनकार किया और यह दलील दी की उन्हें मामले में मिथ्या रूप से फंसाया गया है। विचारण न्यायालय ने अभियुक्त/प्रत्यर्थी रमन को भारतीय दंड संहिता की धारा 454/376/302 के अधीन अपराध कारित करने के लिए दोषसिद्ध किया और उसे क्रमशः एक वर्ष, 10 वर्ष और आजीवन कारावास तथा 3,000/- रुपए के जुर्माने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर एक मास का साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया। इससे व्यथित होकर अभियुक्त रमन ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की और उसे भागतः मंजूर किया गया। इससे व्यथित होकर राज्य ने यह अपील फाइल की।

4. उच्च न्यायालय ने यह पाया कि यह मामला अभियुक्त रमन के साथ सहमति-जन्य मैथुन का है और जब विपदग्रस्त ने उसे यह धमकी दी कि वह इस घटना को अपनी माता को बताएगी तो उसने तत्क्षण उस पर मिट्टी का तेल छिड़क दिया ताकि उसे दाह क्षतियां कारित कर सके। इसे भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अधीन आने वाला स्वेच्छया मृत्यु कारित करने का मामला नहीं कहा जा सकता है, इसलिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को अपास्त कर दिया गया। भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग 2 के अधीन दोषसिद्धि अभिलिखित की गई।

5. राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि यह सहमति-जन्य मैथुन का मामला नहीं है। उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को उलटकर विधि की गंभीर गलती की है। विपदग्रस्त ने शोर मचाया था और अभियुक्तों को धमकी दी थी कि वह घटना के बारे में अपनी माता को बताएगी। इस बात पर अभियुक्तों ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़का और उसे आग लगा दी। इसे भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग 2 के अधीन आने वाला मामला नहीं कहा जा सकता है। विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और 376 के अधीन ठीक ही दोषसिद्धि अभिलिखित की गई थी।

6. प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि मैथुन करते समय विपदग्रस्त ने कोई विरोध नहीं किया था। उसने अपने मृत्युकालिक कथन में यह कथन नहीं किया कि उसने मैथुन करने का विरोध किया था। क्योंकि विपदग्रस्त ने अपनी माता

को घटना के बारे में बताने के लिए अभियुक्त को धमकी दी थी, इसलिए अभियुक्त ने त्वरित आवेश में मृतका की मृत्यु कारित करने के आशय के बिना उस पर मिट्टी का तेल छिड़क दिया था। कोई पूर्व-चिंतन नहीं था। अतः अभियुक्त की किशोर आयु को भी ध्यान में रखते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग 2 के अधीन दोषसिद्धि में हस्तेक्षप करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अभियुक्त को अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य को देखते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता था।

7. हमने अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य का सावधानीपूर्वक निर्धारण किया। जब हम अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षा कराए गए विभिन्न साक्षियों के साक्ष्य पर विचार करते हैं, तो यह पाते हैं कि खिरोडे हजारिका, अभि. सा. 1 ने यह कथन किया है कि मृतका ने अभियुक्त की सह-अपराधिता के बारे में मौखिक मृत्युकालिक कथन किया था। मृदुला हजारिका, अभि. सा. 2 ने अभियुक्त रमन और अन्य दोषमुक्त अभियुक्त को मकान से भागते हुए देखा था, विपदग्रस्त ने उसे मौखिक मृत्युकालिक कथन में यह बताया था कि रमन ने उसका जीवन बर्बाद किया है। उसने विपदग्रस्त के भाई के सिसकने की आवाज सुनी थी और तब वह मकान में आई थी। ललिता हजारिका, अभि. सा. 3 एक अन्य साक्षी है। विपदग्रस्त उसकी भतीजी थी। विपदग्रस्त ने उससे किए गए मौखिक मृत्युकालिक कथन में यह सूचित किया था कि रमन और अन्य अभियुक्त ने उसका जीवन बर्बाद कर दिया है। औलाबती हजारिका, अभि. सा. 4 विपदग्रस्त की माता है। उसने विपदग्रस्त को मकान में जली हालत में पड़े हुए देखा था। विपदग्रस्त ने उसे यह बताया था कि जब उसने यह कहा कि वह घटना के बारे में अपनी माता को बताएगी, इस पर अभियुक्तों ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगा दी। मृतका के भाई मानस हजारिका, अभि. सा. 5, अप्राप्तवय आयु 14 वर्ष, ने यह कथन किया कि जब दादी मानकी हजारिका और यह साक्षी रसोईघर में थे, उसकी बड़ी बहिन, विपदग्रस्त बिस्तर में लेटी हुई थी क्योंकि उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, दादी मानकी बहरी और अंधी थी और इसी कारण यह साक्षी उसके साथ था और उस समय अभियुक्त रमन और संजय मकान में आए। उन्होंने पिछला दरवाजा बंद किया और मृतका के साथ मैथुन किया। यह भी कथन किया गया कि रसोईघर और सोने के कमरे के बीच एक दरवाजा था और उसे भी अभियुक्तों द्वारा बंद कर लिया गया

था । उसने दरवाजे की दरार में से घटना देखी थी । जब उसकी बहिन, विपदग्रस्त चिल्लाई तो अभियुक्त रमन ने इस साक्षी को मारने की धमकी दी । जब विपदग्रस्त ने यह कहा कि वह घटना के बारे में अपनी माता को बताएगी, तो इस बात से अभियुक्तों ने भड़ककर उस पर मिट्टी का तेल छिड़का और आग लगा दी । विपदग्रस्त फ्रॉक पहने हुई थी । रमन ने उसकी बहिन के वस्त्र उतार दिए थे और दुष्कर्म किया था । उसकी बहिन के शरीर पर उस समय कोई वस्त्र नहीं था जब अभियुक्तों ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़का था और उसे आग लगाई थी । इस साक्षी ने शोर मचाया था और इस पर उसकी बड़ी बहिन मृदुला हजारिका घटनास्थल पर आई और उसके पश्चात् मृतका को अस्पताल ले जाया गया । इस साक्षी के अनुसार, दोनों अभियुक्तों ने बलात्संग किया था । तथापि, विचारण न्यायालय द्वारा अन्य अभियुक्त संजय को संदेह का फायदा दिया गया है क्योंकि मृतका ने अपने मृत्युकालिक कथन में दोषमुक्त अभियुक्त संजय पर मैथुन करने का आरोप नहीं लगाया है ।

8. डा. बी. सी. राय मेधी ने मरणोत्तर परीक्षा की और यह कथन किया कि विपदग्रस्त की मृत्यु दाह क्षतियों के कारण हुई थी । डा. अलका देवी, अभि. सा. 9 ने आरंभ में घटना की तारीख को विपदग्रस्त का परीक्षण किया था । इस साक्षी ने यह कथन किया कि विपदग्रस्त ने उससे यह कथन किया था कि जब उसने शोर मचाया तो अभियुक्तों ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़क दिया और उसे आग लगा दी । अभि. सा. 10, न्यायिक मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन मृतका का मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया था, जिसमें उसने स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि अभियुक्त रमन ने उसके साथ मैथुन किया और उसके यह कहने पर कि वह घटना के बारे में अपनी माता को बताएगी, तो उस पर मिट्टी का तेल छिड़कने के पश्चात् उसे आग लगा दी गई ।

9. पूर्वोल्लिखित साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् यह प्रकट होता है कि इसे सहमति-जन्य मैथुन का मामला नहीं कहा जा सकता है । साक्ष्य और परिस्थितियां इस मामले के सहमति-जन्य मैथुन का होने के प्रतिकूल हैं । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में विपदग्रस्त की आयु 14 वर्ष उल्लिखित थी । चिकित्सीय रिपोर्ट में डाक्टर ने विपदग्रस्त की आयु 14 वर्ष अभिलिखित की है । मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में भी आयु 15 वर्ष उल्लिखित है । तथापि, विकिरण विज्ञानी का साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है जिससे कि मृतका की आयु का अभिनिश्चय हो सके । इसलिए हम उच्च न्यायालय के इस

निष्कर्ष को उलटना नहीं चाहते हैं कि अभियोजन पक्ष मृतका की आयु को सिद्ध करने में सफल नहीं रहा है। तथापि, यह वास्तविकता है कि वह अल्पवय थी और हृष्ट-पुष्ट नहीं थी तथा उसे बहुत आसानी से वश में किया जा सकता था। अभि. सा. 5, अर्थात् मानस हजारिका, जो विपदग्रस्त का भाई है, के साक्ष्य में यह आया है कि जब विपदग्रस्त ने शोर मचाया था, तब इस साक्षी को अभियुक्त रमन द्वारा धमकी दी गई थी और उसके पश्चात् अभियुक्त रमन ने विपदग्रस्त पर मिट्टी का तेल छिड़क दिया था और आग लगा दी थी। अभि. सा. 9, डा. अलका देवी के कथन में भी यह बात आई है कि जब विपदग्रस्त ने अपना वृत्तांत दिया था, जिसे मृत्युकालिक कथन समझा गया है, तब उसने इस संबंध में कथन किया कि जब “उसने शोर मचाया तो अभियुक्त ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़क दिया और उसे आग लगा दी।” चिकित्सीय रिपोर्ट में अभिलिखित कथन की सत्यता के बारे में संदेह करने के लिए कुछ नहीं है जो कि विपदग्रस्त द्वारा किए गए कथन पर आधारित है और जिसे अभि. सा. 9, डा. अलका देवी द्वारा साबित किया गया है। इस प्रकार, यह पूर्णतः स्पष्ट है कि यह सहमति-जन्य मैथुन का मामला नहीं है, अपितु विपदग्रस्त ने उसके साथ बलात्संग करने पर शोर मचाया था और यह भी कि उसके द्वारा यह धमकी देने पर कि वह घटना के बारे में अपनी माता को बताएगी, अभियुक्त रमन ने उसके शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़कने के पश्चात् उसे आग लगा दी थी। इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को उलटकर गलती की है जो कि पूर्वोक्त परिस्थितियों और अभिलेख पर के साक्ष्य पर आधारित है, जिससे स्पष्ट रूप से यह प्रकट होता है कि यह सहमति-जन्य मैथुन का मामला नहीं है। सहमति-जन्य मैथुन के मामले में विपदग्रस्त ने शोर नहीं मचाया होता और तुरंत घटना के बारे में अपनी माता को बताने की अपराधियों को धमकी नहीं दी गई होती। जैसा कि मृतका के भाई (अभि. सा. 5) द्वारा कथन किया गया है, जब उस पर मिट्टी का तेल छिड़का गया, उस समय वह निर्वस्त्र थी। वास्तव में अभियुक्त रमन ने बलात्संग के साक्ष्य को मिटाने के लिए उस पर मिट्टी का तेल छिड़का और उसे आग लगा दी, जिससे कि वह शांत हो जाए और उसका (रमन) पाप उजागर न हो सके। तथापि, मृतका के अप्राप्तवय भाई ने दरवाजे की लकीर से झांककर घटना को देखा था और घटना का वर्णन करने के लिए विपदग्रस्त भी कुछ समय जीवित रही थी। हमारी राय में, उच्च न्यायालय ने अभियुक्त रमन को भारतीय दंड संहिता

की धारा 376 के अधीन कारित अपराध के लिए दोषमुक्त करके विधि की दृष्टि से गलती की है। व्यक्ति झूठ बोल सकता है किंतु परिस्थितियां झूठ नहीं बोलती, यह साक्ष्य का मूल्यांकन करने का मूलभूत सिद्धांत है। परिस्थितियां, मौखिक साक्ष्य और मृतका के मृत्युकालिक कथन से अचूक यह इंगित होता है कि यह सहमति-जन्य मैथुन का मामला नहीं है। मृत्युकालिक कथनों को विपदग्रस्त के तत्काल आचरण के साथ पढ़ा जाना चाहिए, जिनसे यह सहमति-जन्य मैथुन का मामला होने से बाहर हो जाता है। अभियुक्त ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभिलिखित कथन में अपराध कारित करने से पूरी तरह से इनकार किया है। इस प्रकार, पूर्वोक्त साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए हमें उच्च न्यायालय के इस आशय के निष्कर्ष को अपास्त करने में कोई संकोच नहीं है कि यह सहमति-जन्य मैथुन का मामला था। हम विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष को प्रत्यावर्तित करते हैं। **पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह और अन्य¹** वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है :-

“न्यायालयों को साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय इस तथ्य के प्रति अवश्य सचेत रहना चाहिए कि बलात्संग के मामले में कोई स्वाभिमानी स्त्री उसके साथ बलात्संग कारित होने जैसा अपने ही सम्मान को ठेस पहुंचाने वाला कथन करने के लिए न्यायालय में नहीं आएगी। लैंगिक उत्पीड़न के मामलों में ऐसी अनुमित बातों को, जिनका अभियोजन के पक्षकथन की सत्यता पर कोई तात्त्विक प्रभाव नहीं पड़ता है और यहां तक कि अभियोक्त्री के कथन में आई विसंगतियां को अभियोजन के अन्यथा विश्वसनीय पक्षकथन को तब तक नकारने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि विसंगतियां ऐसी न हों जिनकी प्रकृति घातक हो। महिलाओं की अंतर्निहित लज्जाशीलता और लैंगिक आक्रमण के अपमान को छिपाना ऐसी बातें हैं जिनकी न्यायालयों को अनदेखी नहीं करनी चाहिए.....।”

10. यह प्रश्न कि यह मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत आता है या धारा 304 भाग 2 के अंतर्गत, पूर्वोक्त निष्कर्ष अभिलिखित करने के लिए उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि

¹ (1996) 2 एस. सी. सी. 384.

विपदग्रस्त द्वारा यह धमकी देने पर कि इस सहमति-जन्य मैथुन के बारे में वह अपनी माता को बताएगी, अभियुक्त ने तत्क्षण उसे आग लगा दी। हमारे इस निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए कि यह सहमति-जन्य मैथुन का मामला नहीं है और जिस शर्मनाक तरीके और रीति में घटना घटित हुई, उससे संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है कि अभियुक्त सदैव-सदैव के लिए मृतका को समाप्त कर देना चाहता था। उसका आशय मृतका को आग लगाकर मृत्यु कारित करने का था जिससे कि बलात्संग का अपराध कारित करने की बात उजागर न हो सके। ऐसी कोई परिस्थिति अभिलेख पर नहीं लाई गई है जिससे यह उपदर्शित होता हो कि यह ऐसे किसी अपवाद के अंतर्गत आने वाला मामला है जो इसे भारतीय दंड संहिता की धारा 300 की परिधि से बाहर ले जाता है। अतः हमारी राय में, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके गलती की है कि अभियुक्त का आशय मृत्यु कारित करने का नहीं था। जो तथ्य और परिस्थितियां साबित की गई हैं उनसे यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्त विपदग्रस्त की मृत्यु कारित करके उससे पीछा छुड़ाना चाहता था। डाक्टर ने भी यह राय व्यक्त की है कि क्षतियां जीवन के लिए खतरनाक थीं और विपदग्रस्त को डाक्टर (अभि. सा. 9) के पास अनिश्चित दशा में ले जाया गया था। वह दो माह जीवित रही, यह कसौटी नहीं है। यह ऐसा मामला है जहां स्पष्ट रूप से अभियुक्त का आशय अपराध कारित करने के पश्चात् मृतका की हत्या करना था ताकि उसे मौन किया जा सके। संपूर्ण परिस्थितियों से पूर्ण रूप से यह सिद्ध होता है कि अभियुक्त का आशय मृतका के साथ जबरदस्ती मैथुन करने के पश्चात् उसे आग लगाकर हत्या कारित करने का था। अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेल की यह दलील कि अभियुक्त ने मृतका पर मिट्टी का तेल उसके द्वारा घटना के बारे में अपनी माता को बताने की धमकी देने के कारण छिड़का और उसे आग लगाई थी। पूर्वोक्त आचरण अभियुक्त को निरापराध घोषित नहीं करता अपितु इससे अभियुक्त का मृत्यु कारित करने का आशय उपदर्शित होता है और उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंड के लिए दायी बनाता है। यह कृत्य मृत्यु कारित करने के आशय से किया गया था। मृत्यु कारित करने का आशय मामले में मौजूद है। यह कृत्य हत्या की कोटि में आता है। **बंडारुपल्ली वेंकटेश्वरलु बनाम आंध्र प्रदेश राज्य¹** वाले मामले में इस

¹ (1975) 3 एस. सी. सी. 492.

न्यायालय ने मिट्टी का तेल छिड़कने और आग लगाने के आशय पर विचार किया और यह मत व्यक्त किया :-

“इस परिस्थिति का अवलंब लेते हुए कि अपीलार्थी ने आग बुझाने की कोशिश की थी, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह आग्रह किया कि अपीलार्थी का मृतका की हत्या करने का कोई आशय नहीं था और इसलिए धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है । इस दलील को स्वीकार करना असंभव है क्योंकि यदि अभियुक्त सं. 6 द्वारा मृतक पर मिट्टी का तेल छिड़कने के पश्चात् अपीलार्थी ने उसके शरीर को आग लगाई थी, तब कोई संदेह नहीं हो सकता है कि अपीलार्थी का आशय मृतक की हत्या करना था ।”

11. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमारी यह सुविचारित राय है कि उच्च न्यायालय द्वारा अपील को भागतः मंजूर करते हुए पारित किया गया निर्णय और आदेश अपास्त किए जाने योग्य है और अपास्त किया जाता है । विचारण न्यायालय द्वारा पारित किया गया दोषसिद्धि और दंडादेश का निर्णय और आदेश एतद्द्वारा प्रत्यावर्तित किया जाता है । यह अपील तदनुसार मंजूर की जाती है ।

12. अभियुक्त को दंडादेश की शेष अवधि भोगने के लिए तुरंत अभिरक्षा में लिया जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2016] 2 उम. नि. प. 166

सुप्रीम कोर्ट वुमन लायर्स एसोसिएशन

बनाम

भारत संघ और अन्य

11 जनवरी, 2016

न्यायमूर्ति दीपक मिश्र और न्यायमूर्ति एन. वी. रमण

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 141 [सपटित दंड संहिता, 1860 की धारा 376] – बालिका यौन उत्पीड़न के लिए दंड – संविधान के अधीन अपराध सृजित करने और उसके लिए दंड लागू करने का कार्य विधायिका का है, न्यायालय विधायिका को मात्र सुझाव दे सकता है – वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में बलात्संग के संदर्भ में “बालक” पद को परिभाषित करने और बालक यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए गंभीर दंड उपबंधित करने की तत्काल आवश्यकता है ।

याची, सुप्रीम कोर्ट वुमन लायर्स एसोसिएशन ने ऐसे बाल दुर्व्यवहारियों के लिए अतिरिक्त दंड के रूप में “रासायनिक बधियाकरण” के अधिरोपण पर विचार करने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन इस न्यायालय के अधिकारिता का अवलंब लिया जो नृशंस, कल्पनातीत और पाश्विक लैंगिक अपराधों द्वारा बहुत गंभीर रूप से उद्वेलित होकर जहां कतिपय मनोवैज्ञानिक और संभवतः मनःविकृत अपराधियों ने 28 दिन की नवजात लड़की को भी नहीं बकसा और कतिपय परिस्थितियों में ऐसी छोटी लड़कियों के साथ डरावना बर्ताव किया जो 2 से 10 वर्ष के बीच की थीं मानो वे बिल्कुल तुच्छ वस्तुएं हों । उच्चतम न्यायालय द्वारा रिट याचिका का निपटान करते हुए,

अभिनिर्धारित – आरंभ में ही, न्यायालय यह स्पष्ट करता है कि न्यायालय न तो अपराध सृजित करता है और न ही वह दंड का आरंभ कर सकता है या विधान बना सकता है । यह विधान-मंडल का कर्तव्य है । विशाखा वाले मामले में अधिकथित सिद्धांत बिल्कुल भिन्न है, क्योंकि उक्त मामले में न्यायालय ने अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशन अर्थात्, “महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के विभेद के उन्मूलन का कन्वेंशन”, विशेषकर नियोजन में हिंसा और समता विषयक अनुच्छेद का अवलंब लिया और आगे यौन शोषण और गरिमा के साथ कर्म के अधिकार से संरक्षण सहित लिंग समता की

अवधारणा को निर्दिष्ट किया और उस आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि लिंग समता और यौन शोषण और दुरुपयोग, विशेषकर कार्यस्थल पर यौन शोषण के विरुद्ध गारंटी के आधारभूत मानव अधिकार के प्रभावी प्रवर्तन का उपबंध करने के लिए अधिनियमित विधि के अभाव में संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए मार्गदर्शक सिद्धांत और संनियम अधिकथित किए जा सकते हैं और ऐसे मार्गदर्शक सिद्धांतों को संविधान के अनुच्छेद 141 के अधीन घोषित विधि माना जाए। यह न्यायालय बालिका के साथ हुए बलात्संग पर विचार कर रहा है। ऐसे अपराध अकथनीय कारणों से व्याप्त हैं और यह विधि और विधि निर्माताओं का दायित्व है कि वे बच्चों विशेषकर ऐसी बालिकाओं के प्रति सम्मान का विकास करें जिनके साथ ऐसी बर्बरता और निर्दयता का बर्ताव किया जाता है। धारा 376(2)(i) ऐसे अपराधी के बारे में है जो ऐसी स्त्री जिसकी आयु 16 वर्ष से कम है के साथ बलात्संग करता है किंतु ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहां लड़कियों और छोटी बालिकाओं के साथ बलात्संग किया जाता है। आगे यह उजागर करते हुए यह प्रस्ताव रखा गया कि जब समाज ऐसी विकृतता झेलता है जहां बलात्संग जैसी बाल दुरुपयोग काफी व्याप्त हैं वहां ऐसे अपराधियों पर अधिक और गंभीर दंड अधिरोपित करने के लिए विनिर्दिष्ट उपबंध करने की अपेक्षा है क्योंकि धारा 376ख के अधीन जो पृथक्करण के दौरान अपनी पत्नी से पति द्वारा मैथुन या धारा 376ग प्राधिकारवान् व्यक्ति द्वारा यौन मैथुन या धारा 376ड बारंबार अपराध के लिए दंड के बारे में है। वर्तमान समाज की स्थिति को ध्यान में रखते हुए “बालक” पद को परिभाषित करने की अपेक्षा है। 16 वर्ष से कम आयु की स्त्री निश्चित रूप से अप्राप्तवय किंतु एक बालिका है यद्यपि अप्राप्तवय का भिन्न प्रवर्ग हो सकता है। जब उसके साथ बलात्संग किया जाता है तो बालिका की व्यथा और कष्ट उसके शारीरिक रचना पर जघन्य हमला है। उसे मैथुन या बलात्संग के बारे में कोई ज्ञान नहीं है। यह एक दुःस्वप्न है। अतः याची एसोसिएशन द्वारा व्यक्त चिंता न्यायोचित है। यह अव्यावहारिक विचारधारा या अप्रत्याशित अनुमान की “चलायमान कल्पना” नहीं है। यह ठोस शब्दों में वास्तविकता का प्रदर्शन है। जब कोई समाज इस तरह से आगे बढ़ता है तो विधि का भय होना चाहिए और दंड भिन्न रूप में निश्चित होना चाहिए। ऐसी स्थिति में अपराध के शास्त्रीय बोध पर विचार करते हुए मार्कस ओरिलियस, दूसरी शताब्दी पूर्व रोमन सम्राट द्वारा यह कहा गया था कि दरिद्रता अपराध की माता है, उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि बालिका पर किए गए अपराध का अपराधकर्ता की आर्थिक प्रास्थिति से कोई संबंध नहीं है; इसके विपरीत, इसका तंत्रीय बर्ताव से

संबंध हो सकता है। वस्तुतः, यह ऐसा अपराध है जो लज्जाहीन प्रदर्शन है और पीड़ित के प्रति बिल्कुल असंवेदनात्मक बर्ताव है। यह सामाजिक मूल्यों का घोर उल्लंघन और व्यक्ति विशेष की असफलता है। यह घोर विप्रतीपता का कार्य है अतः, उद्भूत हुई ऐसी स्थिति पर पुनः विचार करना अनिवार्य है। यह न्यायालय अधिक दंड का उपबंध नहीं कर सकता। यह विधान-मंडल को केवल सुझाव दे सकता है। न्यायालय पूर्णतः सचेत हैं कि भारतीय दंड संहिता बलात्संग के अपराध के लिए दंड का उपबंध करती है। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि बालिका अप्राप्तवय है किंतु ऐसा समय आ गया है कि जहां बालिका और अप्राप्तवय बालिका के बीच भेद किया जाए, यह बालिका के लिए दस वर्ष की ऊपरी आयु सीमा नियत कर किया जा सकता है। न्यायालय यह नहीं सोचता कि उस आयु तक मानवता के वैभवशाली वरदान के रूप में बालिका शरीर में किसी तरह की ऐंद्रिक इच्छा की भावना नहीं रख सकती। एक बार जब वह ऐसे अपराध की शिकार हो जाती है तो उसके मस्तिष्क पर हानिकर प्रभाव पड़ता है। मानसिक वेदना काफी समय तक बनी रहती है। दुःख और भय हमेशा सताते रहते हैं। इस तरह के बाल दुरुपयोग को रोकने के लिए कदम उठाने की आवश्यकता है अतः, संभवतः बलात्संग के संदर्भ में “बालक” पद को परिभाषित करने की आवश्यकता है और इसके पश्चात् ऐसे अपराधियों को जो इस तरह के अपराध में लिप्त हैं की बाबत और कठोर दंड देने का उपबंध करने की आवश्यकता है। उक्त विनिश्चय के आलोक में, न्यायालय इस आशा के साथ यह सुझाव देता है कि संसद् इस सामूहिक व्यथा का उत्तर देगी जिस पर वस्तुतः विचार करने की आवश्यकता है। न्यायालय इस पर इससे अधिक कुछ नहीं कह सकता। (पैरा 5, 18, 12, 13 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2014]	(2014) 9 एस. सी. सी. 1 : मनोज नरुला बनाम भारत संघ ;	6
[2004]	(2004) 5 एस. सी. सी. 518 : साक्षी बनाम भारत संघ और अन्य ;	3
[1997]	(1997) 6 एस. सी. सी. 241 : विशाखा और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य ;	3

[1996] (1996) 4 एस. सी. सी. 596 :
 एस. गोपाल रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य । 8
 आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 2016 की रिट याचिका (सिविल)
 सं. 4.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका ।

अपीलार्थी की ओर से सुश्री महालक्ष्मी पवानी, ज्येष्ठ
 अधिवक्ता, सुश्री शिवा विजया
 कुमार, सुश्री अनीता बाफना और
 सुश्री प्रेरणा कुमारी

प्रत्यर्थी की ओर से श्री मुकुल रोहतगी, महान्यायवादी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक मिश्र ने दिया ।

न्या. मिश्र – याची, सुप्रीम कोर्ट वुमन लायर्स एसोसिएशन (एस. सी. डब्ल्यू. एल. ए.) ने ऐसे बाल दुर्व्यवहारियों के लिए अतिरिक्त दंड के रूप में “सासायनिक बधियाकरण” के अधिरोपण पर विचार करने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन इस न्यायालय के अधिकारिता का अवलंब लिया जो नृशंस, कल्पनातीत और पाश्विक लैंगिक अपराधों द्वारा बहुत गंभीर रूप से उद्वेलित होकर जहां कतिपय मनोवैज्ञानिक और संभवतः मनःविकृत अपराधियों ने 28 दिन की नवजात लड़की को भी नहीं बकसा और कतिपय परिस्थितियों में ऐसी छोटी लड़कियों के साथ डरावना बर्ताव किया जो 2 से 10 वर्ष के बीच की थीं मानो वे बिल्कुल तुच्छ वस्तुएं हों ।

2. प्रस्तुत मामले के समर्थन में याची के विद्वान् काउंसेल सुश्री शिव विजय कुमार, सुश्री अनीता बाफना और सुश्री प्रेरणा कुमारी के साथ सुश्री महालक्ष्मी पवानी, विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा यह निवेदन किया गया कि प्रातःकाल समाचार-पत्रों में कतिपय समाचारों के पढ़ने से इस देश के किसी संवेदनशील व्यक्ति के लिए यह भयानक और सोचनीय हो गया और किसी महिला के लिए बहुत पीड़ादायक और वेदनाकारक है क्योंकि ऐसा लगता है कि सभ्यता और सभ्य समाज की अवधारणा का मार्ग अपनी आधारभूत मानव मूल्यों से हटकर विनाश और विध्वंस की ओर जा रहा है । उसने हमारा ध्यान तारीख 7 दिसंबर, 2015 के टाइम्स आफ इंडिया, नई दिल्ली, तारीख 8 दिसंबर, 2015 के टाइम्स सिटी और विभिन्न टेलीविजन रिपोर्टों के समाचारों की ओर आकृष्ट किया जो यह प्रतिबिम्बित करते हैं

कि दो से पांच वर्ष की लड़कियों का दुरुपयोग किया गया है और उनके साथ बलात्संग किया गया है। कभी-कभी उन्हें वेदना के चरम परिणाम के रूप में कोमल पवित्र लड़कियों का व्यपहरण किया जाता है, निर्दयता के साथ बलात्कार किया जाता है और उनकी हत्या कर दी जाती है। उनके द्वारा यह आग्रह किया गया कि उन्हें यह पूर्णतः ज्ञात है कि यह न्यायालय किसी अपराध की बाबत दंड सृजित करने का परमादेश जारी करने के लिए अवनत नहीं है किंतु असंदिग्धतः यह न्यायालय ऐसा सुझाव दे सकता है जिससे कि विधान-मंडल सामूहिक पुकार का उचित उत्तर दे सके।

3. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने इस मुद्दे पर बल देने के लिए **विशाखा और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य¹** और **साक्षी बनाम भारत संघ और अन्य²** वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों से प्रेरणा प्राप्ति की कि यह न्यायालय हमेशा उक्त बाबत मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित कर सकता है। इसके अतिरिक्त याची के विद्वान् काउंसेल ने मानव अधिकारों के आधारभूत मूल्य और बालकों की प्रतिष्ठा को उजागर करते हुए यह निवेदन किया कि जब कोई शिशु पैदा होता है तो यह माना जाता है कि सृजनात्मक बुद्धिमत्ता या सर्वशक्तिमान अपने सक्रिय रूप में आ गया है। उसके द्वारा यह पक्ष रखा गया कि जब कोई शिशु अपनी मातृभूमि को देखता है तो यह मानव जाति के लिए अनुग्रह है किंतु दुर्भाग्यवश लड़की की जीवनावधि को कुछ लोगों के अकल्पनीय कामुक इच्छा के कारण इसके फलने-फूलने के पहले ही गला घोट दिया जाता है।

4. हमने भारत के विद्वान् महान्यायवादी श्री मुकुल रोहतगी की सहायता ली। याची के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल के निवेदनों का उत्तर देते हुए श्री रोहतगी द्वारा बिल्कुल निष्पक्षतः यह प्रस्तुत किया गया कि ऐसा समाज जो सभ्य है और हजारों वर्ष पुराने सांस्कृतिक मूल्यों से पुष्पित है तथा बालकों और मानव अधिकारों का सम्मान करता है उसमें बाल दुरुपयोग तथा लड़कियों के साथ बलात्संग को कभी सहा नहीं जा सकता और अपराधी विधि के कठोर उपबंधों से व्यवहृत किए जाने के पात्र हैं। तथापि, श्री रोहतगी ने यह निवेदन किया कि इस न्यायालय को लागू किए जाने के लिए किसी विशिष्ट या विनिर्दिष्ट दंड का सुझाव नहीं देना चाहिए क्योंकि यह विधान-मंडल की प्रज्ञा की परिधि के भीतर है। इसके अलावा

¹ (1997) 6 एस. सी. सी. 241.

² (2004) 5 एस. सी. सी. 518.

श्री रोहतगी ने यह पक्ष प्रस्तुत किया कि याची-एसोसिएशन द्वारा सुझाया गया दंड तार्किक विचार विमर्श के बजाए अधिक उत्तेजना से ग्रस्त है। सारतः, निवेदन यह है कि ऐसी महिला जो अप्राप्तवय है कि बाबत दंड भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन उपबंधित है किंतु ऐसी परिस्थितियां हो सकती हैं जहां बालिका के बलात्कारी पर विचार करते समय और विनिर्दिष्ट ध्यान देने की आवश्यकता हो।

5. आरंभ में ही, हम यह स्पष्ट करते हैं कि न्यायालय न तो अपराध सृजित करते हैं और न ही वे दंड का आरंभ कर सकते हैं या विधान बना सकते हैं। यह विधान-मंडल का कर्तव्य है। **विशाखा** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांत बिल्कुल भिन्न है, क्योंकि उक्त मामले में न्यायालय ने अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशन अर्थात्, “महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के विभेद के उन्मूलन का कन्वेंशन”, विशेषकर नियोजन में हिंसा और समता विषयक अनुच्छेद का अवलंब लिया और आगे यौन शोषण और गरिमा के साथ कर्म के अधिकार से संरक्षण सहित लिंग समता की अवधारणा को निर्दिष्ट किया और उस आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि लिंग समता और यौन शोषण और दुरुपयोग, विशेषकर कार्यस्थल पर यौन शोषण के विरुद्ध गारंटी के आधारभूत मानव अधिकार के प्रभावी प्रवर्तन का उपबंध करने के लिए अधिनियमित विधि के अभाव में संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए मार्गदर्शक सिद्धांत और संनियम अधिकथित किए जा सकते हैं और ऐसे मार्गदर्शक सिद्धांतों को संविधान के अनुच्छेद 141 के अधीन घोषित विधि माना जाए। उक्त नजीर से निम्नलिखित पैरा स्थिति को स्पष्ट करता है :-

“..... अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशनों और संनियमों को क्षेत्र के अधिनियमित घरेलू विधि के अभाव में उन्हें पढ़ा जाए जब उनके बीच कोई असंगतता न हो। न्यायिक अर्थान्वयन का अब यह स्वीकृत नियम है कि अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशनों और संनियमों का घरेलू विधि के अर्थान्वयन के लिए सम्मान किया जाए जब उनके बीच कोई असंगतता न हो और घरेलू विधि में रिक्तता हो।”

6. हमने उक्त पैरा को निर्दिष्ट किया जैसाकि यह स्पष्ट है कि न्यायालय ने संवैधानिक मौनता या संवैधानिक आस्थगन पर ध्यान दिया और कार्यस्थल पर महिलाओं के अधिकार के संरक्षण के लिए संवैधानिक बाध्यता पर विचार किया। उक्त सिद्धांत पर विचार करते हुए **मनोज नरुला**

बनाम **भारत संघ**¹ वाले मामले में संविधान न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया कि :-

“..... उक्त सिद्धांत एक प्रगतिगामी सिद्धांत है और मान्यताप्राप्त प्रोन्नत संवैधानिक आचरण के रूप में लागू किया जाता है। न्यायालय द्वारा न्याय हित और व्यापक लोक हित में कतिपय क्षेत्रों की बाबत अंतराल भरने के लिए इसे मान्यता प्रदान किया गया है। निराश्रितों के अधिकारों को स्थापित करने और नुकसानी के निवारण और पर्यावरण के संरक्षण के लिए लोक हित वाद के विकास के प्रयोजन के लिए सुने जाने की अवधारणा का उदासीकरण एक ऐसा लक्षण है। इसी प्रकार लक्ष्मीकांत पांडे बनाम भारत संघ [(1985) 1 एस. सी. सी. 66] वाले मामले में विदेशियों द्वारा भारतीय बच्चों के दत्तक ग्रहण मामले में या डी. के. बसू बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य [(1997) 1 एस. सी. सी. 416] वाले मामले में गिरफ्तारी से संबंधित मार्गदर्शक सिद्धांत जारी किया जाना या **विशाखा बनाम राजस्थान राज्य** (पूर्वोक्त) वाले मामले में जारी निदेश जैसे प्रक्रियागत सुरक्षोपायों के रूप में मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित करना ऐसे कुछ दृष्टांत हैं।”

7. वर्तमान मामले में, विधान-मंडल ने विधि अधिनियमित की और दंड का उपबंध किया अतः हम **विशाखा** (पूर्वोक्त) वाले सिद्धांत का आश्रय नहीं ले सकते। यह कोई संवैधानिक मौन या आस्थगन नहीं है।

8. **साक्षी** (पूर्वोक्त) वाले मामले में, न्यायालय को याची एसोसिएशन द्वारा महिलाओं विशेषकर ऐसी महिलाओं के लिए जो किसी तरह के यौन शोषण और/या दुरुपयोग की शिकार हैं या किसी तरह की क्रूरता या उल्लंघन की शिकार हैं के लिए विधिक, चिकित्सीय, आवासीय, मनोवैज्ञानिक या किसी अन्य सहायता, सहयोग या पूर्ण समर्थन उपलब्ध कराने के लिए फाइल किए गए लोक हित वाद पर विचार करना था। न्यायालय ने **एस. गोपाल रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य**² वाले मामले में विभिन्न कानूनी उपबंधों और संवैधानिक अधिदेश तथा घोषित निर्दिष्ट अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशनों और विधि आयोग की रिपोर्ट पर ध्यान दिया और इस प्रकार मत व्यक्त किया :-

¹ (2014) 9 एस. सी. सी. 1.

² (1996) 4 एस. सी. सी. 596.

“तदनुसार रिट याचिका का निम्नलिखित निदेशों के साथ निपटान किया जाता है –

(1) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 327 की उपधारा (2) के उपबंध उपधारा में वर्णित अपराधों के अलावा भारतीय दंड संहिता की धारा 354 और 377 के अधीन अपराधों की जांच या विचारण को भी लागू होंगे ।

(2) बाल यौन दुरुपयोग या बलात्संग का विचारण करने –

(i) स्क्रीन या कुछ ऐसी व्यवस्था की जाए जहां पीड़ित या साक्षी (जो पीड़ित की तरह संवेदनशील हो सकते हैं) अभियुक्त के शरीर या चेहरे को न देखें ;

(ii) अभियुक्त की ओर से प्रतिपरीक्षा में पूछे गए प्रश्न, जहां तक वे प्रत्यक्षतः घटना से संबंधित हैं, लिखित रूप में न्यायालय के पीठासीन अधिकारी को दिए जाएं जो पीड़ित या साक्षी से ऐसी भाषा में पूछे जो स्पष्ट हो और उलझनभरा न हो ;

(iii) न्यायालय में परिसाक्ष्य देते समय बाल दुरुपयोग या बलात्संग के पीड़ित को पर्याप्त समय दिया जाए जब कभी ऐसी अपेक्षा हो ।

ये निदेश पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह [(1996) 2 एस. सी. सी. 384] वाले मामले में दिए गए निदेश के अतिरिक्त हैं ।”

9. हम बाद के प्रक्रम पर उक्त नजीर को निर्दिष्ट करेंगे किंतु यहां इतना ही कहना पर्याप्त है कि न्यायालय न तो विधान बनाने की कार्यवाही आरंभ कर रहा है न ही यह दंड का उपबंध करता है ।

10. इस मामले में हम, बालिका के साथ हुए बलात्संग पर विचार कर रहे हैं । जैसाकि हमारे समक्ष निवेदन किया गया है कि ऐसे अपराध अकथनीय कारणों से व्याप्त हैं और यह विधि और विधि निर्माताओं का दायित्व है कि वे बच्चों विशेषकर ऐसी बालिकाओं के प्रति सम्मान का विकास करें जिनके साथ ऐसी बर्बरता और निर्दयता का बर्ताव किया जाता है जैसा ऊपर उपदर्शित है । याची की ओर से उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल ने खराब और घृणास्पद स्थिति पर बल दिया ।

11. इस संदर्भ में, हमारे द्वारा 3 फरवरी, 2013 से यथासंशोधित भारतीय दंड संहिता की धारा 376 को निर्दिष्ट करना उपयोगी होगा जो इस प्रकार है :-

“376. (1) जो कोई, उपधारा (2) में उपबंधित मामलों के सिवाय, बलात्संग करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कठोर कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष से कम की नहीं होगी किंतु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

(2) जो कोई, -

(क) पुलिस अधिकारी होते हुए -

(i) उस पुलिस थाने की, जिसमें ऐसा पुलिस अधिकारी नियुक्त है, सीमाओं के भीतर बलात्संग करेगा ; या

(ii) किसी भी थाने के परिसर में बलात्संग करेगा ; या

(iii) ऐसे पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में या ऐसे पुलिस अधिकारी के अधीन किसी पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में किसी स्त्री से बलात्संग करेगा ; या

(ख) लोक सेवक होते हुए, ऐसे लोक सेवक की अभिरक्षा में या ऐसे लोक सेवक के अधीनस्थ किसी लोक सेवक की अभिरक्षा में किसी स्त्री से बलात्संग करेगा ; या

(ग) केंद्रीय या किसी राज्य सरकार द्वारा किसी क्षेत्र में अभिनियोजित सशस्त्र बलों का कोई सदस्य होते हुए, उस क्षेत्र में बलात्संग करेगा ; या

(घ) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी जेल, प्रतिप्रेषण गृह या अभिरक्षा के अन्य स्थान के या स्त्रियों या बालकों की किसी संस्था के प्रबंधतंत्र या कर्मचारिवृंद में होते हुए, ऐसी जेल, प्रतिप्रेषण गृह, स्थान या संस्था के किसी निवासी से बलात्संग करेगा ; या

(ङ) किसी अस्पताल के प्रबंधतंत्र या कर्मचारिवृंद में होते

हुए, उस अस्पताल में किसी स्त्री से बलात्संग करेगा ; या

(च) स्त्री का नातेदार, संरक्षक या अध्यापक अथवा उसके प्रति न्यास या प्राधिकारी की हैसियत में का कोई व्यक्ति होते हुए, उस स्त्री से बलात्संग करेगा ; या

(छ) सांप्रदायिक या पंथीय हिंसा के दौरान बलात्संग करेगा ; या

(ज) किसी स्त्री से यह जानते हुए कि वह गर्भवती है बलात्संग करेगा ; या

(झ) किसी स्त्री से, जब वह सोलह वर्ष से कम आयु की है, बलात्संग करेगा ; या

(ञ) उस स्त्री से, जो सम्मति देने में असमर्थ है, बलात्संग करेगा ; या

(ट) किसी स्त्री पर नियंत्रण या प्रभाव रखने की स्थिति में होते हुए, करेगा ; या

(ठ) मानसिक या शारीरिक निःशक्तता से ग्रसित किसी स्त्री से बलात्संग करेगा ; या

(ड) बलात्संग करते समय किसी स्त्री को गंभीर शारीरिक अपहानि कारित करेगा या विकलांग बनाएगा या विद्वृपित करेगा या उसके जीवन को संकटापन्न करेगा ; या

(ढ) उसी स्त्री से बारबार बलात्संग करेगा,

वह कठोर कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष से कम की नहीं होगी, किंतु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, जिससे उस व्यक्ति के शेष प्राकृत जीवनकाल के लिए कारावास अभिप्रेत होगा, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए –

(क) “सशस्त्र बल” से नौसेना बल, सैन्य बल और वायु सेना बल अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन गठित सशस्त्र बलों का, जिसमें ऐसे अर्धसैनिक बल और कोई सहायक बल भी हैं, जो केंद्रीय सरकार या राज्य

सरकार के नियंत्रणाधीन हैं, कोई सदस्य भी है ;

(ख) “अस्पताल” से अस्पताल का अहाता अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत किसी ऐसी संस्था का अहाता भी है, जो स्वास्थ्य लाभ कर रहे व्यक्तियों के या चिकित्सीय देखरेख या पुनर्वास की अपेक्षा रखने वाले व्यक्ति के प्रवेश और उपचार करने के लिए ;

(ग) “पुलिस अधिकारी” का वही अर्थ है जो पुलिस अधिनियम, 1861 (1861 का 5) के अधीन ‘पुलिस’ पद का है;

(घ) “स्त्रियों या बालकों की किसी संस्था” से ऐसी कोई संस्था अभिप्रेत है जिसका नाम चाहे अनाथालय हो या उपेक्षित स्त्रियों या बालकों के लिए गृह हो या विधवाओं के लिए गृह या कोई भी अन्य नाम हो, जो स्त्रियों और बालकों को ग्रहण करने और उनकी देखभाल करने के लिए स्थापित या अनुरक्षित है ।

12. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल सुश्री पवानी का यह निवेदन है कि धारा 376(2)(i) ऐसे अपराधी के बारे में है जो ऐसी स्त्री जिसकी आयु 16 वर्ष से कम है के साथ बलात्संग करता है किंतु ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहां लड़कियों और छोटी बालिकाओं के साथ बलात्संग किया जाता है । आगे यह उजागर करते हुए उनके द्वारा यह प्रस्ताव रखा गया कि जब समाज ऐसी विकृतता झेलता है जहां बलात्संग जैसी बाल दुरुपयोग काफी व्याप्त है वहां ऐसे अपराधियों पर अधिक और गंभीर दंड अधिरोपित करने के लिए विनिर्दिष्ट उपबंध करने की अपेक्षा है क्योंकि धारा 376ख के अधीन जो पृथक्करण के दौरान अपनी पत्नी से पति द्वारा मैथुन या धारा 376ग प्राधिकारवान व्यक्ति द्वारा यौन मैथुन या धारा 376ड बारंबार अपराध के लिए दंड के बारे में है ।

13. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल सुश्री पवानी का यह आग्रह है कि वर्तमान समाज की स्थिति को ध्यान में रखते हुए “बालक” पद को परिभाषित करने की अपेक्षा है । विद्वान् काउंसिल का यह सुझाव है कि 16 वर्ष से कम आयु की स्त्री निश्चित रूप से अप्राप्तवय किंतु एक बालिका है यद्यपि अप्राप्तवय का भिन्न प्रवर्ग हो सकता है । जब उसके साथ बलात्संग किया जाता है तो बालिका की व्यथा और कष्ट उसके शारीरिक रचना पर जघन्य हमला है । उसे मैथुन या बलात्संग के बारे में कोई ज्ञान नहीं है । यह एक दुःस्वप्न है । अतः याची एसोसिएशन द्वारा व्यक्त चिंता न्यायोचित है । यह

अव्यावहारिक विचारधारा या अप्रत्याशित अनुमान के “चलायमान कल्पना” नहीं है। यह ठोस शब्दों में वास्तविकता का प्रदर्शन है। जब कोई समाज इस तरह से आगे बढ़ता है तो विधि का भय होना चाहिए और दंड भिन्न रूप में निश्चित होना चाहिए। ऐसी स्थिति में अपराध के शास्त्रीय बोध पर विचार करते हुए मार्कस ओरिलियस, दूसरी शताब्दी पूर्व रोमन सम्राट द्वारा यह कहा गया था कि दरिद्रता अपराध की माता है, उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि बालिका पर किए गए अपराध का अपराधकर्ता की आर्थिक प्रास्थिति से कोई संबंध नहीं है; इसके विपरीत, इसका तंत्रीय बर्ताव से संबंध हो सकता है। वस्तुतः, यह ऐसा अपराध है जो लज्जाहीन प्रदर्शन है और पीड़ित के प्रति बिल्कुल असंवेदनात्मक बर्ताव है। यह सामाजिक मूल्यों का घोर उल्लंघन और व्यक्ति विशेष की असफलता है। यह घोर विप्रतीपता का कार्य है अतः उद्भूत हुई ऐसी स्थिति पर पुनः विचार करना अनिवार्य है।

14. हमें भारत के विद्वान् महान्यायवादी, श्री रोहतगी जिन्होंने बाल दुरुपयोग के संबंध में अपनी तीक्ष्ण चिंता व्यक्त की, द्वारा व्यक्त विचार का मूल्यांकन करना चाहिए। यह कभी भुलाया नहीं जा सकता है कि बालकों को प्रसन्न रखना समाज का कर्तव्य है। इस बाबत बक्सटन से कुछ पंक्तियां उद्धृत करना प्रासंगिक है :-

“बालकों के प्रति पहला कर्तव्य उन्हें प्रसन्न रखना है - यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते तो आपने उनके साथ बुराई की है, - कोई भी अन्य अच्छी बात उसका स्थान नहीं ले सकती।”

15. यह न्यायालय अधिक दंड का उपबंध नहीं कर सकता। यह विधान-मंडल को केवल सुझाव दे सकता है। हम पूर्णतः सचेत हैं कि भारतीय दंड संहिता बलात्संग के अपराध के लिए दंड का उपबंध करती है। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि बालिका अप्राप्तवय है किंतु ऐसा समय आ गया है कि जहां बालिका और अप्राप्तवय बालिका के बीच भेद किया जाए, यह बालिका के लिए दस वर्ष की ऊपरी आयुसीमा नियत कर किया जा सकता है। हम यह नहीं सोचते क्योंकि उस आयु तक मानवता के वैभवशाली वरदान के रूप में बालिका शरीर में किसी तरह की ऐंद्रिक इच्छा की भावना नहीं रख सकती। एक बार जब वह ऐसे अपराध की शिकार हो जाती है तो उसके मस्तिष्क पर हानिकर प्रभाव पड़ता है। मानसिक वेदना काफी समय तक बनी रहती है। दुःख और भय हमेशा सताते रहते हैं। इस तरह के बाल दुरुपयोग को रोकने के लिए कदम उठाने की आवश्यकता है अतः, संभवतः बलात्संग के संदर्भ में “बालक”

पद को परिभाषित करने की आवश्यकता है और इसके पश्चात् ऐसे अपराधियों को जो इस तरह के अपराध में लिप्त हैं की बाबत और कठोर दंड देने का उपबंध करने की आवश्यकता है । उक्त विनिश्चय के आलोक में, हम इस आशा के साथ यह सुझाव देते हैं कि संसद् इस सामूहिक व्यथा का उत्तर देगी जिस पर वस्तुतः विचार करने की आवश्यकता है । हम इस पर इससे अधिक कुछ नहीं कह सकते ।

16. हमने पहले यह कहा है कि हम **साक्षी** (उपरोक्त) वाले मामले के नजीर को निर्दिष्ट करेंगे । मामले में निदेश जारी करने के पश्चात् न्यायालय ने इस प्रकार मत व्यक्त किया :-

“याचियों द्वारा दिए गए सुझाव न्याय के प्रयोजन को बढ़ाएंगे और समाज के व्यापक हित में है । बाल दुरुपयोग और बलात्संग के मामले बहुत तेजी से बढ़ रहे हैं अतः इस बाबत समुचित विधान की शीघ्र अपेक्षा है । हम यह आशा और विश्वास करते हैं कि संसद् याची द्वारा उजागर किए गए बिंदुओं पर गंभीर ध्यान देगा और सम्यक् तत्परता के साथ जो आवश्यक है, समुचित विधान बनाएगी ।”

17. तदनुसार रिट याचिका का निपटान किया जाता है ।

रिट याचिका का निपटान किया गया ।

अस.

[2016] 2 उम. नि. प. 178

ननकौनू

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

19 जनवरी, 2016

मुख्य न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर, न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी
और न्यायमूर्ति (श्रीमती) आर. भानुमति

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 304 भाग 1
– आपराधिक मानव वध – आशय और हेतु – क्षति बाईं जंघे के भीतरी भाग जो शरीर का नाजुक अंग नहीं है पर कारित होने, प्रयुक्त हथियार

की प्रकृति, प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में क्षति की पर्याप्तता और मृत्यु की संभाव्यता, पूर्व-चिंतन से क्षति कारित करने के आशय से यह साबित होता है कि अभियुक्त ने हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानव वध का अपराध किया है अतः, अभियुक्त को धारा 302 के अधीन बल्कि 304 भाग 1 के अधीन दोषसिद्ध किया जाना उचित और न्यायसंगत है ।

संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि मृतक छेदी लाल, कुरारी खुर्द मार्किट में नाई की दुकान चलाता था । तारीख 18 फरवरी, 1981 को अपीलार्थी उक्त छेदी लाल की दुकान पर गया और उसने बाल कटवाने के लिए कहा । इन दोनों व्यक्तियों के बीच कहा-सुनी हो गई क्योंकि अपीलार्थी ने मृतक पर जोर दिया कि वह अन्य ग्राहकों से पहले उसके बाल काट दे; किंतु मृतक छेदी लाल ने अपीलार्थी की इस मांग को मंजूर नहीं किया । अपीलार्थी को अपमान महसूस हुआ और वह मृतक को धमकी देता हुआ दुकान से चला गया । लगभग 5.00 बजे अपराह्न में मृतक छेदी लाल ने दुकान बंद की और घर वापस आ गया । इसके पश्चात् 6 बजे अपराह्न में मृतक ग्राम की आबादी के पश्चिम दिशा में नहर की ओर शौच करने गया । जब मृतक ईश्वरी के बगीचे की पूर्वी मेंड के निकट पहुंचा तब अपीलार्थी उत्तर की ओर से आया जिसके हाथ में पिस्तौल थी और उसने मृतक को धमकी दी और कहा मृतक ने अपीलार्थी को बाजार में अपमानित किया है और यह भी कहा कि अपीलार्थी उसे जिंदा नहीं छोड़ेगा । मृतक अपनी जान बचाने के लिए पश्चिम की ओर भागा और अपीलार्थी ने अपनी पिस्तौल से गोली चलाई जो मृतक की बाईं जंघा में लगी और वह नीचे गिर गया । यह घटना जानू उदान और मुनेश्वर ने देखी थी । यह घटना मृतक के पिता अर्थात् किशोर और उसके पुत्र रामपाल द्वारा भी देखी गई जब वे अपने खेत से वापस आ रहे थे । मृतक और साक्षियों द्वारा शोर मचाए जाने पर, अपीलार्थी घटनास्थल से भाग गया । मृतक को एक चारपाई पर डालकर उसके घर पर लाया गया और मृतक के पिता किशोर द्वारा घटना का वर्णन किए जाने पर शिव पूजन सिंह द्वारा शिकायत लिखी गई । इसके पश्चात्, मृतक को पुलिस थाना अचलगंज लाया गया जहां पर अपराध सं. 37/81 के अंतर्गत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अपराध सं. 37/81 अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 307 के अधीन दर्ज कराई गई । उप-निरीक्षक रवीन्द्र प्रसाद यादव ने छेदी लाल का कथन अभिलिखित किया जो पुलिस थाने के बाहर खरखरा पर क्षतिग्रस्त अवस्था में पड़ा हुआ था और मृतक को अचलगंज अस्पताल भेज दिया गया और उस अस्पताल से मृतक को जिला अस्पताल, उन्नाव भेज दिया गया;

किंतु मृतक की मृत्यु अस्पताल जाते हुए रास्ते में ही हो गई । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को दंड संहिता की धारा 307 से धारा 302 में परिवर्तित कर दिया और आगे अन्वेषण किया गया । पुलिस द्वारा मृत्यु समीक्षा किए जाने के पश्चात्, डा. जे. एन. बाजपेयी द्वारा जिला अस्पताल उन्नाव में तारीख 19 फरवरी, 1981 को 3.00 बजे शवपरीक्षण किया गया । डा. बाजपेयी मृतक की बाईं जंघा के पीछे और भीतर की ओर 0.5 इंच × 0.5 इंच माप का पिस्तौल की गोली से बना घाव देखा और छह घाव और देखे जो पिस्तौल की गोली से कारित हुए थे और इन घावों का आकार 1/3 इंच × 1/3 इंच पाया गया और ये घाव बाईं जंघा के सामने और मध्य भाग में मौजूद थे । डा. जे. एन. बाजपेयी ने यह राय व्यक्त की है कि मृत्यु का कारण अग्न्यायुध के परिणामस्वरूप क्षति से होने वाला आघात और रक्तस्राव है । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया । मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने के पश्चात् अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप विरचित किया गया । अभियुक्त-अपीलार्थी का दोष साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने 8 साक्षियों की परीक्षा कराई और अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री प्रस्तुत की । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अपीलार्थी के समक्ष अपराध में फंसाने वाला साक्ष्य और परिस्थितियां रखी गईं और अभियुक्त ने उन सभी से इनकार किया और यह अभिवाक् किया कि उसे इस मामले में मिथ्या फंसाया गया है । साक्ष्य पर विचार करने पर सेशन न्यायाधीश, उन्नाव ने अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध का दोषी पाया और उसे आजीवन कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया । इस आदेश से व्यथित होकर, अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील प्रस्तुत की जो आक्षेपित निर्णय द्वारा खारिज कर दी गई । तदनन्तर अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध यह अपील की । उच्चतम न्यायालय अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – आशय, हेतु से भिन्न होता है । कोई कार्य आशय से ही किया जाता है और इसी के आधार पर यह अंतर स्पष्ट किया जा सकता है कि अपराध आपराधिक मानव वध है या हत्या । दंड संहिता की धारा 300 के तीसरे खंड के दो भाग हैं । प्रथम भाग के अंतर्गत यह साबित किया जाना चाहिए कि ऐसी क्षति कारित करने का आशय किया गया था जैसी क्षति (मृतक पर) पाई गई है और इसके द्वितीय भाग के अधीन यह साबित किया जाना चाहिए कि यह क्षति प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित

करने के लिए पर्याप्त थी। दंड संहिता की धारा 300 के तीसरे खंड में प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए क्षति की पर्याप्तता पर बल दिया गया है। क्षति की पर्याप्तता और प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित किए जाने की संभाव्यता के बीच समानुपात होता है। जब क्षति की पर्याप्तता होती है और उसके परिणामस्वरूप मृत्यु कारित होती है तब ऐसी क्षति आशयित कही जाती है और ऐसी क्षति कारित करने वाला व्यक्ति हत्यारा कहलाता है। क्षति की पर्याप्तता सुनिश्चित करने के लिए कभी-कभी प्रयोग किए गए हथियार की प्रकृति पर विचार किया जाता है, कभी-कभी शरीर के उस अंग पर विचार किया जाता है जिस पर क्षति कारित की गई है और कभी-कभी ये दोनों बातें सुसंगत होती हैं। अपराध में प्रयुक्त किए गए आयुध की प्रकृति और क्षति की स्थिति के आधार पर प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए क्षति की पर्याप्तता साबित की जानी चाहिए और केवल मृत्यु हो जाने से इन तथ्यों को साबित नहीं किया जा सकता। सिद्धांतों को दृष्टिगत करते हुए जब न्यायालय मामले के तथ्यों पर विचार करते हैं तो यह पता चलता है कि मृतक की बाईं जंघा के पीछे भीतर की ओर 1.5 इंच × 1.5 इंच माप का पिस्तौल की गोली से कारित किया गया घाव है, पिस्तौल की गोली से छह घाव बाईं जंघा के सामने की ओर मध्य भाग में भी कारित हुए हैं जिनमें प्रत्येक की माप 1/3 इंच × 1/3 इंच है। मृतक की दुकान पर प्रातःकाल में हुई घटना के कारण अपीलार्थी अपने हाथ में पिस्तौल लेकर बगीचे की उत्तरी दिशा से आया और उसने मृतक पर गोली चलाई। अपराध में प्रयोग किए गए हथियार और हमला करने की रीति तथा पूर्व-चिन्तन के परिणामस्वरूप कारित की गई क्षति की प्रकृति से स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि अपीलार्थी का आशय ऐसी ही क्षति कारित करने का था। जब एक बार यह सिद्ध हो जाता है कि अभियुक्त ने ऐसी साशय क्षति कारित की है जो प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त है तब यह अपराध हत्या कहलाएगा। न्यायालय को अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की दलील में सार दिखाई देता है कि क्षति बाईं जंघा के भीतरी भाग पर कारित की गई है जो कि नाजुक अंग नहीं है। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने पर कि पिस्तौल की गोली से बाईं जंघा के भीतरी भाग पर क्षति कारित की गई है, मृत्यु कारित करने के लिए क्षति की पर्याप्तता सिद्ध की जानी चाहिए जो कि केवल इस बात से साबित नहीं हो सकती कि मृत्यु कारित हुई है। किंतु अभियोजन पक्ष ने परीक्षा के दौरान चिकित्सकों से यह नहीं पूछा है कि जो क्षति बाईं जंघा के

भीतरी भाग पर कारित हुई थी उस क्षति से कोई नाजुक रक्त वाहिनी विदीर्ण हुई थी या नहीं और यह कि क्या उसके विदीर्ण होने से प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित हो सकती थी या नहीं । क्षति की स्थिति और प्रकृति तथा चिकित्सकों से प्राप्त होने वाले इस पर्याप्त साक्ष्य के अभाव को दृष्टिगत करते हुए कि कारित की गई क्षति प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थी, न्यायालय का यह मत है कि अपीलार्थी की दोषसिद्धि दंड संहिता की धारा 302 के बजाय धारा 304 भाग 1 के अधीन किए जाने के लिए एक उचित मामला है । (पैरा 11, 12 और 13)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[1991]	[1991] 3 उम. नि. प. 247 = (1991) 2 एस. सी. सी. 32 : जयप्रकाश बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) ;	11
[1958]	[1958] एस. सी. आर. 1495 : विरसा सिंह बनाम पंजाब राज्य ।	11

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2016 की दांडिक अपील सं. 46.

1981 की दांडिक अपील सं. 775 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ न्यायपीठ द्वारा पारित किए गए तारीख 16 मई, 2013 के निर्णय से उद्भूत अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री कपिल अरोड़ा, अक्षित चौधरी और कुमकुम सेन

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री प्रगति नीखरा और श्री मुकुल सिंह
न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (श्रीमती) आर. भानुमति ने दिया ।

न्या. (श्रीमती) भानुमति – इजाजत प्रदान की जाती है ।

2. यह अपील 1981 की दांडिक अपील सं. 775 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ न्यायपीठ द्वारा तारीख 16 मई, 2013 को पारित निर्णय से उद्भूत है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में “दंड संहिता” कहा गया है) की धारा 302 के अधीन अपीलार्थी-अभियुक्त की दोषसिद्धि की पुष्टि की है ।

3. संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है :- “मृतक छेदी लाल, कुरारी खुर्द मार्किट में नाई की दुकान चलाता था । तारीख 18 फरवरी, 1981 को अपीलार्थी उक्त छेदी लाल की दुकान पर गया और उसने बाल कटवाने के लिए कहा । इन दोनों व्यक्तियों के बीच कहा-सुनी हो गई क्योंकि अपीलार्थी ने मृतक पर जोर दिया कि वह अन्य ग्राहकों से पहले उसके बाल काट दे; किंतु मृतक छेदी लाल ने अपीलार्थी की इस मांग को मंजूर नहीं किया । अपीलार्थी को अपमान महसूस हुआ और वह मृतक को धमकी देता हुआ दुकान से चला गया । लगभग 5.00 बजे अपराह्न में मृतक छेदी लाल ने दुकान बंद की और घर वापस आ गया । इसके पश्चात् 6 बजे अपराह्न में मृतक ग्राम की आबादी के पश्चिम दिशा में नहर की ओर शौच करने गया । जब मृतक ईश्वरी के बगीचे की पूर्वी मेंड के निकट पहुंचा तब अपीलार्थी उत्तर की ओर से आया जिसके हाथ में पिस्तौल थी और उसने मृतक को धमकी दी और कहा मृतक ने अपीलार्थी को बाजार में अपमानित किया है और यह भी कहा कि अपीलार्थी उसे जिंदा नहीं छोड़ेगा । मृतक अपनी जान बचाने के लिए पश्चिम की ओर भागा और अपीलार्थी ने अपनी पिस्तौल से गोली चलाई जो मृतक की बाईं जंघा में लगी और वह नीचे गिर गया । यह घटना जानू (अभि. सा. 2), उदान (अभि. सा. 3) और मुनेश्वर ने देखी थी । यह घटना मृतक के पिता अर्थात् किशोर (अभि. सा. 1) और उसके पुत्र रामपाल द्वारा भी देखी गई जब वे अपने खेत से वापस आ रहे थे । मृतक और साक्षियों द्वारा शोर मचाए जाने पर, अपीलार्थी घटनास्थल से भाग गया । मृतक को एक चारपाई पर डालकर उसके घर पर लाया गया और मृतक के पिता किशोर द्वारा घटना का वर्णन किए जाने पर शिव पूजन सिंह द्वारा शिकायत लिखी गई । इसके पश्चात्, मृतक को पुलिस थाना अचलगंज लाया गया जहां पर अपराध सं. 37/81 के अंतर्गत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) अपराध सं. 37/81 अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 307 के अधीन दर्ज कराई गई । उप-निरीक्षक रवीन्द्र प्रसाद यादव (अभि. सा. 6) ने छेदी लाल का कथन अभिलिखित किया जो पुलिस थाने के बाहर खरखरा पर क्षतिग्रस्त अवस्था में पड़ा हुआ था और मृतक को अचलगंज अस्पताल भेज दिया गया और उस अस्पताल से मृतक को जिला अस्पताल, उन्नाव भेज दिया गया; किंतु मृतक की मृत्यु अस्पताल जाते हुए रास्ते में ही हो गई । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को दंड संहिता की धारा 307 से धारा 302 में परिवर्तित कर दिया और आगे अन्वेषण किया गया । पुलिस द्वारा मृत्यु समीक्षा किए जाने के पश्चात्, डा. जे. एन. बाजपेयी (अभि. सा. 4) द्वारा जिला अस्पताल उन्नाव

में तारीख 19 फरवरी, 1981 को 3.00 बजे शवपरीक्षण किया गया। डा. बाजपेयी (अभि. सा. 4) मृतक की बाईं जंघा के पीछे और भीतर की ओर 0.5 इंच × 0.5 इंच माप का पिस्तौल की गोली से बना घाव देखा और छह घाव और देखे जो पिस्तौल की गोली से कारित हुए थे और इन घावों का आकार 1/3 इंच × 1/3 इंच पाया गया और ये घाव बाईं जंघा के सामने और मध्य भाग में मौजूद थे। डा. जे. एन. बाजपेयी (अभि. सा. 4) ने यह राय व्यक्त की है कि मृत्यु का कारण अग्न्यायुध के परिणामस्वरूप क्षति से होने वाला आघात और रक्तस्राव है। अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया। मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने के पश्चात् अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप विरचित किया गया।'

4. अभियुक्त अपीलार्थी का दोष साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने 8 साक्षियों की परीक्षा कराई और अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री प्रस्तुत की। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अपीलार्थी के समक्ष अपराध में फंसाने वाला साक्ष्य और परिस्थितियां रखी गईं और अभियुक्त ने उन सभी से इनकार किया और यह अभिवाक् किया कि उसे इस मामले में मिथ्या फंसाया गया है। साक्ष्य पर विचार करने पर सेशन न्यायाधीश, उन्नाव ने अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध का दोषी पाया और उसे आजीवन कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया। इस आदेश से व्यथित होकर, अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील प्रस्तुत की जो आक्षेपित निर्णय द्वारा खारिज कर दी गई।

5. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसिल श्री कपिल अरोड़ा ने यह दलील दी है कि अभियोजन पक्ष अभि. सा. 1, अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 के परिसाक्ष्य का अवलंब ले ही नहीं सकता था क्योंकि मृतक का पिता किशोर (अभि. सा. 1) एक हितबद्ध साक्षी है और अभि. सा. 2 तथा अभि. सा. 3 भी शत्रुता का भाव रखने वाले हितबद्ध साक्षी हैं और विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 1 से अभि. सा. 3 के परिसाक्ष्य के आधार पर अपीलार्थी की दोषसिद्धि करके ठीक नहीं किया है और उच्च न्यायालय ने इस दोषसिद्धि की पुष्टि करके त्रुटि की है। यह भी दलील दी गई है कि निचले न्यायालय इस तथ्य पर विचार करने में असफल रहे हैं कि हत्या के अपराध में अभिकथित रूप से प्रयोग किया जाने वाला हथियार अर्थात् देशी पिस्तौल अन्वेषण अधिकारी द्वारा बरामद नहीं की गई है और कारित की गई क्षति

और अपराध में प्रयोग किए गए हथियार के बीच संबंध साबित न होने की स्थिति में अभियोजन पक्ष के लिए यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने अपना पक्षकथन संदेह के परे साबित कर दिया है।

6. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी राज्य के विद्वान् काउंसेल सुश्री प्रगति नीखरा ने यह दलील दी है कि साक्षियों ने निरंतर रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अपीलार्थी ने मृतक को यह धमकी दी थी कि वह उसे जिन्दा नहीं छोड़ेगा और उसके पश्चात् उसने अपनी भरी हुई पिस्तौल से उस पर गोली चलाई और चिकित्सीय साक्ष्य से पूर्ण रूप से प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के कथन की सम्पुष्टि होती है और निचले न्यायालयों ने अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए ठीक ही दोषसिद्ध किया है।

7. हमने परस्पर विरोधी दलीलों, आक्षेपित निर्णय और अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री पर सावधानीपूर्वक विचार किया है।

8. किशोर (अभि. सा. 1), जानू (अभि. सा. 2) और उदान (अभि. सा. 3) ने इस घटना के बारे में एक जैसा साक्ष्य दिया है कि अपीलार्थी ने मृतक छेदी लाल पर देशी पिस्तौल से, जो वह अपने साथ पहले से ही लिए हुए था, गोली चलाई थी। कड़ी प्रतिपरीक्षा के बावजूद इन साक्षियों से ऐसी कोई बात नहीं कहलवाई जा सकी जिससे उनके परिसाक्ष्य को अविश्वसनीय ठहराया जा सके। चिकित्सीय साक्ष्य से संबद्ध अनधिकेपनीय इस मौखिक साक्ष्य के संदर्भ में कि मृतक छेदी लाल की मृत्यु पिस्तौल से चलाई गई गोली के परिणामस्वरूप होने वाला मानव वध है, विचारण न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी, छेदी लाल की मृत्यु के लिए जिम्मेदार है। उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष के साथ ठीक ही सहमति व्यक्त की है कि अभि. सा. 1 से अभि. सा. 3 विश्वसनीय साक्षी हैं। पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात्, हमें प्रत्यक्षदर्शी साक्षी (अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3) के साक्ष्य को अविश्वसनीय ठहराने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है।

9. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि निचले न्यायालय इस तथ्य पर विचार करने में असफल रहे हैं कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा अभिकथित आयुध अर्थात् देशी पिस्तौल बिल्कुल भी बरामद नहीं की गई है और अपराध में प्रयोग किए गए हथियार, प्राक्षेपिकी विज्ञानी

की रिपोर्ट और इसके परिणामस्वरूप कारित की गई क्षति के बीच स्पष्ट तालमेल न होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियोजन पक्ष ने अपीलार्थी का दोष साबित कर दिया है। चिकित्सीय साक्ष्य से पूर्ण रूप से सम्पुष्टि होने वाले अनधिकेपनीय मौखिक साक्ष्य के आधार पर देशी पिस्तौल की बरामदगी न होने पर अभियोजन पक्षकथन पर कोई सारभूत प्रभाव नहीं पड़ता है। इस प्रकृति के मामले में, अन्वेषण अधिकारी द्वारा किए गए किसी भी लोप को अभियोजन पक्षकथन के विरुद्ध नहीं माना जा सकता। अभियोजन वृत्तांत पर विचार करते समय अन्वेषण अभिकरण द्वारा किए गए लोपों को अधिक महत्व नहीं देना चाहिए। अन्यथा भी ऐसा किए जाने से लोगों का विश्वास न केवल विधि प्रवर्तित करने वाले अभिकरण से उठ जाएगा अपितु न्याय प्रशासन पर भी विश्वास नहीं रहेगा।

10. इसके पश्चात् अपीलार्थी के विद्वान् काउंसिल ने यह दलील दी है कि पिस्तौल से कारित की गई क्षति मृतक की बाईं जंघा के निचले भाग पर पाई गई है जो कि नाजुक अंग नहीं है और यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थी का मृतक की हत्या करने का आशय था और इसीलिए दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए अपीलार्थी की दोषसिद्धि कायम रखे जाने योग्य नहीं है। उपर्युक्त दलील के आधार पर विचार के लिए यह प्रश्न सामने आता है कि क्या दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि कायम रखी जा सकती है।

11. आशय, हेतु से भिन्न होता है। कोई कार्य आशय से ही किया जाता है और इसी के आधार पर यह अंतर स्पष्ट किया जा सकता है कि अपराध आपराधिक मानव वध है या हत्या। दंड संहिता की धारा 300 के तीसरे खंड के दो भाग हैं। प्रथम भाग के अंतर्गत यह साबित किया जाना चाहिए कि ऐसी क्षति कारित करने का आशय किया गया था जैसी क्षति (मृतक पर) पाई गई है और इसके द्वितीय भाग के अधीन यह साबित किया जाना चाहिए कि यह क्षति प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थी। दंड संहिता की धारा 300 के तीसरे खंड पर विचार करते हुए और **विरसा सिंह बनाम पंजाब राज्य¹** तथा **जयप्रकाश बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन)²** वाले मामले में **विरसा सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले के सिद्धांतों को दोहराए गए सिद्धांतों पर विचार करते हुए

¹ [1958] एस. सी. आर. 1495.

² [1991] 3 उम. नि. प. 247 = (1991) 2 एस. सी. सी. 32.

निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :-

“12. इन्हीं निष्कर्षों का हवाला देते हुए इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने **जगरूप सिंह** वाले मामले में [(1981) 3 एस. सी. सी. 616] निम्नलिखित निष्कर्ष दिया –

‘न्यायमूर्ति विवियन बोस द्वारा दिया गया यह निष्कर्ष देश में विधि बन गया है। तीसरे खंड के लागू किए जाने के बारे में **विरसा सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित परीक्षण हमारी विधिक पद्धति में समाहित हो गया है और यह विधि का एक भाग बन चुका है।’

न्यायपीठ ने आगे यह अभिनिर्धारित किया कि **विरसा सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में दिया गया विनिश्चय आरंभ से अंत तक मार्ग-निर्देशक सिद्धांत के रूप में अपनाया गया है। इन दोनों ही मामलों में, स्पष्ट रूप से यह अधिकथित किया गया है कि अभियोजन को निश्चित रूप से साबित करना चाहिए कि (1) शारीरिक क्षति विद्यमान है; (2) क्षति प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त है; (3) यह कि अभियुक्त वह विशिष्ट क्षति कारित करने का आशय रखता था, अर्थात् यह दुर्घटनावश या बिना आशय के नहीं हुआ अथवा किसी अन्य प्रकार की क्षति कारित किए जाने का आशय था। दूसरे शब्दों में, तीसरा खंड दो भागों में मौजूद है। पहला भाग यह है कि ऐसी क्षति किए जाने का आशय था जो मौजूद पाई गई है और दूसरा भाग यह है कि उक्त क्षति प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त है। पहले भाग के अधीन अभियोजन को यह साबित करना होता है कि अभियुक्त का आशय वह क्षति विशेष कारित करने का ही था; जब कि दूसरे भाग में यह देखना होता है कि क्या वह क्षति मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थी यह व्यक्तिपरक जांच का मामला है और इसके बारे में आशय निकाला जा सकता है अथवा उस क्षति की विशिष्टियों से अनुमान लगाया जा सकता है। धारा 300 के तीसरे खंड की भाषा में दो जगह आशय की बात कही गई है और प्रत्येक स्थान पर इसके पहले कि मामला इस खंड में लाया जाए, अभियोजन को उसका आशय सिद्ध करना होता है। अभियुक्त का ‘आशय’ ‘जानकारी’ व्यक्तिपरक तत्व है और मस्तिष्क की स्थिति ऐसी है जिसे देखा नहीं जा सकता और विद्यमान है या नहीं इसके बारे में परिस्थितियों के अनुसार अर्थ निकाला जा सकता

है जैसे प्रयोग किया गया औजार, प्रहार करने में प्रयोग किया गया बल, क्षति की आवृत्ति और अन्य परिवेश संबंधी परिस्थितियां । संहिता के रचनाकारों ने जानबूझकर आशय और जानकारी शब्द का प्रयोग किया और यह स्वीकार किया गया है कि किए जाने वाले कृत्य के परिणाम की जानकारी उस आशय के समान नहीं है कि उसके अमूक प्रकार का परिणाम निकलना चाहिए । पहली बात तो यह है कि जब किसी व्यक्ति द्वारा कोई कृत्य किया जाता है तो यह अनुमान लगाया जाता है कि उससे होने वाले परिणामों से कोई विनिर्दिष्ट हानि भी हो सकती है । किंतु यह ज्ञान केवल सतर्कता ही है और आशय जैसी बात नहीं है कि इससे अमूक प्रकार का परिणाम निकलना चाहिए । जब जानकारी से तुलना की जाती है तो आशय उन परिणामों की दूरदर्शिता से कुछ अधिक तत्व की आवश्यकता होती है अर्थात् कोई विशिष्ट उद्देश्य प्राप्त करने के लिए प्रयोजन सहित कोई काम किया जाना ।”

12. दंड संहिता की धारा 300 के तीसरे खंड में प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए क्षति की पर्याप्तता पर बल दिया गया है । क्षति की पर्याप्तता और प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित किए जाने की संभाव्यता के बीच समानुपात होता है । जब क्षति की पर्याप्तता होती है और उसके परिणामस्वरूप मृत्यु कारित होती है तब ऐसी क्षति आशयित कही जाती है और ऐसी क्षति कारित करने वाला व्यक्ति हत्यारा कहलाता है । क्षति की पर्याप्तता सुनिश्चित करने के लिए कभी-कभी प्रयोग किए गए हथियार की प्रकृति पर विचार किया जाता है, कभी-कभी शरीर के उस अंग पर विचार किया जाता है जिस पर क्षति कारित की गई है और कभी-कभी ये दोनों बातें सुसंगत होती हैं । अपराध में प्रयुक्त किए गए आयुध की प्रकृति और क्षति की स्थिति के आधार पर प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए क्षति की पर्याप्तता साबित की जानी चाहिए और केवल मृत्यु हो जाने से इन तथ्यों को साबित नहीं किया जा सकता ।

13. उपरोक्त सिद्धांतों को दृष्टिगत करते हुए जब हम वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करते हैं तो यह पता चलता है कि मृतक की बाईं जंघा के पीछे भीतर की ओर 1.5 इंच × 1.5 इंच माप का पिस्तौल की गोली से कारित किया गया घाव है, पिस्तौल की गोली से छह घाव बाईं जंघा के सामने की ओर मध्य भाग में भी कारित हुए हैं जिनमें प्रत्येक की माप 1/3 इंच × 1/3 इंच है । मृतक की दुकान पर प्रातःकाल में हुई घटना के कारण

अपीलार्थी अपने हाथ में पिस्तौल लेकर बगीचे की उत्तरी दिशा से आया और उसने मृतक पर गोली चलाई । अपराध में प्रयोग किए गए हथियार और हमला करने की रीति तथा पूर्व-चिन्तन के परिणामस्वरूप कारित की गई क्षति की प्रकृति से स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि अपीलार्थी का आशय ऐसी ही क्षति कारित करने का था । जब एक बार यह सिद्ध हो जाता है कि अभियुक्त ने ऐसी साशय क्षति कारित की है जो प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त है तब यह अपराध हत्या कहलाएगा । हमें अपीलार्थी के विद्वान् काउंसल की दलील में सार दिखाई देता है कि क्षति बाईं जंघा के भीतरी भाग पर कारित की गई है जो कि नाजुक अंग नहीं है । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने पर कि पिस्तौल की गोली से बाईं जंघा के भीतरी भाग पर क्षति कारित की गई है, मृत्यु कारित करने के लिए क्षति की पर्याप्तता सिद्ध की जानी चाहिए जो कि केवल इस बात से साबित नहीं हो सकती कि मृत्यु कारित हुई है । किंतु अभियोजन पक्ष ने परीक्षा के दौरान चिकित्सकों से यह नहीं पूछा है कि जो क्षति बाईं जंघा के भीतरी भाग पर कारित हुई थी उस क्षति से कोई नाजुक रक्त वाहिनी विदीर्ण हुई थी या नहीं और यह कि क्या उसके विदीर्ण होने से प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित हो सकती थी या नहीं । क्षति की स्थिति और प्रकृति तथा चिकित्सकों से प्राप्त होने वाले इस पर्याप्त साक्ष्य के अभाव को दृष्टिगत करते हुए कि कारित की गई क्षति प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थी, हमारा यह मत है कि अपीलार्थी की दोषसिद्धि दंड संहिता की धारा 302 के बजाय धारा 304 भाग 1 के अधीन किए जाने के लिए एक उचित मामला है ।

14. परिणामतः, दंड संहिता की धारा 302 के अधीन की गई अपीलार्थी की दोषसिद्धि को दंड संहिता की धारा 304 भाग 1 के अधीन उपांतरित किया जाता है और अपीलार्थी को 10 वर्ष का कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया जाता है तथा यह अपील भागतः मंजूर की जाती है ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

अस.

[2016] 2 उम. नि. प. 190

रायल वेस्टर्न इंडिया टर्फ क्लब लिमिटेड

बनाम

कर्मचारी राज्य बीमा निगम और अन्य

29 फरवरी, 2016

न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा और न्यायमूर्ति अरुण मिश्रा

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 (1948 का 34) – धारा 2(9) – आकस्मिक कर्मचारी – अधिनियम में उपबंधित कर्मचारी की परिभाषा पर्याप्त व्यापक है और इसके अंतर्गत ऐसे कर्मचारी भी आते हैं जो मजदूरी कालावधि के भाग के लिए नियोजित किए गए हों, इसलिए अधिनियम के उपबंधों, नियमों, विनियमों और कर्मचारी राज्य बीमा निगम द्वारा जारी तारीख 18 सितम्बर, 1978 की अधिसूचना को देखते हुए अपीलार्थी-टर्फ क्लब के आकस्मिक कर्मचारी अधिनियम के अंतर्गत आते हैं और प्रसुविधा प्राप्त करने के हकदार हैं ।

प्रस्तुत अपीलों में अंतर्वलित इस मुख्य प्रश्न का कि क्या कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम रायल वेस्टर्न इंडिया टर्फ क्लब लिमिटेड-अपीलार्थी पर लागू होता है, का विनिश्चय इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा तारीख 31 जुलाई, 2014 के निर्णय द्वारा किया गया । यह अभिनिर्धारित किया गया कि टर्फ क्लब कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अधीन जारी की गई अधिसूचना में यथा उल्लिखित “दुकान” शब्द के अर्थात् अंतर्गत आता है । अतः, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के उपबंधों का विस्तार अपीलार्थी पर भी होगा । उसके पश्चात् अन्य प्रश्नों पर गुणागुण के आधार पर विचार करने के लिए मामले इस खंड न्यायपीठ के समक्ष रखे गए । रायल वेस्टर्न इंडिया टर्फ क्लब लिमिटेड की ओर से यह दलील दी गई कि दौड़ के दिनों में टिकट जारी करने के लिए लगाए गए अस्थायी कर्मचारिवृंद कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 की धारा 2(9) के अधीन “कर्मचारी” की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आते हैं । यह भी दलील दी गई कि उच्च न्यायालय द्वारा वर्ष 1987 से पहले की रकम वसूल न करने के लिए जारी किए गए निदेश में कर्मचारी राज्य बीमा निगम द्वारा फाइल की गई अपील में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है । जबकि कर्मचारी राज्य बीमा निगम की ओर से यह दलील दी गई कि

तारीख 18 सितम्बर, 1978 की विनिर्दिष्ट अधिसूचना को ध्यान में रखते हुए, जहां तक महाराष्ट्र में रायल वेस्टर्न इंडिया टर्फ क्लब का संबंध है, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम की प्रयोज्यता के बारे में स्थिति स्पष्ट है। जिन सहमति निबंधनों का अवलंब लिया गया है, वे पूर्ववर्ती अवधि से संबंधित हैं, जिसमें टर्फ क्लब के अन्य स्थापन समाविष्ट थे। तारीख 18 सितम्बर, 1978 को जारी की गई अधिसूचना में टर्फ क्लब के प्रश्नगत विभाग भी समाविष्ट थे। उच्चतम न्यायालय द्वारा कर्मचारी राज्य बीमा निगम की ओर से फाइल की गई अपीलों को मंजूर करते हुए और रायल टर्फ क्लब की अपील को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – कर्मचारी दौड़ के दिनों में कार्य करते हैं जो कि रायल टर्फ क्लब का चिरस्थायी क्रियाकलाप है और अधिनियम के उपबंधों, नियमों, विनियमों और तारीख 18 सितम्बर, 1978 की अधिसूचना को ध्यान में रखते हुए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऐसे कर्मचारी अधिनियम के अंतर्गत आते हैं और प्रसुविधा के हकदार हैं। (पैरा 12)

इस दलील पर आते हैं कि कर्मचारी राज्य बीमा निगम को सहमति निबंधनों के प्रति आबद्ध ठहराया जाना चाहिए, यह दलील तथ्यात्मक रूप से असत्य, भ्रामक, विधिक रूप से असंधार्य और अन्यथा सारहीन भी है। टर्फ क्लब द्वारा फाइल किए गए आवेदन (ईएसआई) सं. 16/1976 में, कर्मचारी राज्य बीमा निगम तारीख 29 नवम्बर, 1975 की निरीक्षण रिपोर्ट के आधार पर सहमत हुआ था और तारीख 14 अप्रैल, 1976 के ज्ञापन में यह उल्लेख किया गया था कि इलेक्ट्रिकल और मैकेनिकल वर्कशाप, कारखाना प्रभाग, साधारण विभाग – मोटर-गैरेज (कारखाना प्रभाग), सुरक्षा विभाग, बर्दई-दुकान, वैयक्तिक विभाग और लेखा विभाग में टर्फ क्लब के कर्मचारी तारीख 28 जनवरी, 1968 से कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अंतर्गत आएंगे। यह सहमति दी गई थी कि टर्फ क्लब के ऐसे कर्मचारियों को पहले ही अधिनियम के अंतर्गत लाया गया है और पहले की तरह ही इसके अंतर्गत आएंगे तथा दौड़ प्रशासन विभाग के कर्मचारी, दौड़-पथ पर लगाए गए आकस्मिक मजदूर और दौड़ के दिनों में टिकट/लाभांश जारी करने के लिए लगाए गए अस्थायी कर्मचारिवृंद इसके अंतर्गत नहीं आते थे। पूर्वोक्त मामले में अंतर्वलित कालावधि तारीख 26 फरवरी, 1976 की अधिसूचना में विनिर्दिष्ट अनुसार थी, जो कि पहले की अवधि थी न कि 2006 की सिविल अपील सं. 49 में अंतर्वलित 1978-79 से 1982-83 की प्रश्नगत कालावधि और अन्य अपीलों में भी कालावधि इसके बाद की है।

महाराष्ट्र सरकार द्वारा तारीख 18 सितम्बर, 1978 की अधिसूचना जारी होने के पश्चात् टर्फ क्लब के शेष विभागों को, जो पहले छोड़ दिए गए थे, विनिर्दिष्ट रूप से कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम की परिधि के अधीन सम्मिलित किया गया था। इस प्रकार, प्रस्तुत मामले में की गई मांग तारीख 18 सितम्बर, 1978 की अधिसूचना पर आधारित है, जिससे संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है कि उपर्युक्त विभाग के प्रश्नगत स्थापनों को कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अंतर्गत लाया गया है। इस प्रकार, सहमति निबंधनों से कोई फायदा प्राप्त नहीं किया जा सकता है, जो कि उस पूर्ववर्ती कालावधि से संबंधित है जब तारीख 18 सितम्बर, 1978 की अधिसूचना जारी की गई थी। अधिसूचना का कानूनी बल है और करार इसका अधिक्रांत नहीं कर सकता है। यह भी स्पष्ट है कि दौड़ क्लब के कई विभाग वर्ष 1968 में जारी की गई अधिसूचना में सम्मिलित थे। इस प्रकार, सहमति निबंधनों के आधार पर दी गई दलील तद्द्वारा नामंजूर की जाती है। (पैरा 13)

कर्मचारी राज्य बीमा निगम द्वारा फाइल की गई अपील पर आते हैं जिसमें यह प्रश्न उठाया गया है कि संदाय का आदेश वर्ष 1987 की बजाय वर्ष 1978-79 से किया जाना चाहिए था क्योंकि तारीख 18 सितम्बर, 1978 की अधिसूचना को ध्यान में रखते हुए यह संदेह करने की कोई गुंजाइश नहीं है कि टर्फ क्लब के प्रश्नगत विभाग कर्मचारी राज्य बीमा निगम के अंतर्गत आते हैं। इस न्यायालय की राय में, वर्ष 1978 की अधिसूचना स्पष्ट है और इसे पूरी तरह से कार्यान्वित किया जाना चाहिए और पूर्ववर्ती कालावधि के लिए भी सहमति निबंधनों से यह उपदर्शित होता है कि टर्फ क्लब के विभिन्न अन्य विभाग वर्ष 1968 की अधिसूचना के अंतर्गत आते थे। वर्ष 1975 से 1986 तक के अभिदाय का अधित्यजन करने के लिए हैदराबाद रेस क्लब वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब नहीं लिया जा सकता है, क्योंकि प्रस्तुत मामले में वर्ष 1978 में जारी की गई विनिर्दिष्ट अधिसूचना को ध्यान में रखते हुए कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम लागू होने के बारे में कोई संदेह नहीं है। कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के उपबंध वर्ष 1968 से टर्फ क्लब के विभिन्न विभागों पर लागू किए गए थे। इस मामले में, जैसा कि सहमति निबंधनों से स्पष्ट है, टर्फ क्लब वर्ष 1968 से ही कर्मचारी राज्य बीमा निगम के अंतर्गत आता है। टर्फ क्लब द्वारा कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के उपबंधों का वर्ष 1968 से पालन किया गया है। उच्च न्यायालय ने इस

मामले के तथ्यों के आधार पर वर्ष 1978 से वर्ष 1987 तक के अभिदाय की मांग को अभिखंडित करके गलती की है। इस न्यायालय की राय में, टर्फ क्लब तारीख 18 सितम्बर, 1978 की अधिसूचना के अनुसार वास्तविक संदाय की तारीख तक ब्याज की ऐसी दर के साथ, जो अधिनियम और नियमों में उपबंधित है, अभिदाय करने की दायी है। रकम का अभिदाय आज की तारीख से तीन माह की अवधि के भीतर किया जाए। परिणामतः, कर्मचारी राज्य बीमा निगम द्वारा फाइल की गई अपीलें मंजूर की जाती हैं और टर्फ क्लब द्वारा फाइल की गई अपीलें कर्मचारी राज्य बीमा निगम को संदेय दो लाख के खर्चे सहित खारिज की जाती हैं। (पैरा 14 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2004]	(2004) 6 एस. सी. सी. 191 : कर्मचारी राज्य बीमा निगम बनाम हैदराबाद रेस क्लब ;	3, 14
[1994]	(1994) 3 (सप्ली.) एस. सी. सी. 567 : कर्मचारी राज्य बीमा निगम बनाम प्रीमियर क्ले प्रोडक्ट्स ;	12
[1986]	[1986] 4 उम. नि. प. 582 = ए. आई. आर. 1986 एस. सी. 1686 : प्रादेशिक निदेशक, कर्मचारी राज्य बीमा निगम, मद्रास बनाम साउथ इंडिया फ्लोर मिल्स (प्रा.) लिमिटेड ;	11
[1974]	(1974) 2 एल. एल. जे. 530 (मद्रास) : कर्मचारी राज्य बीमा निगम बनाम ज्ञानाम्बिकाय मिल्स लिमिटेड ।	11

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2006 की सिविल अपील सं. 49.
(इसके साथ 2006 की सिविल
अपील सं. 1575, 2012 की
सिविल अपील सं. 3421 और
3422 की भी सुनवाई की गई)

2005 की प्रथम अपील सं. 619 में बम्बई उच्च न्यायालय के तारीख 21 अक्टूबर, 2005 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से

सर्वश्री जमशीद कामा, ज्येष्ठ अधिवक्ता, गोविंदराम तलरेजा, (सुश्री) रुबी सिंह आहूजा, चाहत चावला, (सुश्री) माणिक करंजावाला, हर्ष त्रिवेदी (मैसर्स करंजावाला एंड कंपनी की ओर से) और वी. जे. फ्रांसिस

प्रत्यर्थियों की ओर से

सर्वश्री एम. एन. कृष्णामणी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, वैभव एम. श्रीवास्तव, पी. एन. पुरी और पी. वी. योगेश्वरन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अरुण मिश्रा ने दिया ।

न्या. मिश्रा – इन अपीलों में विनिश्चय करने के लिए अंतर्वलित प्रश्न यह हैं कि क्या आकस्मिक कर्मकार कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 की धारा 2(9) में परिभाषित अनुसार कर्मचारी की परिभाषा के अंतर्गत आते हैं और क्या टर्फ क्लब संदाय करने के लिए वर्ष 1978-79 से अथवा वर्ष 1987 से दायी है ।

2. प्रस्तुत अपीलों में अंतर्वलित इस मुख्य प्रश्न का कि क्या कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम रायल वेस्टर्न इंडिया टर्फ क्लब लिमिटेड पर लागू होता है, का विनिश्चय इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा तारीख 31 जुलाई, 2014 के निर्णय द्वारा किया गया । यह अभिनिर्धारित किया गया कि टर्फ क्लब कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अधीन जारी की गई अधिसूचना में यथा उल्लिखित “दुकान” शब्द के अर्थात्तर्गत आता है । अतः, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के उपबंधों का विस्तार अपीलार्थी पर भी होगा । उसके पश्चात् अन्य प्रश्नों पर गुणागुण के आधार पर विचार करने के लिए मामले इस खंड न्यायपीठ के समक्ष रखे गए ।

3. रायल वेस्टर्न इंडिया टर्फ क्लब लिमिटेड की ओर से यह दलील दी गई कि दौड़ के दिनों में टिकट जारी करने के लिए लगाए गए अस्थायी कर्मचारिवृंद कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 की धारा 2(9) के

अधीन “कर्मचारी” की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आते हैं। यह भी दलील दी गई कि टर्फ क्लब द्वारा कर्मचारी राज्य बीमा न्यायालय, बम्बई के समक्ष आवेदन सं. 16/1976 में फाइल किए गए सहमति निबंधनों को ध्यान में रखते हुए, दौड़-पथ (रेस-ट्रैक) पर लगाए गए आकस्मिक मजदूर कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अधीन समाविष्ट नहीं होंगे। आगे यह भी दलील दी गई कि कर्मचारी राज्य बीमा (केन्द्रीय) नियम, 1950 के नियम 2क को ध्यान में रखते हुए उतनी अवधि के लिए, जो विनियमों में विहित की जाए, अभिदाय किया जाना अपेक्षित है और कर्मचारी राज्य बीमा (साधारण) विनियम, 1950 के विनियम 29 और 41 को ध्यान में रखते हुए ऐसे कर्मचारियों के लिए अभिदाय की गणना करना मुश्किल होगा, जो दौड़ के दिनों में आकस्मिक तौर पर कार्य करते हैं। यह भी दलील दी गई कि उच्च न्यायालय द्वारा वर्ष 1987 से पहले की रकम वसूल न करने के लिए जारी किए गए निदेश में कर्मचारी राज्य बीमा निगम द्वारा फाइल की गई अपील में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है और इस संबंध में **कर्मचारी राज्य बीमा निगम बनाम हैदराबाद रेस क्लब¹** वाले मामले का अवलंब लिया गया।

4. जबकि कर्मचारी राज्य बीमा निगम की ओर से यह दलील दी गई कि तारीख 18 सितम्बर, 1978 की विनिर्दिष्ट अधिसूचना को ध्यान में रखते हुए, जहां तक महाराष्ट्र में रायल वेस्टर्न इंडिया टर्फ क्लब का संबंध है, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम की प्रयोज्यता के बारे में स्थिति स्पष्ट है। जिन सहमति निबंधनों का अवलंब लिया गया है, वे पूर्ववर्ती अवधि से संबंधित हैं, जिसमें टर्फ क्लब के अन्य स्थापन समाविष्ट थे। तारीख 18 सितम्बर, 1978 को जारी की गई अधिसूचना में टर्फ क्लब के प्रश्नगत विभाग भी समाविष्ट थे। यहां तक कि सहमति निबंधनों से भी यह प्रतिबिम्बित होता है कि इस बात में कोई संदेह नहीं है कि टर्फ क्लब वर्ष 1968 से कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत आता है।

5. पहले हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि क्या आकस्मिक कर्मचारी, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम की परिधि के अंतर्गत आते हैं या नहीं। धारा 2(9) में “कर्मचारी” को परिभाषित किया गया है, इस उपबंध को इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है :-

“2(9) ‘कर्मचारी’ से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है, जो किसी ऐसे

¹ (2004) 6 एस. सी. सी. 191.

कारखाने या स्थापन में, जिसे यह अधिनियम लागू है, या उसके काम के संबंध में मजदूरी पर नियोजित है, और –

(i) जो उस कारखाने या स्थापन के किसी काम पर, या उस कारखाने या स्थापन के काम के आनुषंगिक या प्रारंभिक या उससे संबद्ध किसी काम पर, प्रधान नियोजक द्वारा सीधे नियोजित है, चाहे ऐसा काम कर्मचारी द्वारा कारखाने या स्थापन में किया जाता हो या अन्यत्र ;

(ii) जो अव्यवहित नियोजक द्वारा या उसके माध्यम से कारखाने या स्थापन के परिसर में या प्रधान नियोजक या उसके अभिकर्ता के पर्यवेक्षण के अधीन ऐसे काम पर नियोजित है जो मामूली तौर पर कारखाने या स्थापन के काम का भाग है या जो कारखाने या स्थापन में किए जाने वाले काम का प्रारंभिक है या उस कारखाने या स्थापन के प्रयोजन का आनुषंगिक है; अथवा

(iii) जिसकी सेवाएं प्रधान नियोजक को उस व्यक्ति द्वारा अस्थायी रूप से उधार या भाड़े पर दी गई हैं, जिसके साथ उस व्यक्ति ने जिसकी सेवाएं इस प्रकार उधार या भाड़े पर दी गई हैं, कोई सेवा-संविदा कर रखी है ;

और इसके अंतर्गत ऐसा व्यक्ति आता है जो कारखाने या स्थापन के या उसके किसी भाग, विभाग या शाखा के प्रशासन से या उस कारखाने या स्थापन के लिए कच्चे माल के क्रय से या उसके उत्पादों के वितरण या विक्रय से संबंधित किसी काम पर मजदूरी पर नियोजित हो, या शिक्षु के रूप में रखा गया कोई ऐसा व्यक्ति जो शिक्षु अधिनियम, 1961 (1961 का 52) के अधीन या स्थापन के स्थायी आदेशों के अधीन रखा गया शिक्षु नहीं है, किंतु इसके अंतर्गत –

(क) भारतीय नौसेना, सेना या वायुसेना का कोई सदस्य ;
अथवा

(ख) इस प्रकार नियोजित ऐसा व्यक्ति जिसकी मासिक मजदूरी (अतिकालिक काम के लिए पारिश्रमिक को छोड़कर) ऐसी मजदूरी से अधिक हो जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाए, नहीं आता :

परंतु ऐसा कर्मचारी, जिसकी मजदूरी (अतिकालिक काम

के लिए पारिश्रमिक को छोड़कर) अभिदाय कालावधि के आरंभ के पश्चात् (न कि पूर्व) किसी भी समय ऐसी मजदूरी से अधिक हो जाए, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाए, उस कालावधि के अंत तक कर्मचारी बना रहेगा ;”

‘कर्मचारी’ की परिभाषा अति व्यापक है। कोई व्यक्ति जो कारखाने या स्थापन में किसी काम पर, या उस कारखाने या स्थापन के काम के आनुषंगिक या प्रारंभिक या उससे संबद्ध किसी काम पर नियोजित है, इसके अंतर्गत आता है। परिभाषा की दृष्टि में विभिन्न प्रकार के कर्मचारियों को इसके अंतर्गत लाया गया है। यह अधिनियम एक कल्याणकारी विधान है और इसका निर्वचन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे कि कर्मचारियों को इसके फायदे सुनिश्चित किए जा सकें, न कि उन्हें उन फायदों से वंचित किया जाए जो अधिनियम के अधीन उपलब्ध हैं।

6. धारा 39 किसी कर्मचारी की बाबत इस अधिनियम के अधीन संदेय हर एक “मजदूरी कालावधि” की बाबत अभिदाय के संबंध में है, जो मामूली तौर पर उस मजदूरी कालावधि के अंतिम दिन शोध्य होंगे, और जहां कि कोई कर्मचारी मजदूरी कालावधि के “भाग” के लिए नियोजित है, या एक ही मजदूरी कालावधि के दौरान दो या अधिक नियोजकों के अधीन नियोजित है, वहां अभिदाय ऐसे दिनों को शोध्य होंगे जो विनियमों में विनिर्दिष्ट किए जाएं। धारा 39 को इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है :-

“39. **अभिदाय** – (1) किसी कर्मचारी की बाबत इस अधिनियम के अधीन संदेय अभिदाय में नियोजक द्वारा संदेय अभिदाय (जिसे इसमें इसके पश्चात् ‘नियोजक-अभिदाय’ कहा गया है) और कर्मचारी द्वारा संदेय अभिदाय (जिसे इसमें इसके पश्चात् ‘कर्मचारी-अभिदाय’ कहा गया है) समाविष्ट होगा और निगम को दिया जाएगा।

(2) अभिदाय ऐसी दरों से संदत्त किए जाएंगे जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाएं :

परंतु इस प्रकार विहित दरें उस दरों से अधिक नहीं होंगी जो कर्मचारी राज्य बीमा (संशोधन) अधिनियम, 1989 के प्रारम्भ के ठीक पूर्व प्रवृत्त थीं।

(3) किसी कर्मचारी के संबंध में मजदूरी कालावधि वह इकाई होगी जिसकी बाबत इस अधिनियम के अधीन के सभी अभिदाय संदेय होंगे।

(4) हर एक मजदूरी कालावधि की बाबत संदेय अभिदाय मामूली तौर पर उस मजदूरी कालावधि के अंतिम दिन शोध्य होंगे, और जहां कि कोई कर्मचारी मजदूरी कालावधि के भाग के लिए नियोजित है, या एक ही मजदूरी कालावधि के दौरान दो या अधिक नियोजकों के अधिक नियोजित है, वहां अभिदाय ऐसे दिनों को शोध्य होंगे जो विनियमों में विनिर्दिष्ट किए जाएं ।

(5) (क) यदि इस अधिनियम के अधीन संदेय कोई अभिदाय प्रधान नियोजक द्वारा उस तारीख को संदत्त नहीं किया जाता है जिसको ऐसा अभिदाय देय हो गया है तो वह प्रतिवर्ष बारह प्रतिशत की दर से या ऐसी उच्चतर दर से, जो विनियमों में विनिर्दिष्ट की जाए, साधारण ब्याज का संदाय उसके वास्तविक संदाय की तारीख तक करने के दायित्वाधीन होगा :

परंतु विनियमों में विनिर्दिष्ट उच्चतर ब्याज, किसी अनुसूचित बैंक द्वारा प्रभारित ब्याज की उधार देने वाली दर से अधिक नहीं होगा ।

(ख) खंड (क) के अधीन वसूलीय कोई ब्याज, भू-राजस्व की बकाया के रूप में या धारा 45ग से धारा 45झ के अधीन वसूल किया जा सकेगा ।”

धारा 39 से यह स्पष्ट होता है कि कोई कर्मचारी जो मजदूरी कालावधि के भाग के लिए नियोजित है, अभिदाय के प्रयोजनों के लिए इस धारा के अंतर्गत आता है । धारा 2(9) में “कर्मचारी” शब्द की परिभाषा भी ऐसे आकस्मिक कर्मचारियों को समाविष्ट करने के लिए पर्याप्त रूप से व्यापक है, जो मजदूरी कालावधि के भाग के लिए नियोजित किए जाते हैं । धारा 39(5) में भी यह उपबंधित है कि यदि अभिदाय संदत्त नहीं किया जाता है, तो इस पर वास्तविक संदाय की तारीख तक 12 प्रतिशत वार्षिक की दर से या ऐसी उच्चतर दर से ब्याज लगेगा जो विनियमों में विनिर्दिष्ट किया जाए और यह रकम भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जाएगी ।

7. धारा 42 अभिदायों के संदाय के संबंध में साधारण उपबंधों से संबंधित है । धारा 42 में यह उपबंधित है कि कोई भी कर्मचारी-अभिदाय ऐसे कर्मचारी द्वारा या उसकी ओर से संदेय नहीं होगा जिसकी औसत दैनिक मजदूरी ऐसी मजदूरी, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाए, से कम है । धारा 42 की उपधारा (2) में यह भी उपबंधित है कि नियोजक

तथा कर्मचारी का अभिदाय प्रधान नियोजक द्वारा ऐसे हर एक मजदूरी कालावधि के लिए संदेय होंगे जिसे पूरे सप्ताह या जिसके भाग की बाबत मजदूरी कर्मचारी को संदेय है, न कि अन्यथा। इस उपबंध में यह विहित नहीं है कि कर्मचारी को उक्त उपबंध का फायदा लेने के लिए एक विशिष्ट कालावधि तक काम करना होगा।

8. टर्फ क्लब की ओर से मजदूरी और मजदूरी कालावधि की परिभाषाओं का अवलंब लिया गया है। मजदूरी और मजदूरी कालावधि से संबंधित धारा 2(22) और 2(23) निम्नलिखित हैं :-

“2(22). ‘मजदूरी’ से वह सभी पारिश्रमिक अभिप्रेत हैं जो किसी कर्मचारी को नियोजन की संविदा के अभिव्यक्त या विवक्षित निबंधनों की पूर्ति हो जाने पर, नकद संदत्त किया गया हो या नकद संदेय होता और इसके अंतर्गत किसी प्राधिकृत छुट्टी की, तालाबन्दी की, ऐसी हड़ताल की जो अवैध नहीं है, या कामबन्धी की किसी भी कालावधि की बाबत किसी कर्मचारी को दिया गया कोई संदाय और अन्य अतिरिक्त पारिश्रमिक, यदि कोई हो, आता है जो दो मास से अनधिक के अंतरालों पर दिया गया हो, किंतु इसके अंतर्गत निम्नलिखित नहीं आते -

(क) नियोजक द्वारा किसी पेंशन निधि या भविष्य निधि में या इस अधिनियम के अधीन संदत्त कोई अभिदाय ;

(ख) कोई यात्रा-भत्ता या किसी यात्रा-रियायत का मूल्य ;

(ग) नियोजित व्यक्ति को ऐसे विशेष व्यय चुकाने के लिए संदत्त कोई राशि जो उसे अपने नियोजन की प्रकृति के कारण उठाने पड़ते हैं ; अथवा

(घ) उन्मोचन पर संदेय कोई उपदान ;

2(23). ‘मजदूरी कालावधि’ से, किसी कर्मचारी के संबंध में, वह कालावधि अभिप्रेत है जिसकी बाबत मजदूरी मामूली तौर पर या तो नियोजन की संविदा के अभिव्यक्त या विवक्षित निबंधनों के अनुसार या अन्यथा उसे संदेय है ;”

उपर्युक्त उपबंधों को पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट होता है कि दैनिक प्रकृति के कार्य पर कुछ दिनों के लिए नियोजित आकस्मिक कर्मचारी इन उपबंधों के अंतर्गत आएंगे और धारा 2(22) में यथा परिभाषित मजदूरी और 2(23) में

यथा परिभाषित मजदूरी कालावधि से आकस्मिक कर्मचारों को संदेय मजदूरी अपवर्जित नहीं हो जाती है। उन्हें अधिनियम के फायदाप्रद उपबंधों से वंचित नहीं किया जा सकता है।

9. टर्फ क्लब की ओर से नियम 2(2क) में अंतर्विष्ट उपबंधों का अवलंब लिया गया, जिनमें अभिदाय कालावधि से छह क्रमवर्ती मासों से अनधिक की वह कालावधि अभिप्रेत है जो नियमों में विनिर्दिष्ट की जाए। यह नियम इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है :-

“2(2क). ‘अभिदाय कालावधि’ से छह क्रमवर्ती मासों से अनधिक की वह कालावधि अभिप्रेत है जो विनियमों में विनिर्दिष्ट की जाए ;”

उपर्युक्त नियम में “अभिदाय कालावधि” के रूप में छह क्रमवर्ती मासों से अनधिक की कालावधि का उपबंध है और कोई न्यूनतम अवधि विहित नहीं की गई है। नियम 2(2क) का इस अर्थ में निर्वचन नहीं किया जा सकता है कि यदि किसी कर्मचारी ने कम अवधि तक कार्य किया है तो वह अधिनियम के अधीन व्याप्ति का हकदार नहीं है।

10. इसी प्रकार, विनियम, 1950 के विनियम 26 से 31 का लिया गया अवलंब भी निष्फल है क्योंकि विनियमों में यह स्पष्ट है कि मजदूरी कालावधि के लिए अभिदाय विनियम 31 में उपबंधित अनुसार नियोजक द्वारा दिया जाएगा अन्यथा वह विनियम 31क में उपबंधित अनुसार संदाय करने का दायी होगा और इस रकम पर ब्याज भी लगेगा जो भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जाएगी। यह भी स्थिर है कि ब्याज का अधित्यजन नहीं किया जा सकता है। विनियम 36 से भी यह स्पष्ट होता है कि जब किसी कर्मचारी को नियोजक द्वारा मजदूरी कालावधि के भाग के लिए नियोजित किया गया है, तो उस मजदूरी कालावधि की बाबत अभिदाय उस मजदूरी कालावधि में नियोजन की अंतिम तारीख को शोध्य हो जाएगा। मजदूरी कालावधि के भाग में किए गए कार्य को समावेश करने का इस विनियम का आशय स्पष्ट है।

11. प्रादेशिक निदेशक, कर्मचारी राज्य बीमा निगम, मद्रास बनाम साउथ इंडिया फ्लोर मिल्स (प्रा.) लिमिटेड¹ वाले मामले में इस न्यायालय

¹ [1986] 4 उम. नि. प. 582 = ए. आई. आर. 1986 एस. सी. 1686.

ने कर्मचारी राज्य बीमा निगम बनाम ज्ञानाम्बिकाय मिल्स लिमिटेड¹ वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के विनिश्चय को उलट दिया था जिसमें उच्च न्यायालय ने यह अधिकथित किया था कि यद्यपि आकस्मिक कर्मचारी अधिनियम की धारा 2(9) के अधीन दी गई “कर्मचारी” शब्द की परिभाषा के अंतर्गत आ सकते हैं, फिर भी वे बीमारी प्रसुविधा के हकदार नहीं हो सकेंगे यदि उनका नियोजन प्रसुविधा कालावधि या अभिदाय कालावधि से कम हो और अधिनियम से यह प्रतीत नहीं होता है कि आकस्मिक कर्मचारी इसकी परिधि के अंतर्गत लाए जाने चाहिए। इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के विनिश्चय को उलटते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि :-

“8. धारा 39 में अधिनियम के अधीन संदेय अभिदायों के लिए उपबंध किया गया है। धारा 39 की उपधारा (4) में निम्नलिखित उपबंध किया गया है -

‘हर एक सप्ताह की बाबत संदेय अभिदाय मामूली तौर पर उस सप्ताह के अंतिम दिन शोध्य होंगे, और जहां कि कोई कर्मचारी सप्ताह के भाग के लिए नियोजित है, या एक ही सप्ताह के दौरान दो या अधिक नियोजकों के अधीन नियोजित है, वहां अभिदाय ऐसे दिनों को शोध्य होंगे, जो विनियमों में विनिर्दिष्ट किया जाए।’

9. उपधारा (4) में किया गया यह उपबंध कि ‘और जहां कि कोई कर्मचारी किसी सप्ताह के भाग के लिए नियोजित किया जाता है’ स्पष्टतः ऐसे आकस्मिक कर्मचारी के नियोजन के संबंध में उपदर्शित करता है। जब कोई कर्मचारी किसी सप्ताह के भाग के लिए नियोजित किया जाता है, तो वह आकस्मिक कर्मचारी के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता। हम धारा 42 की उपधारा (3) के प्रति भी निर्देश कर सकते हैं जो कि अभिदायों के संदाय से संबंधित साधारण उपबंधों के संबंध में है। उपधारा (3) निम्नलिखित रूप में है -

‘जहां कि मजदूरी कर्मचारी को सप्ताह के प्रभाग के लिए संदेय है, वहां नियोजक सप्ताह भर के लिए पूरे-पूरे नियोजक-अभिदाय और कर्मचारी-अभिदाय दोनों के लिए देनदार होगा, किंतु कर्मचारी से कर्मचारी-अभिदाय वसूल करने का हकदार

¹ (1974) 2 एल. एल. जे. 530 (मद्रास).

होगा ।'

10. उपधारा (3) में, अन्य बातों के साथ-साथ, किसी कर्मचारी के अभिदाय का संदाय करने विषयक नियोजक के दायित्व के संबंध में उपबंध किया गया है और कर्मचारी के अभिदाय के संबंध में भी उपबंध किया गया है, जहां कि कर्मचारी को एक सप्ताह के किसी भाग के लिए मजदूरी संदेय होती है । परिस्थितियों में से एक परिस्थिति जबकि मजदूरी किसी सप्ताह के भाग के लिए किसी कर्मचारी को संदेह हो सकती है, यह है कि कर्मचारी एक सप्ताह से कम के लिए नियोजित किया जाता है, अर्थात् यह है कि वह आकस्मिक कर्मचारी के रूप में नियोजित किया जाता है । इस प्रकार धारा 39(4) और धारा 42(3) में स्पष्ट रूप से आकस्मिक कर्मचारियों के मामले की परिकल्पना की गई है । अन्य शब्दों में, विधान-मंडल का यह आशय है कि आकस्मिक कर्मचारियों को भी अधिनियम की परिधि के भीतर लाया जाना चाहिए । यह सच है कि आकस्मिक कर्मचारी बीमारी प्रसुविधा प्राप्त करने का हकदार नहीं हो सकता, जैसा कि **ज्ञानाम्बिकाय मिल्स** [(1974) 2 एल. एल. जे. 530] वाले मामले में बताया गया था । किंतु हमारी राय में वह इस मत का आधार नहीं हो सकता है कि अधिनियम का आशय यह है कि आकस्मिक कर्मचारियों को अधिनियम की परिधि के भीतर नहीं लाया जाना चाहिए । बीमारी प्रसुविधाओं के अलावा, निःशक्तता प्रसुविधा सहित अधिनियम के अधीन अन्य प्रसुविधाएँ हैं जिनका कोई कर्मचारी अधिनियम की धारा 51 के अधीन हकदार होगा । धारा 51 में कोई भी प्रसुविधा कालावधि या अभिदाय कालावधि अधिकथित नहीं की गई है । ऐसे मामले भी हो सकते हैं जबकि आकस्मिक कर्मचारी अभिदाय कालावधि के बाद नियोजित किए जाते हैं और ऐसे मामलों में वे बीमारी प्रसुविधा प्राप्त करने के भी हकदार होंगे । इन परिस्थितियों में हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि आकस्मिक कर्मचारी अधिनियम की परिधि के भीतर आते हैं । आन्ध्र प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड **बनाम** कर्मचारी राज्य बीमा निगम, हैदराबाद [(1977) 1 एल. एल. जे. 54], प्रादेशिक निदेशक, कर्मचारी राज्य बीमा निगम, बंगलौर **बनाम** देवंगीर काटन मिल्स [(1977) 2 एल. एल. जे. 404] और कर्मचारी राज्य बीमा निगम, चंडीगढ़ **बनाम** ओसवाल वूलन

मिल्स लिमिटेड [(1980) 2 लेबर इंडस्ट्रियल केसेज 1064] वाले मामलों में आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, कर्नाटक उच्च न्यायालय और पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय ने ठीक तौर से ही यह मत अपनाया था कि आकस्मिक कर्मचारी अधिनियम की धारा 2(9) में यथापरिभाषित 'कर्मचारी' पद के अर्थातर्गत आते हैं और इसी कारण से वे अधिनियम की परिधि के भीतर आते हैं ।

11. वास्तव में 1976 की सिविल अपील सं. 819 (एन. एल.) में प्रत्यर्थी-कंपनी की ओर से उपसंजात होने वाले विद्वान् काउंसेल डा. चित्तले ने साफ-साफ यह स्वीकार किया है कि उसके लिए यह दलील देना कठिन होगा कि आकस्मिक कर्मचारी अधिनियम की धारा 2(9) में 'कर्मचारी' पद की परिभाषा की परिधि के भीतर नहीं आते हैं । तथापि, उनकी दलील यह है कि प्रस्तुत मामले में चूंकि वह काम जिसमें प्रत्यर्थी-कंपनी अर्थात् श्री शक्ति टैक्सटाइल मिल्स प्राइवेट लिमिटेड ने आकस्मिक कर्मचारी नियोजित कर रखे थे, कारखाने का काम नहीं था या कारखाने के काम का आनुषंगिक या प्रारंभिक या उससे संबद्ध काम नहीं था, इसलिए ऐसे कर्मकार अधिनियम की धारा 2(9) के अर्थातर्गत 'कर्मचारी' नहीं हो सकते । विद्वान् काउंसेल की दलील यह है कि चूंकि कारखाने का काम 'बुनाई' है, इसलिए धारा 2(9) के अर्थातर्गत किसी कर्मचारी को बुनाई के उस कार्य के आनुषंगिक, प्रारंभिक या उससे संबद्ध किसी कार्य के लिए नियोजित अवश्य ही किया जाना चाहिए जो कि मिल या कारखाने में किया जाता है । काउंसेल ने यह निवेदन किया है कि कारखाने के भवनों के सन्निर्माण के काम की बाबत यह नहीं कहा जा सकता है कि वह ऐसा क्रियाकलाप या ऐसी संक्रिया है जो कारखाने के काम का आनुषंगिक है या उससे संबद्ध काम है, अर्थात् जो कि बुनाई का काम है । अन्य मामले में प्रत्यर्थी कंपनियों की ओर से उपसंजात होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री डी. एन. गुप्ता ने डा. चित्तले की दलील अपना ली है और उनकी दलील यह है कि कारखाने के भवनों के सन्निर्माण के प्रयोजनार्थ नियोजित कर्मकार अधिनियम की धारा 2(9) के अर्थातर्गत 'कर्मचारी' की परिभाषा की परिधि के भीतर नहीं आते हैं ।”

उपर्युक्त विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि रायल टर्फ क्लब द्वारा दी गई यह दलील, कि आकस्मिक कर्मकार कर्मचारी राज्य बीमा

अधिनियम के अंतर्गत नहीं आते हैं, स्वीकार करने के लिए बहुत ही कमजोर है ।

12. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल श्री कामा ने **कर्मचारी राज्य बीमा निगम** बनाम **प्रीमियर क्ले प्रोडक्ट्स¹** वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को निर्दिष्ट किया । उक्त मामले में कार्य की प्रकृति ही यदाकदा होने वाली थी । भारवाहक अन्य व्यक्तियों का कार्य करने के लिए उपलब्ध रहते थे और एक ही दिन में उन कई सारे व्यक्तियों के लिए भी कार्य करते थे जो उन्हें माल की लदाई और उतराई के लिए लगाते थे । इस प्रकार यह अभिनिर्धारित किया गया कि भारवाहकों को कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अधीन आकस्मिक कर्मकार नहीं कहा जा सकता है । उक्त विनिश्चय प्रस्तुत मामले की तथ्यात्मक स्थिति पर, जहां कार्य की प्रकृति यदाकदा होने वाली नहीं है, कतई लागू नहीं होता है । कर्मचारी दौड़ के दिनों में कार्य करते हैं जो कि रायल टर्फ क्लब का चिरस्थायी क्रियाकलाप है और अधिनियम के उपबंधों, नियमों, विनियमों और तारीख 18 सितम्बर, 1978 की अधिसूचना को ध्यान में रखते हुए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऐसे कर्मचारी अधिनियम के अंतर्गत आते हैं और प्रसुविधा के हकदार हैं ।

13. इस दलील पर आते हैं कि कर्मचारी राज्य बीमा निगम को सहमति निबंधनों के प्रति आबद्ध ठहराया जाना चाहिए, यह दलील तथ्यात्मक रूप से असत्य, भ्रामक, विधिक रूप से असंधार्य और अन्यथा सारहीन भी है । टर्फ क्लब द्वारा फाइल किए गए आवेदन (ईएसआई) सं. 16/1976 में, कर्मचारी राज्य बीमा निगम तारीख 29 नवम्बर, 1975 की निरीक्षण रिपोर्ट के आधार पर सहमत हुआ था और तारीख 14 अप्रैल, 1976 के ज्ञापन में यह उल्लेख किया गया था कि इलेक्ट्रिकल और मैकेनिकल वर्कशाप, कारखाना प्रभाग, साधारण विभाग-मोटर-गैरेज (कारखाना प्रभाग), सुरक्षा विभाग, बढई-दुकान, वैयक्तिक विभाग और लेखा विभाग में टर्फ क्लब के कर्मचारी तारीख 28 जनवरी, 1968 से कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अंतर्गत आएंगे । यह सहमति दी गई थी कि टर्फ क्लब के ऐसे कर्मचारियों को पहले ही अधिनियम के अंतर्गत लाया गया है और पहले की तरह ही इसके अंतर्गत आएंगे तथा दौड़ प्रशासन विभाग के कर्मचारी, दौड़-पथ पर लगाए गए आकस्मिक मजदूर और दौड़ के दिनों में टिकट/लाभांश जारी करने के लिए लगाए गए अस्थायी

¹ (1994) 3 (सप्ली.) एस. सी. सी. 567.

कर्मचारिवृंद इसके अंतर्गत नहीं आते थे । पूर्वोक्त मामले में अंतर्वलित कालावधि तारीख 26 फरवरी, 1976 की अधिसूचना में विनिर्दिष्ट अनुसार थी, जो कि पहले की अवधि थी न कि 2006 की सिविल अपील सं. 49 में अंतर्वलित 1978-79 से 1982-83 की प्रश्नगत कालावधि और अन्य अपीलों में भी कालावधि इसके बाद की है । महाराष्ट्र सरकार द्वारा तारीख 18 सितम्बर, 1978 की अधिसूचना जारी होने के पश्चात् टर्फ क्लब के शेष विभागों को, जो पहले छोड़ दिए गए थे, विनिर्दिष्ट रूप से कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम की परिधि के अधीन सम्मिलित किया गया था । इस प्रकार, प्रस्तुत मामले में की गई मांग तारीख 18 सितम्बर, 1978 की अधिसूचना पर आधारित है, जिससे संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है कि उपर्युक्त विभाग के प्रश्नगत स्थापनों को कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अंतर्गत लाया गया है । इस प्रकार, सहमति निबंधनों से कोई फायदा प्राप्त नहीं किया जा सकता है, जो कि उस पूर्ववर्ती कालावधि से संबंधित है जब तारीख 18 सितम्बर, 1978 की अधिसूचना जारी की गई थी । अधिसूचना का कानूनी बल है और करार इसका अधिक्रांत नहीं कर सकता है । यह भी स्पष्ट है कि दौड़ क्लब के कई विभाग वर्ष 1968 में जारी की गई अधिसूचना में सम्मिलित थे । इस प्रकार, सहमति निबंधनों के आधार पर दी गई दलील तद्द्वारा नामंजूर की जाती है ।

14. कर्मचारी राज्य बीमा निगम द्वारा फाइल की गई अपील पर आते हैं जिसमें यह प्रश्न उठाया गया है कि संदाय का आदेश वर्ष 1987 की बजाय वर्ष 1978-79 से किया जाना चाहिए था क्योंकि तारीख 18 सितम्बर, 1978 की अधिसूचना को ध्यान में रखते हुए यह संदेह करने की कोई गुंजाइश नहीं है कि टर्फ क्लब के प्रश्नगत विभाग कर्मचारी राज्य बीमा निगम के अंतर्गत आते हैं । हमारी राय में, वर्ष 1978 की अधिसूचना स्पष्ट है और इसे पूरी तरह से कार्यान्वित किया जाना चाहिए और पूर्ववर्ती कालावधि के लिए भी सहमति निबंधनों से यह उपदर्शित होता है कि टर्फ क्लब के विभिन्न अन्य विभाग वर्ष 1968 की अधिसूचना के अंतर्गत आते थे । वर्ष 1975 से 1986 तक के अभिदाय का अधित्यजन करने के लिए **हैदराबाद रेस क्लब** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब नहीं लिया जा सकता है, क्योंकि प्रस्तुत मामले में वर्ष 1978 में जारी की गई विनिर्दिष्ट अधिसूचना को ध्यान में रखते हुए कर्मचारी

राज्य बीमा अधिनियम लागू होने के बारे में कोई संदेह नहीं है। कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के उपबंध वर्ष 1968 से टर्फ क्लब के विभिन्न विभागों पर लागू किए गए थे। हैदराबाद रेस क्लब (उपरोक्त) वाले मामले का विनिश्चय इसकी अपनी भिन्न तथ्यात्मक स्थिति के आधार पर किया गया था। इस मामले में, जैसा कि सहमति निबंधनों से स्पष्ट है, टर्फ क्लब वर्ष 1968 से ही कर्मचारी राज्य बीमा निगम के अंतर्गत आता है। टर्फ क्लब द्वारा कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के उपबंधों का वर्ष 1968 से पालन किया गया है। उच्च न्यायालय ने इस मामले के तथ्यों के आधार पर वर्ष 1978 से वर्ष 1987 तक के अभिदाय की मांग को अभिखंडित करके गलती की है।

15. हमारी राय में, टर्फ क्लब तारीख 18 सितम्बर, 1978 की अधिसूचना के अनुसार वास्तविक संदाय की तारीख तक ब्याज की ऐसी दर के साथ, जो अधिनियम और नियमों में उपबंधित है, अभिदाय करने की दायी है। रकम का अभिदाय आज की तारीख से तीन माह की अवधि के भीतर किया जाए। परिणामतः, कर्मचारी राज्य बीमा निगम द्वारा फाइल की गई अपीलें मंजूर की जाती हैं और टर्फ क्लब द्वारा फाइल की गई अपीलें कर्मचारी राज्य बीमा निगम को संदेय दो लाख के खर्चे सहित खारिज की जाती हैं।

अपीलें मंजूर और खारिज की गईं।

जस.

संसद् के अधिनियम
राजभाषा अधिनियम, 1963

(यथासंशोधित, 1967)

(1963 का अधिनियम संख्यांक 19)

[10 मई, 1963]

उन भाषाओं का, जो संघ के राजकीय प्रयोजनों, संसद्
में कार्य के संव्यवहार, केंद्रीय और राज्य अधिनियमों
और उच्च न्यायालयों में कतिपय प्रयोजनों
के लिए प्रयोग में लाई जा सकेंगी,
उपबंध करने के लिए
अधिनियम

भारत गणराज्य के चौदहवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :-

1. **संक्षिप्त नाम और प्रारंभ** – (1) यह अधिनियम राजभाषा अधिनियम, 1963 कहा जा सकेगा ।

(2) धारा 3, जनवरी, 1965 के 26वें दिन को प्रवृत्त होगी इस अधिनियम के शेष उपबंध उस तारीख¹ को प्रवृत्त होंगे जिसे केंद्रीय सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे और इस

¹ तारीख 10 जनवरी, 1965 को धारा 5(1) प्रवृत्त हुई, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी), भाग 2, अनुभाग 3(ii), पृष्ठ 128 पर प्रकाशित अधिसूचना संख्यांक का. आ. 94, तारीख 4 जनवरी, 1965 ; तारीख 19 मई, 1969 को धारा 6 प्रवृत्त हुई, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी) भाग 2, अनुभाग (3)(ii), पृष्ठ 2024 पर प्रकाशित अधिसूचना संख्यांक का. आ. 1945 ; तारीख 14 मई, 1969 ; तारीख 7 मार्च, 1970 को धारा 7 प्रवृत्त हुई, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी), भाग 2, अनुभाग 3(ii) में प्रकाशित अधिसूचना संख्यांक का. आ. 841, तारीख 26 फरवरी, 1970 ; तारीख 1 अक्टूबर, 1976 को धारा 5(2) प्रवृत्त हुई, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी), भाग 2, अनुभाग 3(ii) पृष्ठ 1901 पर प्रकाशित अधिसूचना संख्यांक का. आ. 655 (अ), तारीख 5 अक्टूबर, 1976 ।

अधिनियम के विभिन्न उपबंधों के लिए विभिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) “नियत दिन” से, धारा 3 के संबंध में, जनवरी, 1965 का 26वां दिन अभिप्रेत है और इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध के संबंध में वह दिन अभिप्रेत है जिस दिन को वह उपबंध प्रवृत्त होता है ;

(ख) “हिन्दी” से वह हिन्दी अभिप्रेत है जिसकी लिपि देवनागरी है ।

¹[3. **संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए और संसद् में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा का रहना** – (1) संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की कालावधि की समाप्ति हो जाने पर भी, हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा, नियत दिन से ही, –

(क) संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए जिनके लिए यह उस दिन से ठीक पहले प्रयोग में लाई जाती थी ; तथा

(ख) संसद् में कार्य के संव्यवहार के लिए,

प्रयोग में लाई जाती रह सकेंगी :

परंतु संघ और किसी ऐसे राज्य के बीच, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग में लाई जाएगी :

परंतु यह और कि जहां किसी ऐसे राज्य के, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाया है और किसी अन्य राज्य के, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, बीच पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिन्दी को प्रयोग में लाया जाता है, वहां हिन्दी में ऐसे पत्रादि के साथ-साथ उसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में भेजा जाएगा :

परंतु यह और भी कि इस उपधारा की किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह किसी ऐसे राज्य को, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संघ के साथ या किसी ऐसे राज्य के साथ, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाया है, या किसी

¹ 1968 के अधिनियम संख्यांक 1 की धारा 2 द्वारा धारा 3 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

अन्य राज्य के साथ, उसकी सहमति से, पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिन्दी को प्रयोग में लाने से निवारित करती है, और ऐसे किसी मामले में उस राज्य के साथ पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग बाध्यकर न होगा ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिन्दी या अंग्रेजी भाषा –

(i) केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और दूसरे मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के बीच ;

(ii) केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी या उसके किसी कार्यालय के बीच ;

(iii) केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी या उसके किसी कार्यालय के और किसी अन्य ऐसे निगम या कंपनी या कार्यालय के बीच ;

प्रयोग में लाई जाती है वहां उस तारीख तक, जब तक पूर्वोक्त संबंधित मंत्रालय, विभाग, कार्यालय या निगम या कंपनी का कर्मचारिवृन्द हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता, ऐसे पत्रादि का अनुवाद, यथास्थिति, अंग्रेजी भाषा या हिन्दी में भी दिया जाएगा ।

(3) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, हिन्दी और अंग्रेजी भाषा दोनों ही –

(i) संकल्पों, साधारण आदेशों, नियमों, अधिसूचनाओं, प्रशासनिक या अन्य प्रतिवेदनों या प्रेस विज्ञप्तियों के लिए, जो केंद्रीय सरकार द्वारा या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी द्वारा या ऐसे निगम या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निकाले जाते हैं या किए जाते हैं ;

(ii) संसद् के किसी सदन या सदनों के समक्ष रखे गए प्रशासनिक तथा अन्य प्रतिवेदनों और राजकीय कागजपत्रों के लिए ;

(iii) केंद्रीय सरकार या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या उसकी ओर से या केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी द्वारा या ऐसे निगम या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निष्पादित संविदाओं और करारों के लिए तथा निकाली गई अनुज्ञप्तियों, अनुज्ञापत्रों, सूचनाओं और निविदा प्ररूपों के लिए,

प्रयोग में लाई जाएगी ।

(4) उपधारा (1) या उपधारा (2) या उपधारा (3) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यह है कि केंद्रीय सरकार धारा 8 के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा उस भाषा या उन भाषाओं का उपबंध कर सकेगी जिसे या जिन्हें संघ के राजकीय प्रयोजन के लिए, जिसके अंतर्गत किसी मंत्रालय, विभाग, अनुभाग या कार्यालय का कार्यकरण है, प्रयोग में लाया जाना है और ऐसे नियम बनाने में राजकीय कार्य के शीघ्रता और दक्षता के साथ निपटारे का तथा जनसाधारण के हितों का सम्यक् ध्यान रखा जाएगा और इस प्रकार बनाए गए नियम विशिष्टतया यह सुनिश्चित करेंगे कि जो व्यक्ति संघ के कार्यकलाप के संबंध में सेवा कर रहे हैं और जो या तो हिन्दी में या अंग्रेजी भाषा में प्रवीण हैं वे प्रभावी रूप से अपना काम कर सकें और यह भी कि केवल इस आधार पर कि वे दोनों ही भाषाओं में प्रवीण नहीं हैं उनका कोई अहित नहीं होता है ।

(5) उपधारा (1) के खंड (क) के उपबंध और उपधारा (2), उपधारा (3) और उपधारा (4) के उपबंध तब तक प्रवृत्त बने रहेंगे जब तक उनमें वर्णित प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त कर देने के लिए ऐसे सभी राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा, जिन्होंने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संकल्प पारित नहीं कर दिए जाते और जब तक पूर्वोक्त संकल्पों पर विचार कर लेने के पश्चात् ऐसी समाप्ति के लिए संसद् के हर एक सदन द्वारा संकल्प पारित नहीं कर दिया जाता ॥

4. राजभाषा के संबंध में समिति – (1) जिस तारीख को धारा 3 प्रवृत्त होती है उससे दस वर्ष की समाप्ति के पश्चात्, राजभाषा के संबंध में एक समिति, इस विषय का संकल्प संसद् के किसी भी सदन में

राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी से प्रस्तावित और दोनों सदनों द्वारा पारित किए जाने पर गठित की जाएगी ।

(2) इस समिति में तीस सदस्य होंगे जिनमें से बीस लोक सभा के सदस्य होंगे तथा दस राज्य सभा के सदस्य होंगे, जो क्रमशः लोक सभा के सदस्यों तथा राज्य सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे ।

(3) इस समिति का कर्तव्य होगा कि वह संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी के प्रयोग में की गई प्रगति का पुनर्विलोकन करे और उस पर सिफारिशें करते हुए, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन करे और राष्ट्रपति उस प्रतिवेदन को संसद् के हर एक सदन के समक्ष रखवाएगा और सभी राज्य सरकारों को भिजवाएगा ।

(4) राष्ट्रपति उपधारा (3) में निर्दिष्ट प्रतिवेदन पर और उस पर राज्य सरकारों ने यदि कोई मत अभिव्यक्त किए हों तो उन पर विचार करने के पश्चात् उस समस्त प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निदेश निकाल सकेगा :

¹[परंतु इस प्रकार निकाले गए निदेश धारा 3 के उपबंधों से असंगत नहीं होंगे ।]

5. केन्द्रीय अधिनियमों आदि का प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद – (1)
नियत दिन को और उसके पश्चात् शासकीय राजपत्र में राष्ट्रपति के प्राधिकार से प्रकाशित –

(क) किसी केंद्रीय अधिनियम का या राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित किसी अध्यादेश का, अथवा

(ख) संविधान के अधीन या किसी केंद्रीय अधिनियम के अधीन निकाले गए किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि का,
हिन्दी में अनुवाद उसका हिन्दी में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा ।

¹ 1968 के अधिनियम संख्यांक 1 की धारा 3 द्वारा अंतःस्थापित ।

(2) नियत दिन* से ही उन सब विधेयकों के, जो संसद् के किसी भी सदन में पुरःस्थापित किए जाने हों और उन सब संशोधनों के, जो उनके संबंध में संसद् के किसी भी सदन में प्रस्तावित किए जाने हों, अंग्रेजी भाषा के प्राधिकृत पाठ के साथ-साथ उनका हिन्दी में अनुवाद भी होगा जो ऐसी रीति से प्राधिकृत किया जाएगा, जो इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित की जाए ।

(6) **कतिपय दशाओं में राज्य अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद** – जहां किसी राज्य के विधान-मंडल ने उस राज्य के विधान-मंडल द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में प्रयोग के लिए हिन्दी से भिन्न कोई भाषा विहित की है वहां, संविधान के अनुच्छेद 348 के खंड (3) द्वारा अपेक्षित अंग्रेजी भाषा में उसके अनुवाद के अतिरिक्त, उसका हिन्दी में अनुवाद उस राज्य के शासकीय राजपत्र में, उस राज्य के राज्यपाल के प्राधिकार से, नियत दिन को या उसके पश्चात् प्रकाशित किया जा सकेगा और ऐसी दशा में ऐसे किसी अधिनियम या अध्यादेश का हिन्दी में अनुवाद हिन्दी भाषा में उसका प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा ।

7. **उच्च न्यायालयों के निर्णयों आदि में हिन्दी या अन्य राजभाषा का वैकल्पिक प्रयोग** – नियत दिन से ही या तत्पश्चात् किसी भी दिन से किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी या उस राज्य की राजभाषा का प्रयोग, उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा पारित या दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के प्रयोजनों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा और जहां कोई निर्णय, डिक्री या आदेश (अंग्रेजी भाषा से भिन्न) ऐसी किसी भाषा में पारित किया या दिया जाता है वहां उसके साथ-साथ उच्च न्यायालय के प्राधिकार से निकाला गया अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी होगा ।

8. **नियम बनाने की शक्ति** – (1) केंद्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए, नियम, शासकीय राजपत्र में

* 1.10.1976 – देखिए भारत का राजपत्र असाधारण, भाग 2 खंड 3(ii) तारीख 6.10.1976 [का. आ. 655 (अ.) तारीख 1.10.1976].

अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

¹[(2) इस धारा के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । वह अवधि एक सत्र में, अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् यह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।]

9. कतिपय उपबंधों का जम्मू-कश्मीर को लागू न होना – धारा 6 और धारा 7 के उपबंध जम्मू-कश्मीर राज्य को लागू न होंगे।

¹ 1986 के अधिनियम संख्यांक 4 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (15.5.1986 से) उपधारा (2) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

गृह मंत्रालय के दिनांक 18 जनवरी, 1968 का संकल्प संख्यांक एफ.
5/8/65-रा.भा.

संकल्प

संख्यांक एफ. 5/8/65 – रा. भा. – संसद् के दोनों सदनों में पारित निम्नलिखित सरकारी संकल्प आम जानकारी के लिए प्रकाशित किया जाता है :-

“जबकि संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा हिन्दी रहेगी और उसके अनुच्छेद 351 के अनुसार हिन्दी भाषा की प्रसार वृद्धि करना और उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, संघ का कर्तव्य है ;

यह सभा संकल्प करती है कि हिन्दी के प्रसार एवं विकास की गति बढ़ाने के हेतु तथा संघ के विभिन्न राजकीय प्रयोजनों के लिए उत्तरोत्तर इसके प्रयोग के हेतु भारत सरकार द्वारा एक अधिक गहन एवं व्यापक कार्यक्रम तैयार किया जाएगा और उसे कार्यान्वित किया जाएगा और किए जाने वाले उपायों एवं की जाने वाली प्रगति की विस्तृत वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट संसद् की दोनों सभाओं के पटल पर रखी जाएगी, और सब राज्य सरकारों को भेजी जाएगी ;

2. जबकि संविधान की आठवीं अनुसूची में हिन्दी के अतिरिक्त भारत की 14 मुख्य भाषाओं का उल्लेख किया गया है, और देश की शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि इन भाषाओं के पूर्ण विकास के हेतु सामूहिक उपाय किए जाने चाहिए ;

यह सभा संकल्प करती है कि हिन्दी के साथ-साथ सब भाषाओं के समन्वित विकास के हेतु भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के सहयोग से एक कार्यक्रम तैयार किया जाएगा और उसे कार्यान्वित किया जाएगा ताकि वे शीघ्र समृद्ध हों और आधुनिक ज्ञान के संचार का प्रभावी माध्यम बनें ;

3. जबकि एकता की भावना के संवर्द्धन तथा देश के विभिन्न भागों में जनता में संचार की सुविधा के हेतु यह आवश्यक है कि भारत सरकार द्वारा

राज्य सरकारों के परामर्श से तैयार किए गए त्रै-भाषा सूत्र को सभी राज्यों में पूर्णतया कार्यान्वित करने के लिए प्रभावी उपाय किए जाने चाहिए ;

यह सभा संकल्प करती है कि हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में, हिन्दी तथा अंग्रेजी के अतिरिक्त एक आधुनिक भारतीय भाषा के दक्षिण भारत की भाषाओं में से किसी एक को तरजीह देते हुए और अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में प्रादेशिक भाषाओं एवं अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी के अध्ययन के लिए उस सूत्र के अनुसार प्रबन्ध किया जाना चाहिए ;

4. और जबकि यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि संघ की लोक सेवाओं के विषय में देश के विभिन्न भागों के लोगों के न्यायोचित दावों और हितों का पूर्ण परित्राण किया जाए ;

संकल्प

यह सभा संकल्प करती है :-

(क) कि उन विशेष सेवाओं अथवा पदों को छोड़कर जिनके लिए ऐसी किसी सेवा अथवा पद के कर्तव्यों के संतोषजनक निष्पादन के हेतु केवल अंग्रेजी अथवा केवल हिन्दी अथवा दोनों जैसी कि स्थिति हो, का उच्च-स्तर का ज्ञान आवश्यक समझा जाए, संघ सेवाओं अथवा पदों के लिए भर्ती करने के हेतु उम्मीदवारों के चयन के समय हिन्दी अथवा अंग्रेजी में से किसी एक का ज्ञान अनिवार्यतः अपेक्षित होगा ; और

(ख) कि परीक्षाओं की भावी योजना, प्रक्रिया संबंधी पहलुओं एवं समय के विषय में संघ लोक सेवा आयोग के विचार जानने के पश्चात् अखिल भारतीय एवं उच्चतर केंद्रीय सेवाओं संबंधी परीक्षाओं के लिए संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित सभी भाषाओं तथा अंग्रेजी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में रखने की अनुमति होगी ।”

नियम

राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976

(यथासंशोधित, 1987, 2007 तथा 2011)

सा. का. नि. 1052 – राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19) की धारा 3 की उपधारा (4) के साथ पठित धारा 8 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, केंद्रीय सरकार निम्नलिखित नियम बनाती है, अर्थात् :-

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (क) इन नियमों का संक्षिप्त नाम राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 है ।

(ख) इनका विस्तार तमिलनाडु राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

(ग) ये राजपत्र में प्रकाशन की तारीख* को प्रवृत्त होंगे ।

2. परिभाषाएं – इन नियमों में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो :-

(क) “अधिनियम” से राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19) अभिप्रेत है ;

(ख) “केंद्रीय सरकार के कार्यालय” के अन्तर्गत निम्नलिखित भी है, अर्थात् :-

(क) केंद्रीय सरकार का कोई मंत्रालय, विभाग या कार्यालय ;

(ख) केंद्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किसी आयोग, समिति या अधिकरण का कोई कार्यालय ; और

(ग) केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में या नियंत्रण के अधीन किसी निगम या कंपनी का कोई कार्यालय ;

* 17 जुलाई, 1976, देखिए अधिसूचना सं. सा. का. नि. 1052, तारीख 28.6.1976 – भारत का राजपत्र, भाग 2, खंड 3(i), तारीख 17.7.1976, पृष्ठ 1967 ।

(ग) “कर्मचारी” से केंद्रीय सरकार के कार्यालय में नियोजित कोई व्यक्ति अभिप्रेत है ;

(घ) “अधिसूचित कार्यालय” से नियम 10 के उपनियम (4) के अधीन अधिसूचित कार्यालय अभिप्रेत है ;

(ङ) “हिन्दी में प्रवीणता” से नियम 9 में वर्णित प्रवीणता अभिप्रेत है ;

(च) “क्षेत्र क” से बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, उत्तराखंड, राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्य तथा अंडमान और निकोबार दीव समूह, दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र अभिप्रेत हैं ;

(छ) “क्षेत्र ख” से गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब राज्य तथा चण्डीगढ़, दमण और दीव तथा दादरा और नगर हवेली संघ राज्यक्षेत्र अभिप्रेत हैं ;

(ज) “क्षेत्र ग” से खण्ड (च) और (छ) में निर्दिष्ट राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों से भिन्न राज्य तथा संघ राज्यक्षेत्र अभिप्रेत है ;

(झ) “हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान” से नियम 10 में वर्णित कार्यसाधक ज्ञान अभिप्रेत है ।

3. राज्यों आदि और केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से भिन्न कार्यालयों के साथ पत्रादि – (1) केंद्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र “क” में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य या संघ राज्यक्षेत्र में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि, असाधारण दशाओं को छोड़कर हिन्दी में होंगे और यदि उनमें से किसी को कोई पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनके साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा ।

(2) केंद्रीय सरकार के कार्यालय से –

(क) क्षेत्र “ख” में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य या संघ राज्यक्षेत्र में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) को पत्रादि सामान्यतया हिन्दी में होंगे और यदि इनमें से किसी को कोई पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनके साथ

उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा :

परन्तु यदि कोई ऐसा राज्य या संघ राज्यक्षेत्र यह चाहता है कि किसी विशिष्ट वर्ग या प्रवर्ग के पत्रादि या उसके किसी कार्यालय के लिए आशयित पत्रादि सम्बद्ध राज्य या संघ राज्यक्षेत्र की सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट अवधि तक अंग्रेजी या हिन्दी में भेजे जाएं और उसके साथ दूसरी भाषा में उसका अनुवाद भी भेजा जाए तो ऐसे पत्रादि उसी रीति से भेजे जाएंगे ;

(ख) क्षेत्र “ख” के किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में भेजे जा सकते हैं ।

(3) केंद्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र “ग” में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि अंग्रेजी में होंगे ।

(4) उपनियम (1) और (2) में किसी बात के होते हुए भी, क्षेत्र “ग” में केंद्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र “क” या क्षेत्र “ख” में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं :

परन्तु हिन्दी में पत्रादि ऐसे अनुपात में होंगे जो केंद्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अवधारित करे ।

4. केंद्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि –

(क) केंद्रीय सरकार के किसी एक मंत्रालय या विभाग और किसी दूसरे मंत्रालय या विभाग के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं ;

(ख) केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग और क्षेत्र “क” में स्थित संलग्न या अधीनस्थ कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी में होंगे और ऐसे अनुपात में होंगे जो केंद्रीय सरकार, ऐसे कार्यालयों में हिन्दी

का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे संबंधित आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए, समय-समय पर अवधारित करे ;

(ग) क्षेत्र “क” में स्थित केंद्रीय सरकार के ऐसे कार्यालयों के बीच, जो खण्ड (क) या खण्ड (ख) में विनिर्दिष्ट कार्यालयों से भिन्न हैं, पत्रादि हिन्दी में होंगे ;

(घ) क्षेत्र “क” में स्थित केंद्रीय सरकार के कार्यालयों और क्षेत्र “ख” या क्षेत्र “ग” में स्थित केंद्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं :

परन्तु ये पत्रादि हिन्दी में ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अवधारित करे ;

(ङ) क्षेत्र “ख” या क्षेत्र “ग” में स्थित केंद्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं :

परन्तु ये पत्रादि हिन्दी में ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अवधारित करे :

परन्तु जहां ऐसे पत्रादि –

(i) क्षेत्र “क” या क्षेत्र “ख” किसी कार्यालय को संबोधित हैं वहां, यदि आवश्यक हो तो, उनका दूसरी भाषा में अनुवाद, पत्रादि प्राप्त करने के स्थान पर किया जाएगा ;

(ii) क्षेत्र “ग” में किसी कार्यालय को संबोधित है वहां उनका, दूसरी भाषा में अनुवाद, उनके साथ भेजा जाएगा :

परन्तु यह और कि यदि कोई पत्रादि किसी अधिसूचित कार्यालय को

सम्बोधित है तो दूसरी भाषा में ऐसा अनुवाद उपलब्ध कराने की अपेक्षा नहीं की जाएगी ।

5. **हिन्दी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर** – नियम 3 और नियम 4 में किसी बात के होते हुए भी, हिन्दी में पत्रादि के उत्तर केंद्रीय सरकार के कार्यालय से हिन्दी में दिए जाएंगे ।

6. **हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग** – अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट सभी दस्तावेजों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग किया जाएगा और ऐसे दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों का यह उत्तरदायित्व होगा कि वे यह सुनिश्चित कर लें कि ऐसी दस्तावेजें हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही में तैयार की जाती हैं, निष्पादित की जाती हैं और जारी की जाती हैं ।

7. **आवेदन, अभ्यावेदन, आदि** – (1) कोई कर्मचारी आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिन्दी या अंग्रेजी में कर सकता है ।

(2) जब उपनियम (1) में विनिर्दिष्ट कोई आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिन्दी में किया गया हो या उस पर हिन्दी में हस्ताक्षर, किए गए हों, तब उसका उत्तर हिन्दी में दिया जाएगा ।

(3) यदि कोई कर्मचारी यह चाहता है कि सेवा संबंधी विषयों (जिनके अन्तर्गत अनुशासनिक कार्यवाहियां भी हैं) से संबंधित कोई आदेश या सूचना, जिसका कर्मचारी पर तामील किया जाना अपेक्षित है, यथास्थिति, हिन्दी या अंग्रेजी में होनी चाहिए तो वह उसे असम्यक् विलम्ब के बिना उसी भाषा में दी जाएगी ।

8. **केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में टिप्पणों का लिखा जाना** – (1) कोई कर्मचारी किसी फाइल पर टिप्पण या कार्यवृत्त हिन्दी या अंग्रेजी में लिख सकता है और उससे यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह उसका अनुवाद दूसरी भाषा में प्रस्तुत करे ।

(2) केंद्रीय सरकार का कोई भी कर्मचारी, जो हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखता है, हिन्दी में किसी दस्तावेज़ के अंग्रेजी अनुवाद की मांग तभी कर सकता है, जब वह दस्तावेज़ विधिक या तकनीकी प्रकृति की है, अन्यथा नहीं ।

(3) यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विशिष्ट दस्तावेज़ विधिक या तकनीकी प्रकृति का है या नहीं तो विभाग या कार्यालय का प्रधान उसका विनिश्चय करेगा ।

(4) उपनियम (1) में किसी बात के होते हुए भी, केंद्रीय सरकार, आदेश द्वारा ऐसे अधिसूचित कार्यालयों को विनिर्दिष्ट कर सकती है जहां ऐसे कर्मचारियों द्वारा, जिन्हें हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है, टिप्पण, प्रारूपण और ऐसे अन्य शासकीय प्रयोजनों के लिए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं, केवल हिन्दी का प्रयोग किया जाएगा ।

9. हिन्दी में प्रवीणता – यदि किसी कर्मचारी ने –

(क) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर कोई परीक्षा हिन्दी के माध्यम से उत्तीर्ण कर ली है ; या

(ख) स्नातक परीक्षा में अथवा स्नातक परीक्षा की समतुल्य या उससे उच्चतर किसी अन्य परीक्षा में हिन्दी को एक वैकल्पिक विषय के रूप में लिया हो ; या

(ग) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्ररूप में यह घोषणा करता है कि उसे हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है ; तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त कर ली है ।

10. हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान – (1) (क) यदि किसी कर्मचारी ने –

(i) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर परीक्षा हिन्दी विषय के साथ उत्तीर्ण कर ली है ; या

(ii) केंद्रीय सरकार की हिन्दी प्रशिक्षण योजना के अन्तर्गत आयोजित प्राज्ञ परीक्षा या, यदि उस सरकार द्वारा किसी विशिष्ट प्रवर्ग के पदों के संबंध में उस योजना के अन्तर्गत कोई निम्नतर परीक्षा विनिर्दिष्ट है, वह परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है ; या

(iii) केंद्रीय सरकार द्वारा उस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अन्य परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है ; या

(ख) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्ररूप में यह घोषणा करता है कि उसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है ;

तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है ।

(2) यदि केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय में कार्य करने वाले कर्मचारियों में से अस्सी प्रतिशत ने हिन्दी का ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो उस कार्यालय के कर्मचारियों के बारे में सामान्यतया यह समझा जाएगा कि उन्होंने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है ।

(3) केंद्रीय सरकार या केंद्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अधिकारी यह अवधारित कर सकता है कि केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय के कर्मचारियों ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है या नहीं ।

(4) केंद्रीय सरकार के जिन कार्यालयों में कर्मचारियों ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है उन कार्यालयों के नाम राजपत्र में अधिसूचित किए जाएंगे :

परन्तु यदि केंद्रीय सरकार की राय है कि किसी अधिसूचित कार्यालय में काम करने वाले और हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले कर्मचारियों का प्रतिशत किसी तारीख में से उपनियम (2) में विनिर्दिष्ट प्रतिशत से कम हो गया है, तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकती है कि उक्त कार्यालय उस तारीख से अधिसूचित कार्यालय नहीं रह जाएगा ।

11. मैनुअल, संहिताएं, प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, लेखन सामग्री, आदि — (1) केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैनुअल, संहिताएं और प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य हिन्दी और अंग्रेजी में द्विभाषीय रूप में यथास्थिति, मुद्रित या साइक्लोस्टाइल किया जाएगा और प्रकाशित किया जाएगा ।

(2) केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग किए जाने वाले रजिस्ट्रों के प्ररूप और शीर्षक हिन्दी और अंग्रेजी में होंगे ।

(3) केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग के लिए सभी

नामपट्ट, सूचना पट्ट, पत्रशीर्ष और लिफाफों पर उत्कीर्ण लेख तथा लेखन सामग्री की अन्य मर्दे हिन्दी और अंग्रेजी में लिखी जाएंगी, मुद्रित या उत्कीर्ण होंगी :

परन्तु यदि केंद्रीय सरकार ऐसा करना आवश्यक समझती है तो वह, साधारण या विशेष आदेश द्वारा, केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय को इस नियम के सभी या किन्हीं उपबन्धों से छूट दे सकती है ।

12. अनुपालन का उत्तरदायित्व – (1) केंद्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व होगा कि वह –

(i) यह सुनिश्चित करे कि अधिनियम और इन नियमों के उपबन्धों उपनियम (2) के अधीन जारी किए गए निदेशों का समुचित रूप से अनुपालन हो रहा है ; और

(ii) इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त और प्रभावकारी जांच के लिए उपाय करें ।

(2) केंद्रीय सरकार अधिनियम और इन नियमों के उपबन्धों के सम्यक् अनुपालन क लिए अपने कर्मचारियों और कार्यालयों को समय-समय पर आवश्यक निदेश जारी कर सकती है ।

प्ररूप
(नियम 9 और 10 देखिए)

मैं इसके द्वारा यह घोषणा करता हूँ कि निम्नलिखित के आधार पर
*मुझे हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है/मैंने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर
लिया है :-

तारीख

हस्ताक्षर

* जो लागू न होता हो, उसे कृपया काट दीजिए ।